NAINI TAL

दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय

नैनीताल

Class No. 891.3

Book No. [illegible]

Reg No. 3367

इस उपन्यास में लेखक ने समुद्र को वाणी दी है, लहरों से बातें की हैं और दी हैं सदियों से सोई मछलीमारों की आत्मा पहचानने की आँखें। विट्ठल यदि सम्पन्न-परिवार का अपने में खोया व्यक्ति है तो जागला मज़दूरों की दबी चेतना। जैसे उसका विद्रोह शून्य से उठाकर उसे झकझोरता है। यशवन्त का सुधारवादी रूप प्रेम में पलकर बड़ा हुआ है और सबसे अद्भुत व्यक्ति इस उपन्यास में है रत्ना, एक गति, एक आग। जिसके पैर पगडंडियों पर ही हैं। हर नया मार्ग एक तिरस्कार है। अन्त में अचानक वह जहाँ जाकर खड़ी हो जाती है वह उसकी मंज़िल है। 'क्या ऐसा भी मनुष्य होता है?' अशिक्षित का अवचेतन मन कितना प्रबल है, कितना गतिमान् कितना संघर्षी और कितना द्वन्द्वात्मक। यही एक कहानी है जो सागर कह रहा था, लहरें दुहराती थीं और मनुष्य जानना चाहता था।

सागर, लहरें और मनुष्य

श्री भट्टजी के अन्य साहित्य

कविता

तक्षशिला	युगदीप
राका	अमृत और विष
विसर्जन	यथार्थ और कल्पना
मानसी	विजय पथ

नाटक

विक्रमादित्य	अंतहीन अंत
दाहर अथवा	शक विजय
सिन्ध पतन	क्रान्तिकारी
अम्बा	विश्वामित्र और दो
सगर विजय	भाव-नाट्य
कमला	एकला चलो रे
मुक्तिपथ	कालिदास

एकांकी नाटक

आदिमयुग	समस्या का अन्त
अभिनव एकांकी	धूमशिखा
स्त्री का हृदय	नया समाज

उपन्यास

वह, जो मैंने देखा [१]

वह, जो मैंने देखा [२]

नये मोड़

सागर, लहरें और मनुष्य

उदयशंकर भट्ट

नई दिल्ली
मसिजीवी प्रकाशन

प्रकाशक :
मसिजीवी प्रकाशन,
नई दिल्ली ।

मूल्य : चार रुपये आठ आने

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली ।

"रामेश्वर वगड़का और शिवशंकर वसिष्ठ इस उपन्यास में पात्र बनकर भले ही न बोलते हों किन्तु सहयोग का सौन्दर्य-भार इसमें उन्हीं का है। क्या कहूँ······?"

रत्ना

उस दिन मंगलवार था, पूनो की रात। आकाश से दूध की धार बरस रही थी। धरती का कोना-कोना हँस रहा था। समुद्र की सतह पर जहाँ तक निगाह जाती, मोतियों का चूरा बिछा था। लहरों की आकाश चूमने वाली ऊँची दीवारों के किनारों पर फेनों की गोट लगी दीख पड़ती थी। अभिमान की तरह लहरें ऊँची-से-ऊँची उठ रही थीं। सारा समुद्र एक महान् खिलाड़ी के उल्लास-उमंग से उत्तरंग हो रहा था।

पहले पहर की उसी रात को बम्बई के पश्चिम-तट पर बसा हुआ मछलीमारों का गाँव वरसोवा उनींदा हो रहा था। गदेलों और कथरियों पर लेटी जवान औरतें काम-काज से थककर छाती पर हाथ रखे सपने देखने की तैयारी कर रही थीं। कुछ समुद्र में गये अपने पतियों की याद में टिम-टिमाते दियों या पाँच नम्बर के बल्बों पर नजर गड़ाये कल्पना के चित्र बुन रही थीं। उनकी मैली-कुचैली अँगियों में छिपे भूधरों पर काम का नाग कभी-कभी फनफना उठता। बच्चे सो गए थे। बूढ़े कभी-कभी खाँस उठते तो बीड़ी के धुएँ के साथ उनकी मैली साँसें हवा के आँचल को पकड़कर ऊपर-ऊपर उड़ने की चेष्टा करतीं। उस समय वरसोवा में आदमी कम, बच्चों-बूढ़ों की गिनती अधिक थी। जो आदमी थे वे बाहर से आये दूकानदार थे। प्रायः सभी मछलीमार समुद्र के भीतर उमंग की तरह तैरने वाली मछलियों को पकड़ने निकल पड़े थे। दुर्गन्ध, पानी, कीचड़ से नहाई गलियों, कच्ची सड़कों पर ऊर्ध्वग्रीव कुत्ते कभी-कभी सातों स्वरों में तान-आलाप छेड़ बैठते और अपने समवेतगान से समुद्र-गर्जन का मुकाबिला करते। बाकी सब शान्त था। अँधेरा कोनों में छिपा बैठा था;

उजाला मैदानों में नाच रहा था। धीरे-धीरे और भी सन्नाटा बढ़ा। गाँव के तटों और समुद्र की छाती की धड़कन कम हो रही थी। इसी समय बादलों के टुकड़े पश्चिम के क्षितिज से चोरों की तरह झाँकने लगे। हवा की साँस घुटने लगी। लहरों की हिम्मत टूटी। जो दो-चार समुद्री चिड़ियाँ आसमान में मँडराकर समुद्र की छाती पर उभरती मछलियों का शिकार करने में व्यस्त थीं, उनका अब कहीं नाम-निशान नहीं रह गया था। सन्नाटा और बढ़ा। हवा और कम हुई। लहरों के गीत सोने लगे। इसी समय साहसी डाकुओं की तरह काले लबादों में लिपटे बादल तीरों और लम्बे बाँसों के समान मोटी धार आसमान से गिराने लगे। अब सब ओर इस्पात की तरह ठोस अँधेरा बहराने लगा—निगाहों की सुई के लिए भी असम्भव। सोते-सोते जागकर एक पुराना खुर्राट बूढ़ा उठा तो चिपचिपे पसीने से उसकी देह नहा गई। पसीना पोंछते हुए उसने बीड़ी सुलगाई और बाहर आकर आसमान की ओर ताका; फिर समुद्र की ओर देखा तो जी 'धक्' से रह गया।

'तोफान तोफान' चिल्लाता वह तट की ओर बढ़ा। 'तोफान' का नाम सुनते ही सारी मछलीमार बस्ती में एक हड़कम्प मच गया और देखते-ही-देखते औरत, बच्चे, बूढ़े 'तोफान तोफान' चिल्लाते समुद्र के किनारे जमा हो गए। चारों ओर घना अँधेरा ! मोटे सूत की रस्सियों से भी मोटी वर्षा की जलधार ! न कुछ सुनाई दे रहा था न दिखाई। एक प्रलय-सा समुद्र में उठ रहा था। एक भीषण ध्वनि की दहाड़ से सारा समुद्र उमड़ रहा था। किनारे पर खड़े लोगों के पैरों, घुटनों से लहरें टकराईं तो लोग और भी ऊपर आ गए। जब वहाँ भी पानी ने आ घेरा तो डर से चिल्लाते लोग अपनी झोंपड़ियों के पास आ खड़े हुए। समुद्र-तट से आधे फर्लांग तक पानी ऊपर चढ़ आया था। अहंकारी पेड़ों का कहीं पता न था। सहमती लताएँ और घास की पत्तियाँ झुक गईं। झोंपड़ियों के पास खड़े लोग उड़े जा रहे थे। उस अँधेरे में मालूम होता था सारी पृथ्वी डूब जायगी। हवा आँधी बन गई थी और आँधी झंझा। आकाश के एक किनारे से दूसरे किनारे तक गड़गड़ाहट के साथ बिजली कौंध जाती, उससे लगता था जैसे समुद्र और आसमान एक हो गए हैं। वे बूढ़े,

जिनके लड़के, भाई समुद्र में मछलियाँ पकड़ने गये थे और वे स्त्रियाँ जिनके पति बहुत-सी मछली लाने का वायदा करके गये थे, सब थरथर काँप रहे थे। सब चिल्ला रहे थे। पर तेज हवा न किसी का चिल्लाना सुनने देती और न घना अंधेरा किसी को रोते देखने देता था। समुद्र के किनारे-किनारे एक कतार में चमकने वाली बिजली की बत्तियाँ जैसे कभी थीं ही नहीं। जब-तब आसमान की बिजली को छोड़कर कहीं कोई प्रकाश का चिह्न नहीं था। लोगों के हृदय का प्रकाश बुझ रहा था। बाहर खड़े लोगों के मन बिना समुद्र के पानी के ही भय, आशंका में डूबे जा रहे थे। जिनसे खड़ा नहीं रहा गया वे बैठ गए। औरतें माथे पर हाथ रखे, मन मसोसे उस अँधेरे में समुद्र का 'तांडव' सुन रही थीं। बहुतों ने समुद्र को इतना नाराज कभी नहीं देखा था। लोगों की आँखें झरनों की तरह व्यथा की बूंदों से डबडबा रही थीं। फिर भी भीगती, काँपती, निश्छल, अटल, अडिग स्त्रियाँ समुद्र को देखतीं और 'खंडाला' देवता से अपने पतियों, भाइयों, लड़कों के सुरक्षित लौटने की प्रार्थना कर रही थीं। बूढ़े कभी-कभी साहस टूटने पर भविष्य की आशंका से सुबक-सुबक उठते, चिल्ला उठते।

रात बीती। सबेरा हुआ। दोपहर हुई। साँझ हुई। पर समुद्र अब भी प्रलय से खेल रहा था। अनन्त वज्रघातों की तरह लहरें एक-दूसरे से लड़ रही थीं। बादलों से ढके सूर्य के हल्के प्रकाश में समुद्र का सभी अन्तर् जैसे दहाड़ें मार रहा था। समुद्र और आकाश का भेद समाप्त हो गया था। बहुत से लोग जो तट पर खड़े थक गए थे भाग्य पर विश्वास करके लौट गए। पर कुछ बूढ़े, हीरा, वंशी और सोमा सब एक-दूसरे से दूर एक-टक समुद्र की ओर निहार रहे थे। जैसे उनकी आँखों को प्रतीक्षा का अथक बल मिल गया हो। तमाशबीन लोग आते, देखते और चले जाते। बच्चों के झुण्ड हँसते-खेलते तट पर आ जुड़ते और लौट जाते। उसी समय साँझ के झुट-पुटे में वंशी के पास अठारह वर्ष की लड़की रत्ना आई और उसके कन्धे से सटकर बैठ गई।

"बाय!"

वंशी की चेतना जैसे अपने पति को समुद्र से खींच लाना चाहती

थी। उसने न लड़की को पहचाना, न उसकी आवाज सुनी। लड़की ने फिर पुकारा, "बाय, बोलेंगा नई।"

रत्ना ने वंशी को जोर से झंझोड़ा और पुकारा, 'बाय।' काफी देर बाद जैसे उसे होश आया। उसने निगाह फेरकर रत्ना की ओर देखा तो देखती रह गई। वंशी की आँखों में न आँसू थे, न पहचान। लड़की एकदम रोकर माँ से लिपट गई। बहुत देर बाद आँख उठाकर रत्ना ने देखा तो वंशी की आँखों में आँसू थे। उसने हिचकी भरते हुए पूछा, "बाय, ए तोफान कब खल्लास होयेंगा।"

वंशी के मुँह से केवल इतना निकला—

"खंडाला भगवान् जाने।"

लहरें उस समय भी लहरों से लड़ रही थीं—हजारों क्रुद्ध नागिनों की तरह। हवा उस समय भी तेज थी, मानो उनंचास हवाएँ इकट्ठी होकर आ गई हों। वर्षा उस समय भी कभी-कभी समुद्र की छाती पर आकर नाचने लगती थी।

तीन दिन और तीन रात जब तक समुद्र में तूफान रहा बरसोवा के मछलीमारों के परिवार ने न कुछ खाया न पिया। निरन्तर समुद्र की ओर ताकते रहे। एक बूढ़ी औरत ने आकर सोमा को सँभाला और पकड़कर घर ले गई। हीरा का जवान लड़का और पति दोनों समुद्र में गये थे। इसलिए वह लोगों के समझाने-बुझाने पर भी जड़ बनी बैठी रही चौथे दिन समुद्र के किनारे लाशों से पटे पड़े थे। मानो वीतराग समुद्र ने उन्हें स्वीकार न कर किनारे पर लाकर डाल दिया हो। झुण्ड-के-झुण्ड उन्हें पहचानने दौड़ पड़े। जिनमें कुछ जान थी उन्हें बाहर निकालकर उल्टा टाँग दिया। सरकार की तरफ से स्टीमरों ने डूबते लोगों को बचाकर किनारे पहुँचा दिया और अधमरे विट्ठल, नाना, यशवंत, हरिचन्द्र आदि कुछ लोगों को समुद्र के किनारे पटककर लौट गए। फिर भी बरसोवा के बहुत से मछलीमारों का कुछ भी पता न चला। न वे स्टीमर से लौटे, न किनारे पर पड़े पाये गए। सामुद्रिक तूफान के बाद मछलीमारों के गाँव बहुत दिन तक अपने आदमियों को खोजते रहे। जागला बर्लीकर, बाउला कई दिनों बाद डांडा से लाये गए। जिनके आदमी लौट

थे उनके घरों में सत्यनारायण की कथा हुई; भोजन कराया गया; उत्सव हुए। समुद्र देवता की धूमधाम से पूजा हुई। बंदी ने महाभारत की कथा बैठाई जो एक मास तक चली।

हर साँझ स्त्रियाँ, बूढ़े, जवान, बालक सब काम छोड़कर कथा सुनने इकट्ठे होते। वीरता और लड़ाई की कहानियाँ सुनकर श्रोताओं को रोमांच हो आता। भुजाएँ फड़कने लगतीं। बिजली-सी नसों में दौड़ जाती। आदमी मूँछों पर ताव देते। स्त्रियों की आँखों में चमक आ जाती। दिन-भर गाँव, समुद्र, घर, बाजार में लोगों के मन पर वीरता का नशा छाया रहता। दो-एक जगह पूरा तो नहीं छोटा-मोटा महाभारत हो गया। लड़कियाँ सुभद्रा, द्रौपदी, सत्यवती के सपने देखतीं और पुरुष भीष्म, अर्जुन, कर्ण, भीम बनने की प्रतिज्ञा करते। समाप्ति के बाद भी महाभारत के पात्रों की वीरता, सौन्दर्य श्रोताओं की आँखों में झूमते रहे। उन्हीं दिनों विट्ठल की लड़की रत्ना नाना से कहने लगी—

"हम बी मत्स्यगंधा बनेंगा नाना ? हम बी बनेंगा।"

"तेरे कू ऐसा भाग किदर होने का जो तू किसी का रानी बन सकेंगा," नाना ने छोकरी की ओर गहराई से देखते हुए कहा—जैसे उसे कम आश्चर्य नहीं हो रहा था। रत्ना आँखें नचाकर मुसकराती बोली—

"तुम देखेंगा, भाग कू लेने नहीं जाना होयेंगा।"

इतना कहकर रत्ना आसमान में बिखरे बादलों के टुकड़ों से उतरते अपने सपनों को निहारने लगी। उसकी भारी पलकों वाली बड़ी-बड़ी आँखों में एक नया सपना तैरने लगा। नाना कुछ भी न समझ सका। पर अचानक रत्ना की बातों ने उसकी उत्सुकता को जगा दिया। नाना बहुत सोचने का आदी नहीं था। बहुत दूर तक देखना और सोचना उसके स्वभाव में था भी नहीं।

बोला—"जाने काय शहाणापन ए देखने कू मांगताय।"

इतना कहता हुआ अपने घुटनों पर हाथ का बल देकर वह उठा और गली के मोड़ पर चाय वाले की दुकान पर जा बैठा।

रत्ना झूले पर पैर लटकाए बालों की चौरी हिलाती रही। कभी-कभी पैर अपने-आप हिलकर झूला चलाते रहते। नितम्बों तक लटकती

उसकी वेणी, कत्थई-रंग की मराठी धोती, जिसकी चौड़ी किनारी माला की तरह गले में लटक रही थी। उसके उभरे स्तनों पर हवा से हिल-हिल उठती। सामने खिड़की में से समुद्र की विशाल और उत्ताल लहरें उठती दिखाई दे रही थीं। नीले और हरे समुद्र के पर्त्त पर अस्ताचल-गामी सूर्य की किरणें लहरों से खेल रही थीं। ऊपर आसमान में बादलों के टुकड़े झाँक-झाँककर उनका खेल देख रहे थे। रत्ना झूले से उठकर खिड़की पर आ टिकी और देर तक उधर ही देखती रही, मानो उसकी आँखें उन खेलों में किसी को पाने के लिए उत्सुक हो उठी हों। वह बहुत देर तक बेभान-सी खड़ी रही।

"रत्ना, ओ रत्ना, एक सिंगल कप पियेंगा। नाना किदर गया। गाठिया भी लेंयगा काय ?" कहती वंशी रत्ना के पास चाय का प्याला लिए आ पहुँची। रत्ना जैसे नींद से जागी। बिना कुछ बोले चाय पीने लगी। चाय पीकर प्याला उसने खिड़की में रख दिया और अपने विचारों में खो गई।

उस समय पश्चिम के समुद्र की छाती पर अपनी किरणों का बिस्तर बिछाए सूर्य लेटने जा रहा था। सोने के इस आस्तर को उठती लहरों के किनारे कहीं उन्हें दूध-सा सफेद बना रहे थे, कहीं नीली और हरी चादर पर सिल्मे-सितारे की सुनहली और रूपहली गोट जड़ रहे थे। वह एक विचित्र दृश्य था। ऊपर आसमान में नये-नये नगर, गाँव, नदियाँ पहाड़ बन रहे थे। नहर, पहाड़, झरने, मनुष्य, पशु, कोट-पतलून पहने आदमी, दाढ़ी बढ़ाए ऋषि दिखाई दे रहे थे। नीले, पीले, गुलाबी, धुँधले रुई के पहाड़, वृक्षों, लताओं, झाड़ियों से घिरे देख पड़ते थे। रत्ना बहुत देर उन्हीं दृश्यों, अपने विचारों और दोनों से मिलकर बने स्वप्नों में खो गई।

इसी समय टोकरियों में भरी मछलियाँ कमरे के बाहर लाकर रखी जाने लगीं। कोलाहल बढ़ा और देखते-देखते सारा बरामदा बाम्टी, मांडेल, खारा, सांभार, चीरी, तामड़ी आदि कई प्रकार की मछलियों से भर गया। इसके पीछे आया विट्ठल कोली। सामने कमर में तिकोना रंगीन रूमाल और सफेद बनियान, यही उसकी पोशाक थी। लोगों ने मछलियों के टोकरे जमीन पर रख दिए। विट्ठल ने गिना और आवाज

लगाकर वंशी को सौंप दिया और वहीं एक कोने में खड़ा बीड़ी पीने लगा। वंशी बरामदे में आकर मछली वालों से बातें करने लगी। उसके ऊँचे और मरदाने स्वर से वातावरण ढक गया। एकाध बार उसने बातों-बातों में विट्ठल को डाँटा भी। रत्ना डरकर माँ की सहायता करने लगी। वंशी ऊँचे स्वर में कह रही थी—

"बरसोवा रैने सूँ काय लाभ ? जास्ती मच्छी नई मिलताय। ईससे तो खार, माहीम, वर्ली का कोली लोक मजा करताय। वड़ा-बड़ा मच्छी तो मिलताय ! ए छोटी-छोटी मच्छी।" वंशी टोकरियों से एक मुट्ठी मच्छी उठाती और लापरवाही से बिखेर देती। ऊँचे स्वर में बोलने के कारण आसपास के एक-दो मच्छीमार और आ गए। सबने वंशी की बात का समर्थन किया।

"बरसोवा का धन्धा खल्लास हो गया। दर रोज मील का चक्कर मार-नाय तब किदर जाकर दो पाटी माल मिलताय। अइसा कइसा होयेंगा।"

एक बूढ़ा बोल उठा—

"हमारा जमाना में होडी (नाव) पर जाकर डोल (जाल) डाला नई के ढेर-का-ढेर मच्छी आया।"

"ईमान नई होयेंगा तो कइसा होयेंगा। कइसा चलेंगा।"

विट्ठल बीच ही में बोल उठा, "दर रात मारेंगा तो कइसा मच्छी आयेंगा। पहले थोड़ा खरच था थोड़ा मच्छी मार, जागला ?"

"चल जाने दे, दे वंशी अबी जो कुच मिलताय अपन कू गुजारा तो ओई में करने काय न। ताड़ी बी तो मांगा है," तीसरे ने कहा।

"अरे सभी कुच मांगा है। चावल, शाक, चिउड़ा। कपड़ा के तो अंगार लग गयाय। गरीब मानस कइसा पहनें।"

बरामदे में रखी टोकरियों को लक्ष्य करके लोगों ने जीवन की व्याख्या कर डाली; राजनीति, सरकार के ऊपर अपने-अपने ज्ञान के पैमाने से चर्चा की; समाज के ऊपर व्यंग-बाण कसे। वंशी ने टोकरियाँ उठाकर भीतर के आँगन में रखवा लीं। बिट्ठल वंशी की नजर बचाकर बाहर निकल गया।

× × ×

बरसोवा का असली नाम 'बिसावा' है। यह बम्बई समुद्र-तट के पूर्व पश्चिम में मछलीमारों की बड़ी बस्ती है—'अँधेरी' से पश्चिम की तरफ लगभग तीन-चार मील दूर। इस जाति को 'कोली' कहा जाता है। बरसोवा में दो तरह के कोली बसते हैं—थलकर और शिवकर। अधिक संख्या में थलकर और थोड़ी संख्या में शिवकर रहते हैं। दोनों का आपस में विवाह-सम्बन्ध नहीं होता, पर खाने-पीने में दोनों में कोई भेद नहीं है। थलकर एक वीरा देवी और खण्डोवा के उपासक हैं और शिवकर वैष्णव। परन्तु अब ऐसा कोई फर्क नहीं है। शिवकर जाति के लोग थलकरों से अधिक सुन्दर हैं और थोड़ी संख्या में होने के कारण वे बाहर भी शादी-ब्याह कर लेते हैं, जब कि थलकरों की शादियाँ बरसोवा में ही होती हैं। अन्धेरी से आती एक लम्बी सड़क के किनारे पूर्व और पश्चिम में यह गाँव बसा है। कुछ पक्के मकान, लेकिन अधिकतर कच्चे और छप्पर वाले। आदमियों की पोशाक एक बनियाइन या कमीज। नीचे घुटनों से ऊपर तिकोना, रंगीन रूमाल पहने रहते हैं। पीछे का भाग खुला। स्त्रियाँ रंगीन लाँगदार साड़ी या धोती पहनती हैं। ऊपर चोली। धोती का फेंटा कमर में खोंसा रहता है। सम्पन्न परिवार की स्त्रियाँ ऊपर चादर भी ओढ़ती हैं। कान में मछली की तरह सोने की गाँठ। गले में मंगल-सूत्र (सोने की जंजीर) मोहन माल या चपलाहार। हाथों में बागड्या (कड़ा) सोने की।

बरसोवा किसी समय एक बड़ा बन्दरगाह था। पहले पुर्तगालियों के जहाज यहाँ आकर लगा करते थे। उन दिनों बम्बई नहीं बसा था, बर्ली से लेकर माहीम और शिवड़ी से मझगाँव तक किनारे-किनारे रहने वाले शिवकर कहलाए। शिव का अर्थ कोली भाषा में 'सीमा' है। इसी तरह गाँव में रहने वाले गाँवकर और थलगाँव में रहने वाले थलकर प्रसिद्ध हुए।

बहुत पहले समय से इन कोलियों का पेशा दूर-दूर समुद्र से मछलियाँ मारना रहा है। विट्ठल बरसोवा का एक सम्पन्न कोली है। एक दो नौकर, दो बड़ी होड़ी और एक छोटी होड़ी (नाव)। परिवार भी बहुत बड़ा नहीं है—वंशी, रत्ना और वह स्वयं। विट्ठल मशीन की तरह काम

करने वाला खाली दिमाग का आदमी है। पत्नी का दास। इसीलिए वंशी व्यवसाय-व्यापार चलाती है। उसकी उमर ढल रही है। फिर भी उसके सलौने रंग और बड़ी-बड़ी आँखों में यौवन की मादकता जैसे लहरें लेती रहती है। रत्ना उसी की लड़की, एफ० ए० में पढ़ रही है। शायद यही बरसोवा के शिवकर कोलियों में एक लड़की है जो कालेज जाती है। इसलिए जहाँ लोगों में इस घर के प्रति बड़प्पन का भाव है वहाँ उसी के बराबरी के लोग इससे जलते भी हैं। इधर पिछले दिनों से चंचल रत्ना में एक खास परिवर्तन हो रहा है। जो चिड़िया की तरह अपनी चंचलता के लिए मशहूर थी, बातों से लोगों के कान के कीड़े झाड़ देती थी, अपनी सुन्दरता के गर्व से किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं ताकती थी, वही एकदम धीरे-धीरे अपने में खोई-खोई रहती है। माँ ने इसका और ही अर्थ लगाया। एक दिन उसने शराब पीकर लौटे विट्ठल को टकोरते हुए कहा—

'सुनताय विट्ठल !'

विट्ठल नशे में डूबी और मुश्किल से अधखुली पलकों से वंशी की ओर देखने लगा। केवल वंशी के खुले हाथों पर आवेग की उँगलियाँ फेरने लगा। वंशी ने कड़ककर कहा—

"हम बोलताय रत्ना का लगन करने का। इतना जास्ती उमर हो गयाय।"

लापरवाही से बिट्ठल ने जवाब दिया, "होयेंगा, हमारा रानी होयेंगा। तुम काय कू सोचताय। तुम करेंगा सो होयेंगा।" कहकर बिट्ठल ने चुटकी बजाई और पास मुँह करके वंशी की ओर हसरत-भरी नजर से देखने लगा। वंशी ने उसका मुँह हटाते हुए कहा, "तेरे कू अब्बी जवानी चढ़ाय। पन मेरे कू छोकरी का चिन्ता आहे। ओ का लगन का चिन्ता। हट, दूर हट। हम तेरे कू बोलना नई मांगताय। दर रोज ताड़ी पीकर आजाताय। खबरदार!" फिर ठहरकर पूछा, "यशवन्त तेरे कू कइसाय विट्ठल ? हम यशवन्त का वास्ते बोलना मांगताय।"

"तो हम कू पूछने का क्या ? जो चांगला लगे सो करेंगा। वंशी कू कौन बोलेंगा, अइसा करो अइसा मत कर बाबा। यशवन्त पन टीक है।

अपना नाना का छोकरा मानो अपना दोस्त का छोकराऽऽ।" -

वह बंशी के सामने 'ही' 'ही' करके हँस दिया और बंशी के प्रतिदान में निराश होकर वहीं चटाई पर लेट गया। बंशी कोई सलाह न करके बाहर चली गई। अब विट्ठल की नाक से सातों स्वर बजने लगे। वह बहुत देर तक चटाई पर पड़ा रहा। थोड़ी देर बाद इधर-उधर देखकर कमरे की आलमारी में रखी शराब की एक बोतल उठा लाया और बिना प्याले के थोड़ी-थोड़ी पीने लगा। उसकी इच्छा हुई इस समय तली हुई 'पाल्पा' मछली मिल जाती तो मुँह का जायका बदल सकता था। वह उठा तो पैर डगमगाने लगे। दीवार का सहारा लेकर चला तो चल न सका। वहीं गुर्राता हुआ आँगन में गिर पड़ा। बंशी ने लौटकर देखा तो बड़बड़ाती हुई रसोई से राँभास और शेवड़ी मछलियाँ लाकर विट्ठल के सामने रख दीं। बची हुई बोतल की शराब खाली करके आप भी मच्छी खाने लगी।

विट्ठल उन लोगों में था जो शरीर से मजबूत होते हुए भी दिमाग से खोखले होते हैं। बंशी से वह डरता था। उसके इशारे और बुद्धि को अपना सब मानता था। उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाना, उसे खुश रखना और आलिंगन पाश में अविकसित आवेगों को शान्त करना और जी तोड़कर काम करना यही उसने अपना एकमात्र काम बना लिया था। बंशी हँसती तो वह खिल उठता। प्यास से भीगी आँखों, फड़कते होंठों और कसमसाते हाथों से उसे जकड़ लेता। इससे पहले जवानी में उसने कई खेल खेले, कई औरतों से प्रेम किया, पर बंशी के घर में पहुँचते ही वह भीगी बिल्ली बन गया और उस दिन तो और भी जब शराब पीकर वह सारी रात बाहर रहा। सुबह घर लौटने पर बंशी ने जाल की मोटी रस्सियों से 'झाड़-झाड़' कर उसकी पीठ उधेड़ दी। विट्ठल पिटता रहा। उसके बाद नौकर की तरह एक कोने में जा बैठा। बंशी ने ही दया करके उसके सामने भात और मछली लाकर रख दी। तब से लेकर उसकी स्त्री-भक्ति और घर का काम एकाकार हो गए। अब वह ढल भी चुका था। रत्ना को स्कूल भेजकर पढ़ाने में बंशी का हाथ था। वह चाहती थी उसकी लड़की पढ़े-लिखे और उसी ठाट-बाट से रहे जैसे बम्बई की स्त्रियाँ रहती

हैं। वंशी पढ़ी-लिखी नहीं थी, पर स्वभाव से तेज और अपने हौसले से बड़े-बड़े काम सँभालने की क्षमता रखती थी। मछलियों के टोकरे ट्रक में रखवाकर वह अपने-आप बाजार जाती और अच्छे-से-अच्छे दामों पर माल बेचती। मजाल है कोई उसे ठग सके, कोई धोखा दे सके। बाजार से लौटते समय वह फूलों के गजरे लेना न भूलती। अपने ढंग से शृङ्गार करती, रात को शराब पीती, तीज-त्यौहार पर अपने ही घर में उत्सव मनाती। नाचने, गाने और शराब में रात-रात बिता देती। वंशी देखने में बहुत सुन्दर नहीं थी, पर ऐसी बुरी भी नहीं थी। चपटा मुँह, बड़ी-बड़ी आँखें, मामूली उठी चौड़ी नाक, उभरी कनपटी की हड्डियाँ, रसीले पतले होंठ, उभरी ठोढ़ी, सुता हुआ साँवला शरीर, पर चिकना; कद न बहुत ऊँचा न ठिगना; मुख पर रौब और गम्भीरता के चिह्न; जूड़े में वेणी और माथे पर चवन्नी के बराबर टिकुली से सजी रहती।

नाना वंशी का दूर का रिश्तेदार था। किसी समय उसकी भी कई नावें थीं, नौकर थे, पर जुए में सब उड़ गया। वंशी का विवाह पहले नाना से ही होने जा रहा था। बीच में आ कूदा विट्ठल। विट्ठल जहाँ नाना से कद में ऊँचा और बलवान था वहाँ सुन्दर भी था। उसके शरीर के मजबूत पुट्ठे, मछलियों से भरा, कसा शरीर और बड़ी-बड़ी स्निग्ध आँखें देखकर वंशी ललचा उठी। उसका मन विट्ठल में रम गया। फिर वह बाहर का रहने वाला था। वंशी की माँ छूनी ने उसे नौकर रख लिया और एक दिन बिना लिये-दिये दोनों का विवाह हो गया।

× × ×

उस दिन सत्तरह-अठारह साल की लड़की रत्ना का मन महाभारत में आई मत्स्यगन्धा की कहानी सुनकर भीतर-ही-भीतर हिलोरें लेने लगा। वह सोचने लगी, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मेरी जवानी भी सदा बनी रहे? क्या ऐसा कोई नहीं है जो मुझे भी वरदान दे? सदाबहार के फूलों की तरह आनन्द और उल्लास से घुमड़ती जवानी का अक्षुण्ण सौन्दर्य मेरे ऊपर बरसा सके? इसी प्रतीक्षा में छोटी नाव लेकर पढ़ने के बहाने सामने 'मड' नाम के टापू पर जा बैठती थी और समुद्र की शोभा निहारती।

'मड' बरसोवा के तट से लगभग एक मील दूर टापू है। पुर्तगालियों ने यहाँ आकर किला बनवाया था। इसका पुराना नाम 'आलदेमार' है। ताड़, खजूर, केलों से घिरा हुआ समुद्र-तट का यह स्थान बहुत रमणीक और सुबह-शाम के समय बिलकुल सुनहरा लगता है। मड के पश्चिमी किनारे पर अधिकतर ईसाई कोली रहते हैं। इस गाँव का नाम 'एरंगेल' है।

'मड' पर पहुँचते ही रत्ना का मन वरदान पाने के लिए लहरों की तरह हिलोरें लेता। उस एकान्त स्थान में हर पगध्वनि उसे वरदान देने वाले की सुनाई देती। वह बैठी हुई सोच ही रही थी कि नाना के लड़के यशवन्त की नाव 'मड' के किनारे आ लगी। वह दूर से ही चिल्लाकर बोला—

"रत्ना, तुम इदर किदर, क्या करताय। दीखताय जैसे सिनेमा का कोई स्टार अपने प्रेमी का इन्तजार करता होयेंगा। कितना चांगलाय ए सब।"

जब यशवन्त पास आ गया तो रत्ना ने कहा—

"तुमने ओ महाभारत का कथा सुनाय यशवन्त ?"

"कौन कथा ?"

"ओ मत्स्यगन्धा का।"

"तेरे कू मत्स्यगन्धा बनने का क्या ?"

"हम जानना माँगताय, कइसा होयेंगा ओ मत्स्यगन्धा ?" रत्ना ने यशवन्त से पूछा।

"हम पढ़ेला लिखेला नई रत्ना, मत्स्यगन्धा का बात सुना जरूर, पन जानता नई।"

यशवन्त रत्ना के पास बैठ गया और गहराई से रत्ना को देखने लगा। पेड़ की छाया में घनी धूप से उसका चेहरा कबुँर हो रहा था। माथे की गहरी लाल बिन्दी, कटीली भौंहें, बड़ी-बड़ी आँखों पर दृष्टि गड़ाए यशवन्त रत्ना को देखता रहा। फिर बोला—

"किती चांगलाय रत्ना। बापू बाप बोलता था के...." रुककर वह मुस्कराया।

"हम बोलताय तू किती सुन्दर है रत्ना ! जब से हम सुना...."

"पन हम लगन नई करूँ तो ?" मुस्कराकर रत्ना ने उत्तर दिया।

"तो यशवन्त जिन्दा नई रहेंगा।"

"नई रेहेंगा तो मेरे कू क्या ?"

"वाहर का बात हे बीतर का नई। हम जानताय।"

"हमकू पढ़ने काय यशवन्त, तू जा।"

"हमकू तेरे कू देखने काय। देखते रहने काय।"

"पन तू पड़ेला लिखेला नई। हम जो लगन नई करे।"

"पन हम अब क्या पड़ सकेंगा रत्ना ?"

"काय नई। नाना तुमकू पड़ायेंगा। किसी स्कूल में दाखिल होने का।"

"नई रत्ना अब हम किदर पड़ेंगा।"

"हम कइसा पड़ता है। पड़ने से तो पड़ना आयेंगा। कोई ऐसा काम हे जो आदमी नई कर सकेंगा।"

"हम सब काम कर सकेंगा बाकी पड़ नई सकेंगा। तेरे कू खुश करेंगा। बड़ा-बड़ा मच्छी मारकर लायेंगा। सिनेमा दिखायेंगा। बंबई की सैर कू चलेंगा।"

"बाकी पड़ेंगा नई।"

यशवन्त ने रत्ना के कन्धे पर हाथ रख दिया और बोला—"बोल रत्ना, वंशी बाय बोलताय। बिट्ठल बापू बोलताय के यशवन्त का साथ रत्ना का लगन होने का।"

"तेरे कू बोलता था क्या ?" मुस्कराकर रत्ना ने पूछा।

"हम सुनाय, रत्ना।"

रत्ना चुप हो गई। उसने मुस्कराकर देखा और नजर फेर ली। यशवंत पुलकित हो उठा। उसका हृदय रत्ना की मुस्कराहट से खिल उठा। वह स्वयं अपनी माँ से बात चलने पर कह चुका था कि वह अगर शादी करेगा तो रत्ना से। यशवंत के मन में रत्ना के साथ बचपन के सब सम्बन्ध, जिनमें वे दोनों एक-दूसरे से लड़े, खेले, साथ खाया, साथ घूमे, आदि बातें घूम गईं। एक दिन बच्चों-बच्चों में जो शादी का खेल खेला गया उसमें भी यशवत ने रत्ना से ही शादी के लिए जिद की।

हारकर रत्ना को उससे शादी करनी पड़ी। जब शाम को हँसी-हँसी में यशवंत ने वंशी को खेल का सब हाल सुनाया तब उसने भी मुस्कराकर कहा था, 'अब यशवंत से ही मैं रत्ना की शादी करूँगी।' यशवंत ने रत्ना की ठोड़ी पकड़कर कहा, "हमारा तेरा लगन पैलें हो चुकाय रत्ना।' याद है तेरे कू ?" रत्ना ने कहा, "हम नई चायता था। पन ओ क्या लगन था ?"

"कोई ने कुच पड़ा नई, पन ओ क्या लगन नई था ? हम तो तबी से तेरे साथ लगन मानताय।"

"पन हम तो नई मानताय।"

"तब तो हम नया लगन करने का। हम ओई करेंगा रत्ना।" इतना कहकर यशवंत खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसके मुख के सफेद दाँत चमक उठे। मोटे होठों पर एक प्रकार की फुरफुरी आ गई। अपने काले घुँघराले बालों पर हाथ फेरकर बोला, "हम बी बड़ा बनेंगा। हम बी एक मोटर रखेंगा। तेरे कू बम्बई फिरायेंगा। अच्छा सूट पहनेंगा।"

रत्ना की आँखों में चमक आ गई। वह स्वयं बड़े मकान और मोटर से अधिक पढ़ने का महत्त्व नहीं जानती थी।

"हम कू मोटर मांगताय। हम भोत बड़ा मकान मांगताय यशवंत !"

इसी समय रत्ना ने देखा मस्त बर्लीकर और इट्ठा ताड़ी पिये नाव से उतर रहे हैं। बर्लीकर ने किनारे पर दो नावें देखीं तो चिल्लाकर बोला, "यशवंत का होड़ी है, इट्ठा।"

"ए दूसरा बिट्ठल काय ? रत्ना कू होने का इदर," इट्ठा ने वर्लीकर का हाथ पकड़े उतरते हुए कहा।

रत्ना ने सुना तो झाड़ी में छिप गई। यशवंत आगे बढ़ आया। बर्लीकर ने यशवंत को देखा तो ललकार कर बोला—"ओ नाना के छोकरे यशवंत, रत्ना किदर है ? तू साला दर रोज रत्ना कू इदर लाकर बदमासी करनाय साला।"

"गप्पबह ?" (चुप रह) यशवंत चिल्लाया।

"बर्लीकर ने दौड़कर यशवंत को पकड़ लिया। इट्ठा मुँह बिचकाती एक ओर खड़ी हो गई। नशे में धुत बर्लीकर ने यशवंत को धक्का देकर

कहा, "बोल बदमासी करताय साला रत्ना का साथ ?"

यशवंत ने बिना कुछ कहे बर्लीकर को पीछे धकेलते हुए जवाब दिया, "और तुम इट्ठा कू लेकर इदर आया ?"

बर्लीकर ने लड़खड़ाकर गिरते हुए अपने को सँभाला और फुर्ती से उठकर यशवंत से लिपट गया। दोनों गुत्थमगुत्था हो गये। इट्ठा ने देखा यशवंत भारी बर्लीकर को गिराकर उसके ऊपर चढ़ बैठा है तो उसने एक पत्थर तानकर यशवंत की पीठ में दे मारा। पत्थर की नोंक यशवंत की पीठ पर बैठी। वह हट गया। बर्लीकर इसी बीच में उस पर चढ़ बैठा और हाथ मुक्कों से यशवंत को खूब पीटा। फुर्ती से यशवंत उसकी पकड़ से बाहर हो गया और एक पत्थर उठाकर बर्लीकर के मुँह पर दे मारा और एक इट्ठा को भी। इट्ठा सिर पकड़कर बैठ गई। बर्लीकर माथे का खून पोंछकर यशवंत से लिपट पड़ा। लम्बी-लम्बी साँसों और एक दूसरे पर प्रहार से वे दोनों दो सांड से दिखाई दे रहे थे। इसी समय तानकर रत्ना ने एक पत्थर बर्लीकर के सिर मे दे मारा। बर्लीकर के सिर से फुहारे की तरह खून की धार फूट पड़ी। वह चक्कर खाकर वहाँ गिर पड़ा। रत्ना ने फुर्ती से यशवंत को उठाया और अपनी नाव में उसे डालकर बरसोवा की ओर चल दी। इट्ठा के होठ में पत्थर की नोंक छिद गई थी। बर्लीकर अचेत पड़ा था। वह यशवंत रत्ना को गाली देता पीछे-पीछे नाव लेकर दौड़ा। इट्ठा रो रही थी। बर्लीकर की आँखों में खून तैर रहा था।

वंशी और नाना ने बर्लीकर की लड़ाई का हाल सुना तो आगबबूला हो गए। बर्लीकर के कोई था नहीं। वह बाउला के यहाँ मछलीमार की नौकरी करता था। गुण्डा होने के कारण बाउला ने उसे रख छोड़ा था। इट्ठा से शादी भी वही करा रहा था। इट्ठा पहले कुछ दिन तक माहीम के एक मछुए के यहाँ रही फिर भागकर बरसोवा आ गई। उसकी माँ थी और वह। दोनों काम-धाम करके गुजारा करतीं। इधर बर्लीकर को देखकर वह उसे चाहने लगी। बर्लीकर भी शादी की फिराक में था और एक दिन बाउला की सहायता से दोनों के ब्याह की बात पक्की हो गई।

नाना कह रहा था, "साला वर्लीकर कू हथकड़ी नई पड़ा तो मजा क्या रहा। हम देखेंगा, जितना लगेंगा, लगायेंगा। बाउला कू बी मालूम होयेंगा उसका किसका साथ गांठ पड़ाय।" दोनों ज़ोर-ज़ोर से इट्टा वर्लीकर को गाली दे रहे थे।

वंशी बोली, "ए बाउला का काम हे। बदमाश कू रखताय। हम बी एक बदमाश रखेंगा। बरसोवा का हवा खराब करने का नई। इदर भला आदमी रहताय ओ छोकरा कू क्या अधिकार के हमारा छोकरा पर हाथ फेंके। उसकू मारे।"

घर के बाहर लोग जमा हो रहे थे। सबने वर्लीकर की निन्दा की, बाउला पर टीका टिप्पणी की।

"बदमाश हे। खराब आदमी हे। यशवंत और रत्ना कू मारना मांगताय साला। पुलिस में भेजने का। जेल कराने का।"

"बरसोवा में ऐसा आदमी कू रहने का नई।"

तीसरा बोला, "हम होता तो देखना साला कू। छोकरी-छोकरा कू तंग किया। वरसोवा रेने का होवे तो साला चलेंगा। नई रेने का होने से नई चलेंगा।"

बाउला शिकायत लेकर आया तो सब लोगों ने मिलकर उसे डांटा।

"नोकर का साला का हिम्मत, के हमारा छोकरा कू मारना मांगताय? आदि-आदि।" बहुत देर तक बाउला सफाई देता रहा। फिर बकता-झकता चला गया। कोलियों की कुलीनता और नौकर को लेकर देर तक वादविवाद चलता रहा। इस मामले में बाउला का पक्ष लेने वाले बहुत कम थे। शाम को पड़ोस की लड़की पार्वती आई तो वंशी ने पूछा, "वर्लीकर का बच्चा क्या बोलताय?"

"वर्लीकर क्या बोलेंगा? हम जो सुनाय सोई बोलताय। सुनने का तो नहीं सुन वंशी बाय।"

"तो ओ क्या बोलताय?" वंशी ने पूछा। वंशी जानती थी वह इधर की उधर लगाने वाली है।

"वर्लीकर बोलताय हम यशवंत कू मार डालेंगा। रत्ना कू मार डालेंगा।"

वंशी ने सुना तो भीतर-ही-भीतर सहम उठी। उसे मालूम था बर्लीकर गुण्डा है। न जाने क्या कर बैठे!

पर उसी समय उसे खयाल आया यह पार्वती भी कम दूती नहीं है। आधी बात या बेबात को पहाड़ बनाकर कहने की इसकी आदत है। वंशी ने हँसकर पूछा—

"और क्या बोलाय बर्लीकर?"

"तुम हँसताय वंशी बाय, ओ भारी नीच आदमी हे।"

"ओ नीच तेरे से शादी करणे कू बोला और इट्ठा से शादी करना मांगताय। हम होता तो बर्लीकर का नाक सोता में कांप देताय। और इट्ठा कू तो बोलेंगा क्या ओ किसमिस का छोकरी उसका क्या मजाल के लगन करताय।"

पार्वती चुप हो गई, फिर बोली, "बर्लीकर ने मेरे कू बोला और बात तोड़ डाला।"

"क्यों?"

"अबी हमारा लगन डांडेकर से होयेंगा। ओ हमकू चांगला दिखताय।"

"पन डांडेकर तो हमेशा बीमार रहताय पार्वती।"

"डाक्टर बोलताय उसकू तिल्ली का बीमारी हे। टीक होने का उसकू न।"

"तिल्ली का रोग खराब होताय पार्वती।"

"तिल्ली का बीमारी अच्छा नई होताय। रंग पीला हो जाताय। उसका पेट फूग (फूल) जाताय।"

"सो तो हे।"

"सोचले पार्वती।"

वास्तव में बात कुछ नहीं थी। वंशी ने वैसे ही कह दिया था। पार्वती चुप होकर सोचने लगी। बर्लीकर ही ठीक था। पर अब क्या हो सकता है। अब तो इट्ठा से उसका ब्याह पक्का हो गया। पार्वती कहने लगी—

"क्या ऐसा कोई इलाज नई कि इट्ठा मर जायें और हमरा लगन

बर्लीकर से होंय ।"

"इलाज क्यों नईं ? इट्टा कू जो फत्तर लगाय उससे उसकू जखम हो गयाय । गाल में छेद हो गयाय ।"

"हा ।"

"जिस डाक्टर कू ओ दिखायेंगा उसकू कुच देने पर ओ बिगाड़ सकेंगा और जखम भेरीला होयेंगा तो इट्टा जल्दी मर जायेंगा । पीछे बर्लीकर तुम्हारा होयेंगा ।"

पार्वती बैठी सोचती रही । उसके मन में इट्टा के प्रति हिंसा जाग उठी और वर्लीकर के प्रति रोष । वंशी यह सब देख रही थी । उसे भीतर-ही-भीतर प्रसन्नता हुई । पार्वती बीस साल की नवयुवती है । अपने बाप की अकेली लड़की । बाप अधिकतर समुद्र में रहता है । निरंकुश पार्वती में बहुत-से दोष आ गए । वह दिन-भर दूती का काम करती । लोगों को आपस में लड़ाती और भीतर-ही-भीतर खुश होती । उसके कारण कई बार बरसोवा में सिर फूटे हैं । बर्लीकर यशवन्त की लड़ाई की बात सुनकर बात घड़ती हुई वह वंशी के यहाँ आई । इससे पूर्व बाउला की स्त्री सोमा से वह वंशी की ओर से बर्लीकर को जेल भेजने की बात भी कह आई थी । तभी डरकर बाउला आया था ।

"बला कितना देने से काम चलेंगा वंशी बाय ?" पार्वती ने पूछा ।

"सौ रुपया तो होने का बराबर," वंशी ने गम्भीर होकर उत्तर दिया ।

पार्वती ने गहरी साँस ली और बोली—

"क्या सौ से कमती नईं होयेंगा ।"

"पइले जाकर मालूम करने का पार्वती कौन डाक्टर इलाज करताय । कदाच कम वेशी होंय ।"

"बराबर बराबर ।"

"तुमकू मदद करने काय वंशी बाय । हम ओ सब झूट बोला । सब झूट ।"

"बर्लीकर ओ सब नईं बोलताय क्या ?"

"हम सब झूट बोला । माफी चाताय । तुमकू हमारा मदद करने

का वंशी बाय।"

"हा जरूर, डाक्टर से मालूम कर। हम बी देखेंगा।"

पार्वती उठकर चली गई। वंशी उसका जाना देखती रही। बिट्ठल और नाना प्रसन्न थे कि रत्ना का ब्याह यशवन्त से होगा। वंशी के मन में एक खेद था कि नाना की औरत हीरा उसके सामने कभी नहीं झुकी; बिना बुलाये अन्य औरतों की तरह कभी उसके घर नहीं आई। वह उस पर नाराज थी, पर यशवन्त से खुश। इधर 'मड' की दुर्घटना से रत्ना यशवन्त को पहले से अधिक चाहने लगी थी। वह सोचती, आखिर ब्याह तो इन्हीं में से किसी के साथ होगा। फिर भी एक कसक थी कि इतना पढ़ने पर क्या उसे ऐसे ही मछलीमार से शादी करनी पड़ेगी। फिर पढ़ने का क्या फायदा! क्या वह अपनी सखी सारिका की तरह स्वतन्त्र नहीं रह सकती? क्या उनके लोगों जैसा कोई सुन्दर लड़का उसको नहीं मिल सकता? कभी-कभी महाभारत की मत्स्यगन्धा की बात उसे याद आती। न तो महाभारत का कोई साधु ही मिला जो वरदान देकर उसका यौवन अमर कर देता और न उसके बाद काफी सुन्दर होने पर कोई शान्तनु ही उसे दिखाई दिया। रत्ना के जी में यह विचार बराबर उसे कौंचता रहता। अंग्रेजी पढ़ने पर भी उसके बद्धमूल विचारों का महल ढह नहीं पाता था। वह निरन्तर स्वप्न देखती, पर स्वप्नों की जागृति का कोई अवसर उसे नहीं मिल पाता था। 'मड' वह जाना चाहकर भी अकेली जाना नहीं चाहती थी।

ऊबी-ऊबी वह उठी और घर का रास्ता काटकर सड़क के पार एक मकान में घुस गई। वह उसकी सखी सारिका का मकान था जो उसके साथ कालेज में पढ़ती थी। नीचे बरामदे में कुर्सियों पर दो नवयुवक बैठे जोर-जोर से बातें कर रहे थे। वह सीधी कमरे में चली गई। सारिका चाय बनाकर रसोई से निकल रही थी। रत्ना को देखते ही सारिका मुस्करा दी।

"आ हम लोग बाहर बैठें। तेरा परिचय कराऊँ।"

दोनों में एक सारिका का भाई मनोहर और एक उसका दोस्त था। परिचय हुआ। सारिका का भाई बी० एस-सी० का विद्यार्थी था—

स्वभाव से शान्त और गम्भीर प्रकृति का, जबकि उसका मित्र माटकेकर काफी चंचल और मनचला था। माटकेकर अँधेरी में अपने एक रिश्तेदार के यहाँ रहकर पढ़ता था। सारिका से रत्ना का परिचय पाकर माटकेकर ने इस प्रकार बातें करना शुरू किया जैसे यह आदमी बम्बई के सम्बन्ध में सब-कुछ जानता है। उसने सभी सिनेमा स्टारों से अपना परिचय बताया। सुरैया के यहाँ वह कभी-कभी जाता है। कामिनी कौशल के यहाँ उसने डिनर खाया है। निम्मी की उससे काफी जान-पहचान है। अशोककुमार के घर तो वह कल ही गया था। उसने निश्चय किया है कि इंजीनियरिंग सीखकर सिनेमा लाइन में जायगा। खिलाड़ियों में मनकड के यहाँ उसने चाय पी है। क्रिकेट क्लब के मेम्बर उसे कई बार बुला चुके हैं, खेलने के लिए। वही नहीं गया। उसे क्रिकेट के बजाय टेनिस पसन्द है। गिरहकटों की बात चलने पर शेखी बघारते हुए उसने बताया कि कल ही चर्नी रोड से आते हुए उसने एक आदमी को पुलिस के हवाले कर दिया। वह आदमी एक नकली चवन्नी उसकी जेब से निकाल रहा था जो उसने खास तौर से एक व्यक्ति के सामने थोड़ी देर पहले ही जेब में डाली थी, आदि-आदि।

मनोहर ने कहा, "माटकेकर, बम्बई की कोई ऐसी बात भी है जो तुम नहीं जानते?"

सारिका बोली, "हमने सुना तुम कल गवर्नर की पार्टी में थे। अखबार में आज ही खबर आई है। उसमें तुम्हारा फोटो भी है।"

माटकेकर मुस्कराकर झेंप गया।

"मिस सारिका, इसमें क्या गलत है कि मैं कभी गवर्नर की पार्टी में भी जा सकता हूँ। उसका एडीकाँग मेरा दोस्त है।"

रत्ना बोली, "उसकी पार्टी में मिस्टर माटकेकर न जा सकें पर उसके अर्दलियों में ये खड़े हो ही सकते हैं।"

मनोहर अट्टहास कर उठा। सारिका और रत्ना दोनों खिलखिला पड़ीं। माटकेकर ने बिना झेंपे कहा—

"गवर्नर की अर्दलीगीरी से मैं रत्ना का अर्दली बनना पसन्द करूँगा।"

बहुत तीखा व्यंग्य था। रत्ना तिलमिला उठी। सारिका को भी बुरा लगा। उसने कहा—

"माटकेकर साहब, तुम्हें मेरी सखी का अपमान करने का अधिकार नहीं है।"

माटकेकर जवाब देना चाहता था, पर मनोहर के इशारे पर रुक गया।

चाय पीकर रत्ना और सारिका घूमती हुई समुद्र की तरफ चली गईं।

"बड़ा बदमाश है यह माटकेकर," रत्ना बोली।

"मसखरा है, पर मन साफ है," सारिका ने जवाब दिया।

रत्ना ने सामने मड की तरफ इशारा करते हुए कहा, "घूमने के लिए वह अच्छी जगह है।"

"काफी सुनसान मालूम होता है। मैं तो कभी नाव में बैठी भी नहीं हूँ। डर लगता है।"

"तू मेरे साथ कल चलना। भला सारिका, क्या किसी को हमेशा के लिए जवानी नहीं मिल सकती ?"

"क्या मतलब ?"

"मैं पूछती हूँ तूने सत्यवती की कहानी पढ़ी है न।"

"कौन सत्यवती ?"

"महाभारत की।"

"हाँ। तो क्या तू भी सदा के लिए जवानी चाहती है ?"

रत्ना जरा देर के लिए रुकी। फिर कहने लगी, "हम मच्छीमारों की दादी मत्स्यगन्धा थी न।"

"अच्छा-अच्छा, अब समझी। तो क्या तुझे सदा के लिए जवानी चाहिए ?"

"मुझे लगता है जैसे कोई साधु मुझे भी आकर सदा के लिए जवानी का वरदान दे जाय तो कैसा हो।"

सारिका ने सुना तो खिलखिलाकर बोली, "फिर तुझे शान्तनु भी चाहिए।"

"शान्तनु तू ले लेना, जवानी मैं ले लूँगी," कहकर रत्ना हँस दी।

"पागल ! पढ़ाई का क्या हाल है ?"

"शायद पास नहीं हो सकूँगी। पढ़ने में मन भी तो नहीं लगता। माँ जल्दी ही शादी कर देना चाहती है।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि लड़की की शादी तो करनी ही होती है।"

"तो फिर पढ़ाया क्यों ?"

"अब पछता रही है। कहती है जब जात में पढ़ा-लिखा लड़का ही नहीं तो फिर पढ़ाना-लिखाना गलती है।"

"क्या कहीं भी ऐसा पढ़ा-लिखा लड़का नहीं है ?"

"शायद ऐसा ही होगा। सारा गाँव नाम धर रहा है। कहता है वंशी लड़की को पढ़ाकर उसे मेम बनाना चाहती है। रहना तो हमको जात में ही है न।"

"पढ़ तो सही, फिर देखा जायगा। क्या ब्याह करना जरूरी है ?"

"है या नहीं, यह मैं नहीं जानती।"

दोनों थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करतीं अपने-अपने घर को मुड़ गईं। रास्ते में रत्ना को यशवन्त जाल उठाए घर जाता मिल गया। उसे देखकर पास आता हुआ बोला, "बर्लीकर साला कू हम बिना मारे नईं छोड़ेंगा। हमारा दोस्त कू हमने बोलाय तो ओ बोला—बर्लीकर अब जिन्दा नई रहेंगा। हम उसका दादागिरी खलास कर देंगा।"

"ओ ताड़ी पीने का कारण पागल हो गिया था यशवंत। हमकू काये कू किसी का साथ बैर करने का ?"

"नई, हम देखेंगा रत्ना। तुम देखेंगा।"

वह बहुत देर तक खड़ा-खड़ा बर्लीकर को गाली देता रहा। क्रोध से उसकी भुजाएँ फड़क रही थीं। मुँह लाल हो गया था, जैसे सचमुच इसे बर्लीकर पर नाराजी हो। फिर बोला—

"तेरे का अपमान किया, ए काय थोड़ा वात हे ? वरसोवा में एक आदमी नई रै सकेंगा। हम बोल दिया बाउला कू। बाकी जास्ती करने से बाउला कू पन जाने का। वरसोवा में रैने का नईं।"

फिर नरम पड़कर उसने रत्ना की ओर ताका, जैसे वह उसकी

कृपा का परम आकांक्षी है। उसके पास रत्ना को मोहने का एक ही अस्त्र है, शारीरिक बल-प्रदर्शन या उसकी प्रिय बात कहना। यशवन्त का अनुमान था कि रत्ना भी बर्लीकर से नाराज होगी, इसलिए मिलने पर उसने बर्लीकर का प्रसंग छेड़ दिया। पर रत्ना का बर्लीकर के सम्बन्ध में उसकी बातों में सहयोग न देना कुछ आश्चर्यजनक लगा। वह भौचक्का-सा रह गया और चुपचाप रत्ना के साथ चलने लगा। बर्लीकर को वह फिर गाली देता जा रहा था। मोड़ आने पर रत्ना बोली, "जाताय।"

"हाँ," कहकर यशवन्त चला गया।

× × ×

दूसरे दिन रत्ना और सारिका नाव पर मड की ओर गईं और वहाँ खजूर के पेड़ के नीचे दोनों बैठ गईं। आकाश में दूर कहीं-कहीं बादलों के टुकड़े उड़ रहे थे। सूर्य तेजी से पश्चिम दिशा को जा रहा था। उसकी लाल और पीली किरणें टेढ़ी होकर समुद्र की सतह पर रंग-बिरंगे स्वप्न बना रही थीं। समुद्री चिड़ियाँ उड़ती हुई मछलियाँ पकड़ रही थीं। आस-पास और दूर पाल ताने हुए मछलीमारों की डोंगियाँ तैर रही थीं। सारिका इतने दिनों से बरसोवा में रहते हुए भी इधर नहीं आ पाई थी, इसलिए उसे यह स्थान और दृश्य बहुत सुहावना लगा। वह एकटक अस्ताचल-गामी सूर्य की ओर नजर टिकाए यह दृश्य देख रही थी। मड टापू पर ठण्डी हवा से वह और भी उन्मत्त-सी हो उठी। रत्ना ने पूछा—

"क्या देख रही है सारिका ?"

"आज पहली बार मड टापू से समुद्र का दृश्य देखने को मिला। यह तो जुहू से भी सुन्दर है!"

"यह हम लोगों का जुहू है सारिका। यही मेरे स्वप्नों की वाटिका है। यहाँ आकर मुझे ऐसा लगता है कि सचमुच कोई साधु मुझे वरदान देने आ रहा है।"

दोनों अपने ध्यान में खो गईं। सारिका देर तक दृश्य देखने के बाद अपनी किताब पढ़ने लगी। रत्ना का मन पढ़ने में नहीं लग रहा था। उसका अन्तर्मन अपने भीतर संघर्ष कर रहा था। सोचते-सोचते उसे

झपकी लग गई और उसने देखा एक आदमी बरसोवा की ओर न जाकर अथाह सागर की ओर बढ़ने का संकेत कर रहा है। नाव बीच सागर में पहुँचती है। अथाह जल, उछलती लहरें, डगमगाती नाव पर वह बहती जा रही है। नाव के पाल अपने-आप खुल गए हैं। हवा तेज हो गई है। बड़े जोर से आँधी के झोंके आ रहे हैं। लगता है तूफान आने वाला है, पर नाव आगे-आगे बढ़ती जा रही है। सायंकाल का समय है। सूर्य अस्त हो चुका है। क्षितिज से अन्धकार का काला सागर उठ रहा है। देखते-देखते नाव तेजी से थिरकने लगी। मालूम हुआ जैसे डूबने जा रही है। लहरें और तेज हो गई। अँधेरा और घना हो गया। पास का कुछ भी दिखाई नहीं देता। आदमी पास आ गया, पर न उसके सिर पर जटा है न दाढ़ी। वह विचित्र वेश में है। फिर भी स्पष्ट कुछ नहीं था। रत्ना को लगा जैसे पास आकर उसने उसका हाथ पकड़ लिया है। वह सिहर उठी। उसके रोम फूल उठे। जैसा कभी नहीं हुआ वैसा हो रहा है। न जाने यह कैसा हो रहा है ! रत्ना हाथ छुड़ाती है, पर छूट नहीं पाता। वह निर्जीव हो गई है। उस आदमी के छूने से उसे भीतर-ही-भीतर एक अरुचि और एक प्रकार का मोह हो रहा है। वह हाथ छुड़ाना चाहती है, पर हाथ है कि छूट नहीं रहा है, जैसे लोहे की संडासी से किसी ने उसका हाथ जकड़ लिया है। रत्ना भागना चाहती है, पर हाथ नहीं छूटता। नाव डूब रही है, डगमगा रही है। उसमें पानी भर रहा है। अब डूबी, अब डूबी, डूब गई। वह स्वयं डूबी जा रही है। दूर से एक बड़ी मछली लपककर उधर ही आ रही है। रत्ना भय से विह्वल होकर जाग उठी। शरीर पसीना-पसीना हो गया।

उसने जागकर सोचा—यह क्या था ? यह कैसे हुआ ? क्या मैं सो रही थी ? होश आने पर उसे ज्ञात हुआ कि किताब उसके हाथ से छूट गई। सारिका मुँह फेरकर किताब पढ़ रही है। इसी समय यशवन्त उसे सामने आता हुआ दिखलाई दिया। फिर भी वह थोड़ी देर के लिए अपने में खो गई। यशवन्त कह रहा था—

"रत्ना, आज रात हम धार कऊँ (दूर समुद्र में) जायेंगा। विट्ठल जागला बी जाने कू मांगताय। हम सुना ओ जागा जास्ती मच्छी आया

है। सारिका तुमारा सखि ?" सारिका ने मुँह फेरकर देखा, एक लम्बा तड़ंगा गेहुँआँ शरीर का व्यक्ति सफेद बनियाइन और रूमाल बाँधे रत्ना के सामने खड़ा है। वह चाहने पर भी रत्ना से न पूछ सकी कि यह कौन है। वह उसकी तरफ देखती रही। यशवन्त की मुट्ठी में कुछ तामड़ी मछलियाँ थीं। वह चबाता हुआ रत्ना से पूछने लगा—

"तुमकू भी होने का क्या रत्ना ? लो एक !"

जब तक रत्ना मना करे तब तक उसने दो-तीन मछलियाँ उसके सामने रख दीं और खुद भी कर्र-कर्र करके खाने लगा। रत्ना ने वे मछलियाँ यशवन्त को लौटा दीं और बोली—

"तू खा यशवन्त, ऐ हमको चांगला नहीं लगताय। पन तुमारे कू दर रोज समुद्र में जाना होताय इसलिए तेरे कू खाने का।"

सारिका भौंचक-सी यशवन्त को देखती रही। वह मुट्ठी में भरी हुई सब मछलियाँ चबा गया और हड्डियों के टुकड़े फुर्र करके जमीन पर गिराता रहा। रत्ना यशवन्त से बोली—

"तुमकू तो अब जाने का है। यशवन्त, जा, हम अबी पड़ेंगा। जा।"

यशवन्त रत्ना के पास बैठने आया था, पर आज्ञाकारी नौकर की तरह वह उठा और ललचाई आँखों से रत्ना की तरफ देखता हुआ बोला, "तुम सुना रत्ना, आज सकाली (सवेरे) हम साला बर्लीकर कू मारा ! उसका मुख से रक्त फूंटा।"

"अच्छा-अच्छा, जा यशवन्त, मेरे कू पड़ने का।"

यशवन्त नाव पर बैठकर चला गया। वह रत्ना की ओर देखता जा रहा था और गाता जा रहा था। सारिका का मन वितृष्णा से भर उठा। उसने कच्ची मछलियों को ककड़ी की तरह चबाते कभी नहीं देखा था। वह सब भूलकर यशवन्त की ओर देखती रही। फिर रत्ना से बोली, "यह जंगली आदमी कौन है ?"

"यशवन्त, हमारा नाना का लड़का।"

"नाना कौन ?"

"हमारा मामा।"

सारिका चाहती हुई भी आगे कुछ न पूछ सकी। रत्ना ने कहा—

"हम लोगों को पाँच-पाँच छ:-छ: दिन और कभी-कभी आठ-आठ दिन समुद्र में रहना पड़ता है। वहाँ हम लोग खाना नहीं ले जा सकते। उस समय का आहार यह मछली ही होती है। तुझे हैरानी हो रही होगी सारिका और तू सोचती होगी यह कैसा जंगलीपन है! पर असल बात यही है।"

सारिका ने उत्तर दिया, "कैसा लोहे-सा शरीर है।"

"इसी शरीर से दो-दो और तीन-तीन मन के लट्ठे उठाकर ये लोग समुद्र में डालते हैं। तू नहीं जानती आज रात को ये लोग बड़े-बड़े लट्ठे उठाकर पहले समुद्र में उन्हें गाड़ेंगे।"

सारिका ने किताब रखकर पूछा, "कैसे? समुद्र तो इतना गहरा है न?"

रत्ना बोली, "इसका तरीका यह है कि पाँच-छ: बाँस के बराबर एक लट्ठा होता है। उसमें दो-तीन लट्ठे बाँधे जाते हैं, फिर उथली जगह देखकर वहाँ लट्ठा गाड़ते हैं।"

"कैसे?"

"नीचे गाड़े जाने वाले लट्ठे की जड़ में हम लोग बहुत-सी मिट्टी और पत्थर लगा देते हैं जिससे वह 'काठी' (लट्ठा) समुद्र में जाकर खड़ा हो जाय। फिर नाव के सहारे वहाँ जाकर उसको इतना ठोकते हैं कि वह लट्ठा पत्थर की तरह जम जाता है। वैसे भी समुद्र में बहुत सी दलदल और कीचड़ होती है इसलिए उस लट्ठे को जमने में देर नहीं लगती। इस तरह पाँच-छ: लट्ठे हम दूर-दूर पर गाड़ते हैं और उनके सहारे नाव बाँधकर जाल फैला देते हैं। तब जाकर मछलियों का शिकार होता है। हम लोग जाल को 'डोल' कहते हैं और बड़ी मछली को फाँसने के लिए 'खांदा' नाम की लम्बी डोरी में लोहे के तेज़ हुक लगाकर उनमें छोटी मछलियाँ फँसा देते हैं।"

सारिका बोली,, "बड़ा जोखम का काम है! क्या तू भी कभी समुद्र में गई है?"

"एक बार, और वह भी तूफान में। उस समय हमारी नावें समुद्र में डूब गई थीं। मैं अपने बाप के साथ एक टूटे हुए तख्ते पर दो दिन समुद्र

में तैरती रही।"

सारिका उछल पड़ी, "क्या सचमुच ?"

रत्ना ने उत्तर दिया, "इसमें झूठ कुछ भी नहीं है। न जाने कब तक मैं बेहोश रही और कब तक मेरा बाप विट्ठल। मैं शायद उस वक्त आठ या नौ साल की रही होऊँगी। मुझे पूरी याद तो नहीं है, पर जब मुझे होश आया तब मैंने देखा कि मैं बहुत से आदमियों के साथ रस्सी बाँधकर उल्टी लटका दी गई हूँ।"

"तो तुझे तूफान की सब याद है ?"

"कुछ-कुछ। तूफान आने से पहले मैं नाव के किनारे बैठी पकड़ी जाने वाली बड़ी-बड़ी मछलियों को देख रही थी। कभी-कभी पानी में दूर तक तैरती मछलियाँ दिखाई देतीं और अपने डोल के साथ फँसी हुई कई मछलियाँ मैंने देखीं। एक मछली तो इतनी बड़ी थी कि तूफान न आता और हमारी नाव न डूब जाती तो वह मछली बीस-बाईस मन की निकलती। वह रस्सी में फँस चुकी थी।"

सारिका ने आश्चर्य से रत्ना की ओर देखा और बोली, "गजब के आदमी हो तुम लोग ! मेरा तो समुद्र में जाते ही प्राण निकल जाय।"

उस समय रात घिर आई थी। मल्लाह अपनी-अपनी नाव पर पाल ताने समुद्र के गर्भ में जा रहे थे जैसे समुद्र के इन प्राणियों को उससे कुछ डर ही नहीं है। तीस-चालीस फुट की लम्बी नाव और विशाल समुद्र, जिसका ओर तो था छोर नहीं दिखाई दे रहा था। अँधेरा देखकर सारिका घबरा उठी और बोली, "देर बहुत हो गई है रत्ना, चल चलें !"

रत्ना ने सारिका को नाव पर बैठाकर पार पहुँचा दिया। नाव किनारे के खूँटों से बाँधकर दोनों अँधेरे में विलीन हो गईं।

× × ×

जागला बिट्ठल के यहाँ नौकरी करता था। शरीर का हृष्ट-पुष्ट और जवान। छोटा माथा, गोल मुँह और चमकती पीली छोटी आँखें। नीचे का धड़ विशाल और बलिष्ठ हाथ-पैर। वह विट्ठल के साथ पहले समुद्र में मछली मारने जाता था। धीरे-धीरे बिट्ठल ने जाना छोड़ दिया तब

जागला अकेला जाने लगा। उसे खाना और कपड़ा मिलता और वह जानवर की तरह घर का काम करता। पिछले कई वर्षों से वह विट्ठल के यहाँ काम कर रहा था। लोग उसे उकसाते तो वह चुप हो जाता। एक दिन एक मल्लाह ने कहा, "जागला, तेरे कू शिवकर के यहाँ नौकरी करने का नई! तू थलकर आहे। जो तेरे कू मंगता होय तो हम एक छोकरी का साथ तेरा लगन कर देयेंगा।"

जागला बीड़ी पीता हुआ बोला, "गोपाल, हम शिवकर और थलकर ए दोनों ई कोली जात में भेद नई मानताय। और हम वंशी के घर नौकरी करताय। ओ हमकू खाना देताय, कपड़ा वापरताय, बीड़ी का खातर पैसा देनाय। एटले हम वोई जागा काम करेंगा। हमारा साथ विट्ठल और वंशी दोनों प्रेम करताय।"

"तो लगन काये नई करता रे। एक छोकरी हमारा पास हे। अच्छा छोकरी, मजबूत। जो तेरे कू गमे तो बोल। चांगला छोकरी आहे।"

जागला उठा और बीड़ी फेंककर बोला, "काल हम उत्तर देयेंगा।"

इतना कहकर वह चला गया। जागला के लिए यह आश्चर्य की बात थी कि उससे कोई अपनी लड़की की शादी करना चाहे। वैसे उसके मन में यह विचार कई बार उठा कि उसे अपना घर बसाना चाहिए। वंशी के सामने यह बात कहते हुए वह डरता था। उस दिन उसने दृढ़ निश्चय किया और जाल एक कोने में रखकर वह सीधा वंशी के सामने जा खड़ा हुआ। उस समय वह सूखी मछलियाँ एक टोकरे में भर रही थी। जागला को देखते ही बोली, "जागला, जा देख ओ ट्रक कितना उशिर (देर) में बम्बई जायेंगा। जा हमकू पन बम्बई जाने का मांगता, जास्ती माल पड़ाय।" वंशी यह कहकर भीतर से और टोकरे उठा लाई और मछलियाँ बीनने लगीं। जागला ने आकर समाचार दिया कि दो ट्रक चले गए हैं, तीसरा ट्रक एक घण्टे में जायगा।

एक घण्टे का नाम सुनकर वंशी उठी और जागला को मछली भरने का काम सौंपकर रसोई में जाकर वह चाय बनाने लगी।

"जागला, तू भी चाहा पियेंगा?"

"हा," कहता हुआ जागला मछली बीनने लगा। थोड़ी देर बाद

वंशी चाय बनाकर लाई और एक प्याला जागला को दिया ।

चाय पीते हुए जागला ने कहा, "वंशी····"

"काय रे, क्या बोलता ?"

जागला की जबान जैसे बन्द हो गई । फिर भी मन में दृढ़ता भरकर उसने कहा, "गोपाल लगन कू बोलता था ।"

वंशी ने चाय का घूंट भरते-भरते जागला की ओर देखा और प्याला जमीन पर रखकर बोली—

"गोपाल का छोकरी ?"

"हम जनता नईं । पन वो बोलता था एक चांगला छोकरी का वास्ते ।"

वंशी चुप रही । उसने कोई उत्तर नहीं दिया । जागला ने बीड़ी निकाल कर एक वंशी को दी और एक आप पीने लगा । थोड़ी देर बाद वंशी उठी तो बिट्ठल आ गया था और उसने धीरे से जागला की ओर देखते हुए कहा, "लगन का बावत हम एक-दो दिन में बोलेंगा ।"

बिट्ठल ने पूछा, "क्या बोलताय जागला ?"

"कुच नईं," कहकर वंशी ने टाल दिया और जागला बीड़ी पीता बाहर दालान में जा बैठा । बिट्ठल ताड़ी के नशे में चूर वंशी के सामने जा बैठा । वंशी ने देखा तो बोली, "तू हर रोज ताड़ी पीताय रे । आपुन का धन्दा तो देखता नईं ।"

आधी आँखें खोले हुए बिट्ठल ने वंशी की ओर देखा ।

"नाना ने पिया, हमकू बोला तो हम बी पिया वंशी । ताड़ी तो पियेंगा । नई पियेंगा तो धन्दा कैसे करेंगा ?"

"खूब धन्दा करताय । हर रोज ताड़ी पीताय । एई तेरा धन्दाय । मूरख," कहती हुई वह दाँत पीसने लगी ।

"हम बोलताय खबरदार, आगे ताड़ी पिया तो हम घर से निकाल देयेंगा । हमकू ऐसा आदमी नईं पाहिजे । समझ ले बिट्ठल, तेरे कू मार-मारकर ठीक करना होयेंगा । आज तू समुद्र में जायेंगा, जागला कू नईं जाने का ।"

बिट्ठल का नशा हिरन हो गया । वंशी फिर भी उसको गालियाँ देती

रही। वह चुपचाप उठा और बाहर जा बैठा। उस रात विट्ठल नाव पर गया। रत्ना अपने कमरे में पढ़ रही थी। बंशी ने दस-दस रुपये के दो नोट देते हुए जागला से कहा, "जागला, क्या तुम अब बी शादी करेंगा ?"

"जैसा तुम बोलेंगा।"

"तो हमारा पास रे। एक विट्ठल और दूसरा तू। समझा ?"

जागला कुछ भी नहीं समझ पाया। रात को बंशी ने मछली परोसते समय उसे ताड़ी पिलाई और आप भी पी। दूसरे दिन जागला ने गोपाल से शादी के लिए मना कर दिया।

× × ×

रत्ना का मानसिक स्तर बहुत विकसित नहीं हो पाया था। वह न तो जीवन की गहराई तक जा सकी थी, न वास्तविकता को ठीक तरह समझ ही सकी थी। सारिका को पढ़ने-लिखने में व्यस्त देखकर भी उसे पढ़ने की प्रेरणा नहीं मिली। जिस वातावरण में वह पली थी, वह उस पर पूरी तरह छा रहा था। अन्य साधारण मछलीमारों की लड़कियों की तरह यद्यपि उसकी चाह नहीं थी फिर भी वह बहुत ऊँचा नहीं जा पाई थी। उसके अविकसित मन में वैभव के महल बन रहे थे। यशवन्त को वह पसन्द करती हुई भी पूरी तरह नहीं चाह पा रही थी। वह शायद इसलिए कि थोड़ा-सा पढ़ने-लिखने के बाद उसके अस्वस्थ मन में 'नई-नई आकांक्षाएँ जाग रही थीं। बम्बई का वैभव, ऊँचे महल, मोटर और वहाँ के निवासियों की आन-बान, केवल यही बातें उसके ध्यान में आतीं। उसे लगता था जैसे जीवन का यही लक्ष्य है। कभी-कभी उसके मन में आता कि मैं मछलीमार नहीं बनी रह सकती। मुझे ऐसे आदमी को खोजना होगा जो मेरी इन अभिलाषाओं को पूरा कर सके। उसकी इच्छाओं के कोने वातावरण के भार से दब रहे थे। मन कभी-कभी विद्रोह कर उठता, पर विद्रोह अपने भीतर उबल-उबलकर रह जाता। उसने देखा कि जीवन का अर्थ यही नहीं है कि व्यक्ति एक ही तरह की रट में पिसता रहे। उसे भी बढ़ना चाहिए। यदि कभी उसके मन में एक अध्यापिका बनने की इच्छा जागती तो दूसरे ही क्षण वैभव में पली धनी लोगों की पत्नियों को देखकर वैसा बनने की चाह होती। तीसरे क्षण अखबारों में छपे हुए

चित्र देखकर वैसी ही सिनेमा की हिरोइन बनना चाहती। इसी अस्थिरता में उसके दिन बीत रहे थे।

वंशी जागला को लेकर रत्नागिरी तक घूम आई थी। कहने के लिए उसने लोगों से कहा कि वह तीर्थ-यात्रा को गई थी, पर उसका उद्देश्य यह था कि वह रत्ना के लिए कोई अच्छा लड़का ढूँढ़े। वह भीतर-ही-भीतर हीरा से द्वेष करती थी। वह चाहती थी हीरा उसके सामने झुके। पर भोली-भाली हीरा यह नहीं समझ पाई कि वंशी उस पर क्यों अप्रसन्न है। कोली जाति में स्त्रियों का राज्य है और लड़कियाँ घर का सब काम-काज देखने के अलावा बाहर जाकर मछलियाँ बेचती हैं। जहाँ तक अर्थ का प्रश्न है उसका प्रत्यक्ष लाभ परिवार के लोगों को स्त्रियों से ही होता है, इसलिए लड़की के घर के बजाय लड़के के माँ-बाप को ही ज्यादा खुशामद करनी पड़ती है। यही नहीं लड़के के माता-पिता ब्याह में लड़की वालों को रुपया भी देते हैं। चाहे हम इसे लड़की बेचना न कहें तो भी हमको मानना पड़ेगा कि पाँच सौ से लेकर पाँच हजार तक कोली लड़की वाले रुपया लेते हैं। वंशी को रुपये की इतनी चिन्ता नहीं। उसका घर भरा-पूरा था। वह समय-समय पर कई तरह की जड़ाऊ गाँठें पहनकर निकलती। मोहन माला, चपला हार की कई जोड़ियाँ उसके पास थीं। हाथों के लिए तीन-तीन ठोस कड़े थे और एक कड़े की जोड़ी तो जड़ाऊ थी जिसकी कीमत चार हजार कूती जा सकती है। उसके सोने के कमरे में जमीन के नीचे घड़ों में चाँदी और सोना गड़ा था। एक पक्का मकान था जिसमें वह रहती थी। बरसोवा में ऐसे कम परिवार थे जो वंशी का मुकाबला कर सकें, इसीलिए वंशी दूसरों के मुकाबले में अपने को ऊँचा मानती और अकड़कर चलती। इधर पिछले दिनों से उसके मन में और भी बड़ा बनने की धुन समाई थी और बड़ा बनने के लिए वह एक मालदार पढ़ा-लिखा लड़का रत्ना के लिए ढूँढ़ना चाहती थी। वंशी जीवट की औरत थी। सुबह-शाम सिर में तेल झँसवाती। कई तरह के लेवेण्डर उसके यहाँ थे और ढेर-के-ढेर साड़ियाँ। रत्ना ने वे सब बातें माँ से सीखीं और वैभव पाने के लिए वह उससे ज्यादा ललचा उठी। इन्हीं दिनों एक बात नई हो गई।

नारियल पूर्णिमा का दिन था। लोग कागज के फूलों से रंग-बिरंगे नारियल सजाकर सुबह से ही जुलूस की तैयारी कर रहे थे। लड़कों में उत्साह था, लड़कियों में उमंग। प्रत्येक घर से सजे हुए नारियल लेकर स्त्रियाँ गीत गाती हुई निकलीं। आगे-आगे नये-नये कपड़े पहनकर एक ही प्रकार की ड्रेस में लड़कों का झुण्ड भजन गाता चल रहा था। कई तरह के देशी बाजों के साथ एक अँग्रेजी बैण्ड भी था। जुलूस बरसोवा के उत्तर में मीनियाँ महादेव के मन्दिर के पास इकट्ठा हुआ। सब लोगों के नारियल चाँदी के पत्रों से सजे हुए थे, किन्तु वंशी के नारियलों की शोभा और भी अधिक थी। उसका नारियल सुनहरी पत्रों से सजा था जिस पर गुलाब और चम्पा के फूलों की माला पड़ी थी। जुलूस सारे बाजार में घूमता हुआ समुद्र के किनारे पहुँचा और अपनी-अपनी सजी हुई नावों में बैठकर लोग नारियल विसर्जन करने चले। एक नाव में भजन-मण्डली गीत गा रही थी, दूसरी में स्त्रियाँ, तीसरी में नाचते हुए मल्लाह, चौथी में बाजे बज रहे थे। एक खास जगह जाकर समुद्र की पूजा हुई। सबने अपने-अपने नारियल चढ़ाए। लोगों की तरफ से प्रसाद बाँटा गया। जब सब नावें लौट रही थीं तो समुद्र में दूर से लकड़ी के तख्ते पर बहता हुआ एक आदमी दिखाई दिया। वह ऊँची-ऊँची लहरों के साथ जैसे पहाड़ों को पार करता आ रहा हो। बिट्ठल ने देखा तो चिल्लाया। बहुत से मछलीमारों का ध्यान उधर गया। कुछ नावें लौट चुकी थीं, कुछ लौट रही थीं। बिट्ठल, जागला और कुछ मछलीमार नाव लेकर आगे बढ़े। बड़ी मुश्किल से वे उस तख्ते के पास पहुँच पाए। पूर्णमासी होने के कारण समुद्र अब भी गरज रहा था। दो-तीन नावों ने जाकर उस बहते आदमी को घेरा और रस्सियों से कुछ मछलीमार उतरकर उस आदमी को ले आए। हाथ, पैर पीठ में उसे मछलियों ने नोच लिया था और उसके शरीर पर जगह-जगह घाव थे। उपचार होने और होश आने पर उसने इतना ही कहा कि 'मेरा नाम माणिक है।' वह बिट्ठल के यहाँ एक कमरे में ठहरा। एक सप्ताह के बाद वह पूरी तरह स्वस्थ हुआ।

माणिक मझोले कद का आदमी था। साँवला रंग, बड़ी, मोहक और शरारती आँखें, पतली नाक, मोटे ओठ, अण्डे की तरह लम्बा गोल

मुँह, गड्ढेदार चौड़ा माथा और उठी हुई कनपटी की हड्डियाँ। साधारण मनुष्य था। इन आठ दिनों में वह बहुत कम बोला। केवल सबको घूर-घूरकर देखता और चुप पड़ा रहता। बीच-बीच में कभी अँग्रेजी और मराठी मिली हुई भाषा बोलता। एक दिन रत्ना के कमरे में उसने देखा कि वह पढ़ रही है तो बोला, "ओ, हम बी ये किताब पड़ाय। अच्छा किताब हे। गुड ! तुमरा इदर डेली पेपर नहीं आता ? हम डेली पेपर पढ़ना माँगताय।"

एक दिन वंशी ने पूछा, "तुम कौन हे ?" वह बोला, "हमरा लम्बा कथाय। कोई दिन तुमकूँ बोलने का।" और एक दिन कहानी सुनाने का निश्चय हुआ। उस दिन रात ओस से भीग चुकी थी। विट्ठल के मकान के बाहरी दालान में बिजली का प्रकाश चमचमा रहा था। धीरे-धीरे गाँव के मछलीमार बीड़ी पीते, पान खाते इकट्ठे होने लगे। कोई दालान के किनारे जमीन में पैर लटकाए बैठा। कोई खम्भे के सहारे आ टिका। कोई खाली जमीन पर आ लेटा। जिसको जहाँ जो जगह पसन्द आई, बिना किसी क्रम के बैठ गया। बीड़ी का धुआँ सारे दालान में छा रहा था। उसकी लहरें कभी-कभी प्रकाश को ढक लेतीं। एक कोने में माणिक, उसके पास बीड़ी फूँकता हुआ विट्ठल, जरा दूर हटकर जागला, पैर फैलाकर ऊँघता हुआ नाना, अपनी चुँधियाई आँखों से देखता हुआ गोपाल और फूली नाक वाला रामा, सब बैठे थे। बाउआ को बुलाया, पर वह नहीं आया था। एक ओर पसीने से तर-बतर लड़कों और बच्चों का गिरोह अपना-अपना मुँह और पसीना पोंछता आ डटा। वंशी, रत्ना, पार्वती तथा कुछ औरतें भीतर के दरवाजे से सटी बैठी थीं। वंशी के मुँह में पान था। काजल से उसकी आँखें और भी बड़ी लग रही थीं। माथे पर गोल टिकुड़ी और चमचमाता हुआ मुँह। चाँदी की एक तश्तरी भुनी हुई सुपारी के टुकड़ों से भरी सामने रखी थी और उसके ऊपर रखा हुआ था भावनगरी सरौता।

लेटे-लेटे एक मच्छीमार बोल उठा, "हा बोल भाई, काय कथा आहे ?"

दूसरा बोला, "रात में कथा का मजा आता हे। हमवी बड़ा-बड़ा तोफ़ान देखा। कित्ती बार डूबा, पन मच्छी कू आपन तन नई छूने दिया।"

तीसरा बोल उठा, "मच्छी हमारा खाने आय। हम मच्छी का खाने का नई। जो एक दिवस खँडोवा बावा का मेरबानी होयेंगा तो हम 'ह्वेल' मच्छी पकड़ेंगा। इतना हिम्मत रखता हे हम।"

जागला ने बीच ही में बात काटकर कहा, "ओ दिन गोल मच्छी हमारा डोल (जाल) में आया, पन ओ डोल कू कांप दिया। तीस सेर का होयेंगा।"

"तेरा डोल मजबूत नई होयेंगा। हमारा डोल कोई मच्छी काँपकर देखे। साला कू ओई जागा चबा जायेंगा," एक मच्छीमार ने सोते से उठकर कहा।

चौथा बोला, "माणिक कू बोलने देने का न।"

"हा भाई, तो बोल आपन कथा। हम सब सुनना मांगताय।"

सब लोग चुप हो गए। माणिक ने इस प्रकार कहना शुरू किया—

"मैं रहने वाला तो बम्बई का ही हूँ, माहीम के पास कोलीबाड़े का। लेकिन पढ़ा-लिखा होने से मुझे बड़ी मच्छीमार नाव में नौकरी मिल गई और मैं मैनेजर हो गया। हम लोग नाव लेकर दूर-दूर तक मच्छी मारने जाते थे।"

इसी समय एक ने पूछा, "मैनेजर क्या ?"

"तांडेल, बड़ी नाव (मचवा) का तांडेल।"

"बराबर, बराबर ! हा—"

"हमारी नाव दूर-दूर तक जाती—बीस-बीस मील। कभी-कभी एक-दो सप्ताह तक लौटती। एक बार एक मास भी लग गया। जब लौटते तो सारी नाव कई तरह की मच्छियों से भरी रहती। बहुत दिन तक यही चलता रहा।"

लोगों में से कुछ ने 'हा' भरी और कुछ चुप होकर सुनने लगे।

"तो उस दिन हम बेरावल से 'मचवा' लेकर चले। हमको बम्बई आना था। हुकम था कि मचवा मच्छी मारता हुआ बम्बई पहुँचे। कुछ काम रहा होगा। काठियावाड़ का मच्छीमार बड़ा बहादुर गिना जाता

है। वह समुद्र से ऐसे खेलता है जैसे कोई खिलाड़ी जमीन पर दौड़ लगाता हो। लेकिन लोग कहते हैं कि अपने मुँह अपनी तारीफ नहीं करनी चाहिए। आपको विश्वास हो या न हो, मैं एक तख्ते पर खड़ा मीलों समुद्र में तैर सकता हूँ। एक बार एक मछली पर बैठ गया और उसके सहारे बहुत गहरे समुद्र तक चला गया और उभर आया। मैंने मच्छी को जाल से बाँध लिया और होड़ी (नाव) तक घसीट लाया। इसी से मुझे कम्पनी ने तांडेल बना दिया।"

सुनने वाले उठकर बैठ गए। उनकी आँखें चौड़ी हो गईं। आश्चर्य में भरकर सबने अपनी-अपनी बीड़ी सुलगाई। उन्होंने अब तक कई मच्छीमार देखे थे। पर ऐसा नहीं सुना था कि कोई मच्छीमार मच्छी पर बैठ जाय और जाल में फाँसकर उसे पकड़ लाए। एक आदमी शक में पूछने लगा तो सुनने वालों ने रोक दिया। माणिक ने कहा, "मैं मीलों गहरे समुद्र में डुबकी लगा चुका हूँ। मेरे लिए यह कोई नई बात नहीं। बेरावल से चले हमको दो दिन हो गए थे। हमारा मचवा दक्खिन की ओर आ रहा था। आप तो जानते हैं, इन दिनों 'मूसी' मछली पकड़ने का मौसम होता है। मैंने सोचा, 'मूसी' से नाव भरकर ले चलें। हमारे दल में आठ साथी थे और दो मच्छीमार होड़ी (नाव)। मजे में लहरों पर झोंके खाते हम लोग आगे बढ़ रहे थे। वैसे तो मरद के लिए गाना मैं व्यर्थ समझता हूँ, पर मेरे साथी गाने के लिए प्रसिद्ध थे। हम लोग मस्ती में झूम-झूमकर हवा की थिरकन से सुर मिलाकर 'बाहेर गावाला मचवा बाँधला, मचवा माँझा न्यारग' गाना गाने लगे। इसी समय एक ने 'रंगती चन्दन लालगो, तूनी परिणाला भरतारगो' की तान अलापी।"

माणिक ने दोनों गीत स्वयं गाकर सुनाए। उसकी आवाज दूर-दूर तक गूँज उठी। घरों में सोते हुए कई आदमी उठ आए।

माणिक ने कहते हुए वंशी की ओर देखा। एक तीखी नजर रत्ना पर डाली। वह मन्त्र-मुग्ध-सी उसी की ओर देख रही थी। माणिक भीतर-ही-भीतर उत्फुल्ल हुआ और कहने लगा—

"सवेरा होते-होते हम आठ मील और समुद्र में आगे बढ़ गए। मैं

मचवे का तांडेल था। बाकी सब मेरे नीचे काम करने वाले।"

'तांडेल' का नाम लेते ही उसके मुँह पर हुकूमत की चमक आ गई। वह गर्व से और भी तन गया।

"पूरब के आकाश में हल्की-हल्की लाली फैल रही थी। मुझे लगा जैसे कोई जवान औरत मुस्कराकर लाज से भर रही हो और उसके साँवले गाल शर्म से लाल हो उठे हों।"

यह कहते हुए वह एक बार खुद मुस्कराया और उसने रत्ना की ओर देखा। फिर अपनी मूँछों पर हाथ फेरता हुआ बोला—

"मचवे का सुकाणु (पतवार) रामा कोली के हाथ में था। वह उसे सँभालने में उस्ताद माना जाता था। शीड (मस्तूल), काठी (पाल), परवान (जिससे मस्तूल बाँधा जाता है), बल्ली, डोल (जाल), खाँभा (मछली पकड़ने की रस्सी) सब नये थे। यहाँ आकर हमने समुद्र की गहराई नापी तो वह कोई तीस 'वा वा' (बाँस) थी। आप लोग जानते हैं कि इतने गहरे पानी में 'सुरमई' मच्छी तो मिल जाती है, पर 'मूसी' नहीं होती। आसपास 'सुरमई' मच्छियाँ सूरज की कोमल किरणों में चमाचम चमकती उछलती-कूदती नजर आ रही थीं। मेरे साथी उन्हें ललचाई आँखों से देखकर क्षण-भर के लिए रुक गए। मैं नाल पर खड़ा समुद्र के सौन्दर्य को देख रहा था। सुकाणु घुमाकर रामा ने मचवा रोकने की कोशिश की और मेरी तथा अन्य मच्छीमारों की तरफ देखा। मैंने आसमान की ओर देखकर कहा, 'आगे बढ़ो।' मुझे उस समय आसमान में बादलों के हल्के काले टुकड़े दिखाई दिए। बिना रुके सुकाणु घूमा और सब मन मसोसकर आगे बढ़े। मैं तांडेल था न, यह कैसे हो सकता था कि वे मेरी बात न मानते। हम लोग पाँच-सात मील और आगे बढ़ गए। हमें लगा कि समुद्र हमेशा की अपेक्षा अधिक शान्त है, जैसे तूफान की इन्तजारी में वह स्थिर हो गया हो। बड़ी गम्भीर थी उसकी चुप्पी। यहाँ पानी की गहराई पचास 'वा वा' से ऊपर थी। फिर भी 'मूसी' का कहीं पता न था। मूसी जैसी मछली, जो समुद्र की सतह पर आकर सूरज से अपनी पीठ सेंका करती है, जब वह भी हमें सतह पर न दिखाई दी तो हमारा माथा ठनका। इन जीवों को तूफान का अन्दाज

हमसे पहले हो जाता है। लेकिन कोई हिम्मत न हार बैठे, यह सोचकर और बिना मछली के जाना मूर्खता होगी, यह सोचकर मैंने चिल्लाकर कहा, 'अरे तोफान-ओफान कुछ नहीं है। मूसी हम लोगों का मचवा देखकर छिप गई होगी। फेंको जाल।' तांडेल का हुक्म कौन टाल सकता था। जाल डाल दिया गया। लंगर छोड़ दिया गया। सुकाणु आड़ा करके रामा ने बाँध दिया। इसी समय तूफान के लक्षण दिखाई दिये। मैं नाल पर खड़ा चारों तरफ देखकर सोचने लगा, यदि हम लोग अब वापस भी लौटें तो भी तूफान की चपेट से बच नहीं सकते। फिर क्यों नहीं मल्लाहों के कायदे के अनुसार डटकर लहरों से लड़ने की तैयारी करें। और फिर हमारा 'मचवा' इतना बड़ा था कि मामूली तूफान उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता था। मैंने हिम्मत बँधाई और खुद भी छाती ठोंककर लहरों और तूफान से लड़ने के लिए तैयार हो गया। गरजकर मैंने कहा, 'अगर समुद्र में तूफान आता है तो मैं भी कम नहीं हूँ। मैं तूफान से लड़ना जानता हूँ। मैंने ऐसे कई तूफान देखे हैं। डटे रहो बहादुरो, शाबास।' "

इतना कहते-कहते माणिक ने एक बार फिर सबकी ओर देखा। सुनने वाले एकटक उसकी ओर देख रहे थे जैसे सचमुच माणिक तूफान में अकेला खड़ा है, मस्तूल टूट गया है, बल्ली बह गई है, डोल डूब गया है, नाव में पानी भर रहा है और वह टुकड़े-टुकड़े हो रही है। रत्ना की उत्सुकता और जागी। वह और भी सतर्क हुई। आश्चर्य से उसकी आँखें कान तक खुल गईं। वह और भी उत्सुक हो बैठी। वंशी ने सुपारी काटना बन्द कर दिया। वह माणिक की तरफ गहरी आँखों से देखने लगी। उसने फिर कहना शुरू किया—

"जिस बात का हमें डर था वही हुई। कोई पन्द्रह-बीस मिनट के भीतर हवा के सनसनाते झोंके उठने लगे। समुद्र में खलबली-सी मच गई। जैसे सारे समुद्र को आँधी की विशाल मथानी से कोई मथे डाल रहा हो। आकाश को घने बादलों ने ढक लिया। लगता था जैसे हमारे ऊपर एक नया सागर उमड़ रहा हो। लहरें उछल-उछलकर 'मचवे' की पट्टियों से टकराती अपने क्रोधी मुख से झाग फेंकने लगीं। लहरों को

देखकर मालूम होता था जैसे पहाड़ दूर से उड़कर चले आ रहे हों। उस समय हवा की रफ्तार कम-से-कम डेढ़ सौ मील प्रति घण्टा होगी। आदमी नाली पर खड़ा हो तो बात-की-बात में उड़कर लहरों में समा जाय। उस समय हवा का बहाव किनारे की ओर था। लंगर पड़े रहने पर भी 'मचवा' उल्टा बहने लगा और डगमगाकर ऐसे नाचने लगा जैसे तेज हवा में कागज उड़ते हैं। कहीं सुना था इसलिए याद आया जैसे शिवजी ने मौज में आकर तांडव-नर्तन किया होगा और सारी जमीन डोलने लगी होगी। झोंकों से टकराकर हमें ऐसा लगा कि हमारा 'मचवा' अब उल्टा, अब डूबा। एक छोटी नाव का, जो हमारे 'मचवे' से बँधी थी, कहीं पता नहीं था। रस्सी टूट जाने से वह बह गई। मैंने देखा दूर कोई सफेद पत्ता समुद्र में उड़ रहा है। वह हमारी नाव थी। तभी मुझे सूझा कि लंगर उठा दूँ ताकि 'मचवा' के साथ-साथ हम किनारे की ओर बहने लगें। उस समय सारे समुद्र में लहरों के पहाड़ उठ रहे थे। एक लहर से दूसरी लहर के बीच का भाग मीलों गहरा हो गया था। भँवरों को देखकर प्राण काँप रहे थे।"

माणिक के कहने का ढंग इतना आकर्षक था कि सुनने वालों को वहीं बैठे समुद्र के तूफान का दृश्य दिखाई देने लगा। स्त्रियों के मन भय से धड़कने लगे। पुरुष और भी चिन्तित-से हो उठे और बीड़ी पीना भूलकर मानो सारे शरीर से उसकी बातें सुनने लगे। वह कह रहा था, "झोंके और झटके बढ़ गए। मुझे यह समझने में देर न लगी कि सारा समुद्र भँवर से डोल उठा है। अगर हम किसी भँवर में पड़ गए तो 'मचवे' का पता नहीं चलेगा। मैंने हिम्मत करके लंगर उठवाया। मेरे दो साथी मस्तूल पर चढ़ने की तैयारी करने लगे। लेकिन उतनी तेज हवा में मस्तूल पर चढ़ना और पाल खोलना कितना कठिन काम था। एक मच्छीमार जो ऊपर चढ़ा तो हवा के झोंके से करीब ५० गज की दूरी पर समुद्र में जा गिरा। उसका पता ही नहीं लगा। वैसे उसको देखने की किसी को फुरसत भी नहीं थी। दूसरा साथी रस्सी पकड़ने पर भी पाल न खोल सका और उसके भयंकर तमाचे से नीचे उतरने के बजाय नाव के पास समुद्र में जा गिरा। हमारे रस्सियाँ फेंकते-फेंकते

वह मीलों दूर चला गया। हमारा बुरा हाल था। न खड़े रह सकते थे, न बैठ सकते थे। हमने सब लोगों को नाल के भीतर सिर छिपाकर बैठने को कह दिया और सुकाणु अपने हाथ में लिया। 'मचवे' का रुख किनारे की तरफ बड़ी कठिनाई से लौटाया। मचवे के आड़े होते ही लगा कि पहाड़ की तरह लहर दूर से आकर हमें निगल जायगी। मरें चाहे जियें, यही सोचकर मैंने सुकाणु पूरी ताकत से घुमा ही तो दिया और जब तक वह पहाड़-जैसी लहर हमारे मचवे पर झपटे उसका रुख बदल चुका था। हर लहर के झटके के साथ हम मानो लहर के पहाड़ पर चढ़ जाते और दूसरे ही क्षण ऐसा लगता जैसे मीलों नीचे किसी खाई में उतर गए हैं। तेज तूफानी हवा हमारी कनपटियों के पास तीर की तरह सनसनाती चल रही थी। लंगर उठते ही हमारा 'मचवा' छोटी सी गेंद की तरह लहरों पर उछलता-गिरता उड़ चला। नाल पर लंगर बाँधने का जो खूँटा 'भुरड़ा' था वह देखते-ही-देखते हिल गया। फिर एक ऐसी खाई में हम सब गिर पड़े कि आँखें बन्द हो गई। क्षण-भर को ऐसा लगा कि करोड़ों मन पानी हमारे ऊपर से होकर जा रहा है। लेकिन दो-एक मिनट बाद ही जाने कैसे पानी से ऊपर उभरा। 'भुरड़ा' टूट गया था। नाल की ऊपरी पटिया तड़क गई। पाल की रस्सियाँ टूट गई। मस्तूल के ऊपरी छोर पर एक कोने से अटका कपड़ा बड़ी जोर से फड़फड़ा रहा था। 'मचवे' में पानी भर गया। अपने उस 'मचवे' की यह हालत देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैं यह कहना भूल गया कि पानी से निकले 'मचवे' के साथ ही कुछ साथी डूब गए थे। जो दो-एक बचे थे वे गुम-सुम निर्जीव-से थर-थर काँप रहे थे। मृत्यु इतने पास से हमें कभी दिखाई नहीं दी थी। पर उसका कोई भय हमें नहीं था। देखता हूँ कि मस्तूल जड़ से उखड़कर पानी में ऐसे गिरा जैसे रावण की कागज की मूर्ति आग लगने पर धड़ाके के साथ जमीन पर गिरती है। जी धक से हो गया। हम सब लोग चिल्ला पड़े। फिर कोई दो मिनट के भीतर ही न जाने कितनी दूर समुद्र की अथाह तूफानी लहरों में खो गए। मैंने आँखें मूँद लीं। मैं लहरों में डूब रहा था। लहरें ही मुझे उबारती थीं। मैंने साँस रोक ली। देखा, दूर से एक पहाड़-सी लहर आ

रही है। न जाने कितनी देर तक डूबता-उतराता मैं मौत-से लड़ता रहा और इस आफत की घड़ी में मैंने अपने-आपको अधिक-से-अधिक सावधान और शान्त रखने की कोशिश की और धीरज के साथ बहते हुए एक बड़े-से कुन्दे की तरफ बढ़ने लगा, जो मुझसे थोड़े ही अन्तर पर बह रहा था। हवा और लहरों ने सहायता दी। वह मेरी पहुँच में आ गया। लेकिन दुर्भाग्य कि मैं उसको पकड़ ही नहीं सका। एक दूसरी लहर ने उसे मेरी ओर इतने जोर से फेंका कि मैं सब सिट्टी-पिट्टी भूल गया और भीतर अतल समुद्र में जा डूबा। थोड़ी देर बाद मेरे पैर किसी चट्टान से छू गए। अरे तो क्या मैं एकदम तली में पहुँच गया? मैंने आँखें खोलीं तो चारों तरफ धूसर अँधेरा था। तली का कूड़ा-कर्कट पानी में घुल गया था। साहस बटोरकर मैं ऊपर आने के लिए छटपटाया। साँस के साथ पानी पी रहा था। मन घबरा रहा था। न जाने कैसे मैं ऊपर आ गया। मुझे लगा जैसे मेरा एक हाथ और पैर किसी चीज में फँस ग हैए। क्या आप उस समय की कल्पना कर सकते हैं, मेरी क्या हालत हो गई होगी?"

लोग चिल्ला उठे, "खंडोवा भगवान्! मल्हार मार्तंड जिसकू बचाता है, ओ बचताय माणिक!"

माणिक बोला, "सबसे बड़ी बात यह थी कि मेरे होश गुम नहीं हुए थे। समुद्र शान्त हो रहा था। लहरों की ऊँचाई कम हो रही थी। हवा की तेजी घट रही थी। वह लकड़ी का तख्ता मुझसे थोड़ी दूर पर बह रहा था। पर हाथ-पैर तो बँधे थे न, मैं समझ गया यह मछली मारने का जाल है जिसमें मैं फँस गया हूँ। जैसे-जैसे मैं छटपटाता वैसे-ही-वैसे और उलझता जा रहा था। थोड़ी देर के लिए मैंने हाथ-पैर मारना बन्द कर दिया। मैंने फौरन गले की पतली रस्सी को झटका देकर तोड़ लिया और चाकू खोलकर जाल के धागों को काट डाला। मैं उसी तख्ते के सहारे तैरने लगा और न जाने कितने समय तक बहता रहा, मुझे याद नहीं। पर मैंने तख्ता नहीं छोड़ा, इतना मुझे याद है। शायद कई दिन लगे होंगे कि मैं यहाँ आ लगा और बिट्ठल काका ने मुझे बचा लिया। कैसे आपको धन्यवाद दूँ!"

माणिक के चेहरे पर दीनता, करुणा और कृतज्ञता के भाव चमकने लगे। उसकी आँखों में आँसू आ गए। गला भर्रा उठा। उसने कमीज से आँसू पोंछे और थूकने के लिए दालान से बाहर गया। फिर आ बैठा। लोगों के मन पसीज उठे। रत्ना की आँखें भर आईं। वंशी कराह उठी। विट्ठल जड़ की तरह दया-भरी निगाह से माणिक की ओर देखता रहा। जागला बोला, "जो कुच होताय चांगला होताय।"

सब लोग उठ गए।

विट्ठल ने कहा, "सोने का नई क्या माणिक ? आधी रात होताय।"

रत्ना गद्दे पर लेटी तूफान की बात सोचती रही। उसे लगा कितना बहादुर है यह माणिक। वंशी और ही उधेड़-बुन में थी। सवेरे चाय का प्याला देते हुए वंशी ने पूछा—

"अबी क्या करेंगा माणिक भाव ?"

"समुद्र का काम नई करेंगा। मच्छीमार नई बनेंगा। माहीम में हमारा घेर हे, उदर जायेंगा। आपुन पइला धन्धा देखेंगा।"

"पइला धन्दा ?"

"हा। हम पइले मच्छी मारकीट में 'सोल एजेन्ट' था।"

"मच्छी मारकीट में, क्राफर्ट मारकीट के पास ?"

"हा। हम ओइ काम करेंगा।"

"पन इदर आने का नई क्या ?" वंशी ने पूछा।

"जरूर जरूर, तुम हमारा जान बचाया। हमकू जीवन दिया। ए क्या कमती हे। इसका कोई किम्मत नई ?" कहकर माणिक ने दया-भरी नजर से वंशी की ओर देखा। उसी समय रत्ना आ गई और मुस्कराकर बोली, "तुमारा कथा अद्भुत आहे, हमकू भोत रात तक नींद नहीं बापरा।"

"हमकू तुमारे कू सुनाकर नींद नहीं बापरा रत्ना।"

"समुद्र में तुमकू मछली नई खाया ?" रत्ना ने पूछा और अचकचाई भी।

"खाता तो इदर किदर तुमकू देखता ?" मुस्कराकर ललचाई आँखों से माणिक ने रत्ना को देखकर कहा।

वंशी ने बात टालते हुए कहा, "हा, तुमकू इदर कबी-कबी आने का माणिक।"

"जरूर-जरूर। आप लोक हमारा बाय, बापू हे।"

वंशी पुलकित हो उठी। उसके साथ ही माणिक उठकर चलने लगा।

× × ×

रत्ना के दिमाग में माणिक की बहादुरी की कथा कई दिनों तक घूमती रही। उसे लगा यह कितना बहादुर है। पढ़ा-लिखा भी है। कभी-कभी अंग्रेजी भी बोलता है। फिर मच्छीमार कहानी सुनाते समय उसके चेहरे पर कितनी चमक थी। बार-बार मेरी तरफ देखता था, जैसे मैं ही अकेली उसकी कथा सुन रही होऊँ। तो क्या उस दिन 'मड' पर जो सपना देखा था वह यही है। वह यशवन्त से इसकी तुलना करने लगी। कई दिनों तक माणिक की कथा का उस पर नशा छाया रहा। वंशी को महसूस हुआ रत्ना के लिए खँडोबा बाबा ने इसे भेजा है। छब्बीस-सत्ताईस साल की उमर होगी। अधिक-से-अधिक तीस साल। कहता था कोई धन्धा करेगा। शिवकर है या थलकर। शिवकर हुआ तो बात चलेगी। वह टुकड़े-टुकड़े करके माणिक के सम्बन्ध में सोचती हुई कुछ औरतों के साथ ट्रक पर मछलियाँ रखवाकर ले चली। 'जाने कौन है, इतने दिन रहा, पूछा भी नहीं।' खण्डोवा बाबा, शिवकर हो तब तो ठीक-ही-ठीक है। हीरा भी उसी ट्रक में जा रही थी। हीरा बोलना चाहती थी, एकाध बार मुँह भी खोला, पर वंशी ने उसे देखकर मुँह फेर लिया। हीरा भी चुप हो गई। वंशी सोच रही थी, हीरा से मुझे नफरत है; मैं उसके घर रत्ना को नहीं दूँगी। यशवन्त कुछ पढ़ा भी तो नहीं है। मेरी लड़की पढ़ी है। शायद माणिक मारकीट में मिल जाय। इसी उधेड़बुन में वह मछली मारकीट जा पहुँची और मछलियां उतारकर अपने आढ़ती के पास जा बैठी। जो मछलियाँ बिकीं उनके दाम उसने गाँठ में बाँधे। टोकरे इकट्ठे करके एक कोने में रखे और बाजार से कुछ सामान खरीदकर लौटी तो देखा माणिक घूम रहा है। उसने आवाज लगाई तो वह आकर बोला, "हम मारकीट में आढ़त का काम शुरू कर दियाय वंशी बाय।"

"किदर।"

"उस कोना में। जागा नई मिलाय तो उदर काम करताय। कबी बरसोवा आयेंगा।"

"पगड़ी दियाय क्या ?"

"बिना दिया कइसा काम होयेंगा। घर बेचा पइसा इकट्ठा किया और पट्टा का वास्ते दो सौ दिया। अब टीक हे, चलेंगा। नई चलेंगा तो और काम देखेंगा। क्या करने का ? कुच काम तो करने का। नई करेंगा तो खायेंगा किदर ? रयेंगा किदर ? इतना नक्की के मच्छीमार का काम अब नई करेंगा।"

"बराबर, बरावर।"

माणिक दौड़कर गया और चाय, पान, बीड़ी ले आया। वंशी ने चाय पी, पान खाया और बीड़ी पीने लगी। माणिक ने वंशी को अपने बैठने की जगह बताई। केवल एक गज जगह थी। दोनों वहीं बैठ गए। वंशी ने पूछा—

"माणिक, हम एक बात जानना मांगताय। तुम शिवकर के थलकर।"

"शिवकर न। पन हम अइसा कोई बात मानता नई।"

वंशी भीतर-ही-भीतर पुलकित हुई और बोली—

"अइसा क्या ? तब तो भोत टीक। आपुन जमात काय ? हमबी शिवकर।"

"हमतो तुमकू अपना बाय माना। हमारा जान बचाया। खात्री किया। रत्ना कइसाय, बिट्ठल काका कइसाय ? टीक होयेंगा ?"

"हा। सब टीक," वंशी ने उत्तर दिया और दूसरी बीड़ी निकालकर खुद पीने लगी और एक माणिक को दी। थोड़ी देर वाद मछलीमार कोलियों के साथ वह बरसोवा की ओर चल दी। माणिक ट्रक तक उसे पहुँचाने आया।

माणिक का कुछ-कुछ काम चलने लगा था। पहले वह पास की एक दुकान के तख्ते पर रात बिताता। होटल में खाना खा लेता। फिर एक-दो आदमियों के साथ मिलकर उसने एक कमरा ले लिया।

उन दिनों एक रात बाउला के यहाँ नाचने-गाने का आयोजन था। सभी लोगों को उसने न्यौता भेजकर बुलाया। बिट्ठल और वंशी को भी

बुलाया। स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए। झाँगरी, संबेल, हारमोनियम पर राग अलापे जाने लगे। मशालें जलीं। पाला, पटनी, कोलवा, चिउड़ा, भजिया, कई तरह के खाद्य और पेय में कंत्री (शराब) दी गई। बाउला, उसकी स्त्री और कई लोग सत्कार कर रहे थे। झुण्ड-के-झुण्ड नंगे-धड़ंगे बच्चे आँगन में लेट लगाते खेल रहे थे। बीड़ियों के बंडल, पान, सीपी की थालियों में सजे थे। ताड़ी के दौर के साथ एक पार्टी नाचने को तैयार हुई। एक तरफ से आदमी और दूसरी तरफ से औरतों ने नाचना शुरू किया। स्त्रियाँ पानी में तैरती-सी नाचतीं, तो आदमी नाचते-नाचते जाल डालकर उन्हें पकड़ते। औरतें घूम-घूमकर जाल में फँसतीं तो आदमी खुशी मनाकर मस्त हो जाते। कभी-कभी स्त्री और पुरुष एक हो जाते फिर अलग हो जाते। बाजों पर गाने वाले मछुओं का गीत गा रहे थे। स्त्रियाँ स्वर और ताल पर गाती हुई प्रश्न करतीं तो आदमी उत्तर देते। गीतों द्वारा आदमी प्रश्न करते तो स्त्रियाँ गीतों में उत्तर देतीं। लोग नशे में झूम रहे थे। रात बढ़ रही थी। समुद्र का गर्जन मानो उस गाने में सहयोग दे रहा था। लोगों ने मस्त होकर आवाज लगाई, "बाउला और सोना।"

दूसरी तरफ से आवाज आई, "वंशी और बिट्ठल।"

लोग उठे और चारों को पकड़कर नाचने के लिए खड़ा कर दिया। फिर एक सामूहिक गान हुआ—

'ए रे भोला सबै ना बाला बाला रे।
जाशी तू काशी का खण्डाला, खण्डाला॥
माई पिन्याची कावर खण्डाला खण्डाला।
ए रे भोला सबै ना बाला बाला रे॥

वंशी का नाच वरसोवा में प्रसिद्ध था। वह किसी समय बहुत अच्छा नाचती थी। बिट्ठल कोरा था। इसलिए जागला से लोगों ने कहा। जागला तैयार हो गया। वंशी, सोमा, बाउला और जागला तथा अन्य लोग मस्त होकर नाचे। ताड़ी के प्याले चल रहे थे। इसके साथ ही कुछ और आदमी और औरतें मैदान में आ गई। 'वाह बाउला, वाह वंशी' कह-कर लोग तारीफ करने लगे। इसी होड़ में एक-से-एक बढ़कर सबने अपनी

नृत्य-कला का प्रदर्शन किया। रात बीतने पर जब वंशी लौटी तो देखा रत्ना मूर्छित पड़ी है। वंशी का जी धक्-से रह गया। वंशी रो रही थी। बिट्ठल स्तब्ध और मूक। किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। डाक्टर आया तो उसने केवल इतना कहा, "इसको विष दिया गया है।"

विष का नाम सुनकर लोग चिल्ला पड़े। सोमा और बाउला भी आ गए। औरों की अपेक्षा उन दोनों के मुँह से सहानुभूति के शब्द अधिक निकल रहे थे। 'ना जाने क्या हो गया छोकरी कू? कोई झेरी मच्छी तो रात कू नईं खाया? साँप तो नई डसा? इदर साला सांप बी भोत निकलने लगाय बरसोवा में।' और भी लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। इसी समय रत्ना को दो-तीन उल्टियाँ हुई। सोमा ने सबकी निगाह बचाकर बाउला से उठने को कहा तो यशवन्त ने ताड़ लिया। उनके जाने पर यशवन्त चिल्ला पड़ा, "बर्लीकर, बर्लीकर। हम साला बर्लीकर का खून पी लेयेंगा।" वह पागल की तरह चिल्लाता हुआ बरामदे में आ गया। सचमुच बर्लीकर को रात के नाच शुरू होने के बाद से किसी ने नहीं देखा था। लोगों के मन में बिजली की लहर दौड़ गई, जैसे बहुत मोटी-सी बात बहुत देर बाद समझ में आई हो। बिट्ठल चिल्ला उठा, "बर्लीकर ने हमारा छोकरी कू माराय। झेर दियाय।"

उसके साथ जागला भी चिल्लाने लगा। वंशी रोने लगी। फिर चारों ओर से रत्ना के कमरे में भीड़ इकट्ठी हो गई। पर इस समय वह पहले की अपेक्षा स्वस्थ थी। अंधेरी से एक और डाक्टर ने आकर देखा तो बोला—"इसको जहर दिया गया है। खैरियत यह है कि घातक नहीं है। ठीक हो जायगा।"

रत्ना को फिर कई कै और दस्त हुए। वह अब पहले की अपेक्षा ठीक हो रही थी। वंशी उसके पास बैठी रही। यशवन्त ने बर्लीकर के साथ जोड़कर हत्या करने का जो दावा पेश किया उससे बाउला और सोमा दोनों काँप उठे। उनके भीतर की कमजोरी भय के साथ अलग-अलग रूपों में फूटने लगी। बिना कहे बर्लीकर की तरफ से जवाब देने लगे। अपने को निर्दोष साबित करने के लिए पल, मिनट, घड़ी, घण्टे तक का हिसाब उन्होंने लोगों के सामने रखा।

"बर्लीकर साँझ से अपना गाँव जाने कू तैयार था। उसकू क्या मालूम ? ये काम बड़ी सफाई से कियाय। यशवन्त का ए काम होने का, क्योंके वंशी यशवन्त से रत्ना का शादी नईं करना मांगताय।"

दूसरा बोला—

"हा हा। बर्लीकर गाँव जाने का भाने रत्ना का इदर आया और बदला लेने का वास्ते उसीने झेर दिया। हम दावा से बोलेंगा।"

"पन झेर किदर से मिला उसकू ?" तीसरा बोल पड़ा।

चौथे ने जवाब दिया, "बर्लीकर भोत दिन से सांप मारके उसका झेर इकट्ठा किया होयेंगा।" एक ने कहा, "भाई हमकू लगताय ए काम यशवन्त काय।" बाउला को सहारा मिला। उसने और जोर से अपनी बात का समर्थन किया।

क्षुब्ध वातावरण में कई तरह के प्रवाद फूटते रहे। इससे पहले गाँव में रत्ना की इतनी चर्चा कभी नहीं हुई थी। वंशी के घर लोगों का आना-जाना जारी था। उसके घर के बाहर गिरोह में आदमी और औरतें खड़े हुए बातें कर रहे थे। इसी समय पुलिस के आने की बात सुनी गई तो वातावरण और भी गरम हो उठा। पुलिस वाले रत्ना को पुलिस अस्पताल ले जाना चाहते थे। वंशी, बिट्ठल और दो-चार लोगों ने मिलकर मामले को दबाने की कोशिश की। फिर रत्ना ने भी आँखें खोल दी थीं। ऐसी हालत में केस सीरियस नहीं रहा था। पुलिस के लोग अपनी दक्षिणा लेकर चले गए। रत्ना अब ठीक थी। पर कमजोरी से उसकी आँखें धँस गई थीं। डाक्टर ने आकर एक बार फिर दवा दी और चला गया।

दूसरे दिन पूरी तरह ठीक होने पर रत्ना ने जो कहानी सुनाई उसका भाव इस प्रकार है—

"मैं नाच से जल्दी लौटी और बिजली बुझाकर सो रही थी। कुछ-कुछ नींद के झोंके आ भी चले थे कि इसी समय कुछ आहट-सी हुई। करवट बदलकर इधर-उधर देखा, पर कहीं भी कुछ साफ नहीं था। थोड़ी देर बाद फिर एक खटका हुआ। मैं बिल्ली समझकर फिर सो गई। अचानक किसी के छूने से मेरी आँख खुल गई। उस अन्धेरे में एक काली छाया-भर मुझे दिखाई दी। मैं डरी और काँपने लगी। बात मेरे मुँह से

नहीं निकल रही थी कि उसी समय वह छाया मेरे ऊपर चढ़ बैठी। मैं चिल्लाने को हुई और हिम्मत बाँधकर उसको पीछे धकेलना चाहा। जब कुछ न कर सकी तो काटना और नोंचना शुरू कर दिया। उसने मेरा गला दबाया और मेरा मुँह खुलते ही कोई चीज़ डाल दी। बहुत कुछ तो थूक दिया। कई बार थूका। पर न जाने क्या होने लगा मुझे कुछ भी नहीं मालूम।" माँ के पूछने पर उसने बताया—"ठीक नहीं बोल सकेंगा, पन कदाच् ओ बर्लीकर होयेंगा।"

"यशवन्त ?"

"नई।"

वंशी बड़ी देर तक सोचती रही—

"तुजकू और कुच मालूम होताय ?"

"आखा शरीर मा दरद होताय वाय।"

"और कुच ?"

"और कुच नई।"

वंशी चुप हो गई। उसे रात-भर नींद नहीं आई थी। उसे निश्चय हो गया कि बर्लीकर ने ही उसे जहर दिया। बर्लीकर का नाम आते ही उसका लम्बा-चौड़ा डील, खूँखार प्रकृति सामने आ जाती और वंशी का क्रोध भड़क-भड़क उठता। लड़की के प्रति स्नेह के कारण गुस्से में उसके सिर की नसें तड़कने लगीं। रत्ना के शरीर पर हाथ फेरती वह साँपिन की तरह फुफकार उठती। वह सोचती अगर बर्लीकर मिल जाय तो उसे कच्चा ही चबा जाऊँ। पर जैसे वह बेबस थी। कोई चारा न था। उसने जागला को धिक्कारा। विट्ठल को कड़ी-कड़ी बात सुनाई।

"नपुंसक है ये लोग नपुंसक। खाताय और बिगाड़ताय। जाओ ना। देखो ना। ओ साला तुमारा छोकरी कू झेर दिया। तुम मरा नई। हमकू नाच में तड़ाकर बर्लीकर कू झेर देने कू भेजा। पन ओ वंशी का छोकरी था। ओने कांपा (काटा), लड़ाई किया। भादुरी किया। इतना हिम्मत ओ साला का के घर में आयेंगा और छोकरी कू झेर देंगा। तुम नई बोलेंगा, तो हम बोलेंगा। उसका इलाज करेंगा। उसको कच्चा खा जायेंगा। साला बदमास। ओ अबी बरसोवा में रैने का नई।" बहुत देर तक वंशी

चिल्ला-चिल्लाकर बोलती रही। उसकी आँखों में आँसू भर आए। जागला बोला—

"वंशी, घबराने का नई। हम देखेंगा। साला का दादागिरी खलास कर देंगा।" बिट्ठल क्रोध में भरकर बीच बाजार में बर्लीकर को गाली बकने लगा। सबसे अधिक गुस्सा वंशी को अपने ऊपर आया। यह उसका अपमान था कि उसकी लड़की को और उसे नीचा देखना पड़ा। नहीं नहीं, वह किसी तरह भी बर्लीकर को क्षमा नहीं कर सकेगी।

सवेरा होते ही वंशी ने यशवन्त को बुलाया और एकान्त में ले जाकर पचास रुपये देते हुए बोली—

"यशवन्त, ए बर्लीकर कू मारने का हे। और कोई कू माहिती न पड़े। और पइसा लगेंगा तो और देयेंगा। जा काम फत्ते करके ला। गप-चुप। किसी कू माहेती नहीं पड़े। हा, जा।"

यशवन्त जो पहले ही भरा बैठा था बूंक पड़ा। वंशी ने उसे चुप कराते हुए कहा—

"चिल्लाने, राग करने से काम बिगड़ेंगा। जो करना हो गपचुप कर।"

यशवन्त रुपये लेकर चला गया। जाते हुए उसने वंशी के पैर छूकर प्रतिज्ञा की कि अब वह बर्लीकर को सजा देकर ही लौटेगा। वंशी और यशवन्त की बातचीत सुनने के लिए बिट्ठल उधर आया तो वंशी ने डाँट दिया। बिट्ठल ने समझा शायद वंशी यशवन्त से रत्ना के ब्याह की बात कर रही है। सवेरा होते ही वाउला और सोमा आए। और भी बहुत लोग रत्ना को देखने आए। वाउला इधर-उधर की बातें करते हुए बोला, "बर्लीकर गाँव से नई आयाय। आज सकाली आने कू बोला था। कदाच आज संध्याकाली आयेंगा। तबी तलक उसका सबी काम मेरे कू करने काय। हम पूछेंगा क्या ओ फेर दियाय। ओ बोलेंगा तो हम साला कू निकाल देयेंगा। इतना नक्की हे। हमकू पन भोत खराब लगा। पन हम बोलताय ए काम बर्लीकर का नई हे। क्या करेंगा बाबा। भोत काम का आदमी हे। जितना मांगता काम लो। कबी मुँह नई मोड़ेंगा।" वंशी चुपचाप सुनती रही। एक-दो बार उसके जी में आया कि बाउला

को खरी-खोटी सुनावे। पर काम बिगड़ जाने के डर से खून का घूँट पीकर रह गई। वंशी इस समय बहुत खूँखार हो रही थी। लोगों को उमसे डर लगने लगा था। वंशी के इधर-उधर होने पर सोमा ने रत्ना की पीठ थपथपाते हुए पूछा—

"कुच पता लगाय भेर का ? तेरे कू तो मालूम होयेंगा रत्ना।"

"हम कुच नई जानताय।"

"डाक्टर क्या बोलाय ?"

"डाक्टर !" इतना कहकर रत्ना चुप हो गई। वंशी को आया जान सोमा हट गई।

"क्या बात बोलताय सोमा ?" वंशी ने सन्देह के स्वर में कड़ककर पूछा।

"कुच नई वंशी, अइसेई हाल-चाल पूचता था। सच बोलताय वंशी, हमारा जात में रत्ना लाखासे एक हे। खण्डोबा इसकू औक्ष दे।"

बाउला बीड़ी पीता बिट्ठल से बातें करता रहा। बिट्ठल खुश था कि रत्ना बच गई। उसे और कोई चिन्ता नहीं थी। जागला ने बाउला को देखा तो गुस्से में उठाकर उसे जमीन पर पटक दिया और उसकी छाती पर चढ़ बैठा। घूसों और मुक्कों की मार से बाउला को अधमरा कर दिया। बिट्ठल जब तक उसे बचाने आए कि जागला ने कसकर बाउला की कनपटी में एक घूँसा और जड़ दिया। बाउला चिल्लाया तब कहीं जाकर जागला ने उसे छोड़ा। यह सब अचानक एकदम हो गया। थोड़ी देर बाद कपड़े झाड़कर बाउला उठा तो 'बाउला को मार डाला' का कोहराम मच गया। जागला एक कोने में खड़ा हाँफ रहा था। गुस्से के मारे उसकी आँखों से खून बरस रहा था। शोर सुनकर वंशी बाहर आई तो देखा बाउला के कान और मुँह से खून बह रहा है, बिट्ठल उसे पोंछ रहा है। सोमा ने देखा तो जागला, बिट्ठल और वंशी को गालियाँ देने लगी। कुछ लोग बाउला की तरफ से भी लड़ने आ गए। बड़ी मुश्किल से समझा-बुझाकर शान्त किया गया तो जागला हँसकर बोला, "हम देखने कू मांगता था कि बाउला कितना बलवान हे।"

लोगों ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया और सबने जागला की

निन्दा की। किन्तु वंशी भीतर-ही-भीतर खुश थी। बोली, "जागला तू सच्चा हे। टीक किया, मुजकू और कुच नईं माँगताय।"

जागला ने उत्तर दिया, "जो बिट्ठल बीच में नईं पड़ता तो हम साला कू मार डालता। बर्लीकर नईं मिलाय तो हम बाउला को पीट दिया।"

वंशी ने जागला की पीठ ठोंकी और आज बहुत दिनों बाद वंशी ने उसे शराब की बोतल पीने को दी। जागला शराब पीकर भेड़िये की तरह विचारों में घूमते हुए बाउला को आसमान में घूरने लगा। दोनों घरों की दुश्मनी फिर बढ़ गई।

बर्लीकर उस दिन से बरसोवा में दिखलाई नहीं दिया। इधर उसी दिन पार्वती ने आकर वंशी को बताया "वंशी बाय, इट्ठा कू मिरगी का झपका परताय। उसका माँ आखा दिन उसका ऊपर से माशी उड़ाता रैता हे। खाने कू बी कुच नई हे। अबी तो माँगने से बी नईं मिलताय। दोनों भोत दुखी हे। पन मेरे कू खुशी हे के शादी अब नईं होयेंगा। बर्लीकर गाँव से नईं परताय। कदाच परते।"

फिर रत्ना की तरफ मुड़कर उसने पूछा—

"आखा गाँव में भेर का बात पसर गया। किसने दिया, कुच मालूम पड़ा? मेरे कू तो यशवन्त का काम लगताय।"

वंशी चुप रही। वह इट्ठा और उसकी माँ की बात सोचने लगी। पार्वती जब इधर-उधर की बात करके चली गई तब बिट्ठल के हाथों वंशी ने एक टोकरा चावल, थोड़ी-सी मच्छी और दो रुपये भेज दिए। शाम होते-होते वंशी एक बार अपने-आप इट्ठा के घर पहुँची तो इट्ठा और उसकी माँ की आँखों में कृतज्ञता के आँसू टपकने लगे। थोड़े दिनों में ही वह हड्डी का ढाँचा रह गई थी। फटे गूदड़ों पर पड़ी इट्ठा फटी-फटी आँखों से वंशी की ओर देखती रही, जैसे आँखों से निकली हुई बूँदें गालों से ढलकर उसके पैरों की धूल पी जाने को दौड़ पड़ी हों। वंशी ने घर की हालत देखी तो उसका मन हूकने लगा। इट्ठा के बाल बिखरे थे। उनमें गुलभट्टे और धूल की परतें जम रही थीं। वह सूखकर तिनका हो गई थी, जैसे हल्दी और कोयले से किसी ने उसकी देह पोत दी हो। झोंपड़ी में टूटे मिट्टी के बरतन इधर-उधर बिखर रहे थे।

दो फटे चीथड़ों पर वह पड़ी थी। इट्ठा की माँ बोलना नहीं जानती थी। वह बोली नहीं, केवल दाँत फाड़कर उसने दो आँसू टपका दिए। बहुत देर बाद उसके मुँह से केवल इतना निकला—

"सात दिवस के पीछे आज छोकरी कू भात और मच्छी का पानी दियाय वंशी बेन।"

और इसके साथ उसने बहुत मैली फटी धोती लाकर वंशी के बैठने को बिछा दी। वंशी जमीन पर ही बैठ गई।

"दवा करताय गुत्ती, हमने तो आज पार्वती से सुना तो खाने कू भेजा। मन नईं माना तो हम बी देखने कू आ गयाय। भोत दुख भुगताय इट्ठा।"

इट्ठा ने कोई जवाब नहीं दिया। वंशी फिर आगे बढ़कर गाल पर पत्थर का निशान देखकर बोली—

"अरे रे, जखम और बी बढ़ गया हे। इसमें पू बेताय। धोआ बी नई। गरम पानी से धोने का हर रोज।"

भरे हुए स्वर में इट्ठा ने उत्तर दिया—

"इसकू तो कुच बी नई आता। हम बी कुच नई जानता वंशी बेन। पइले एक डाटकर कू दिखाया उसने पइसा माँगा। किदर से देता पइसा? परत आया। रात्ता ने में पत्ता बाँधने कू बोला, उससे कुच बी नईं हुआ। दरद होने से बोल बी नईं सकता। भूख और दरद वंशी मा।"

इसके बाद उसने नेत्र बन्द कर लिये।

"रात-रात भर रोता रैता हे इट्ठा," गुत्ती बोली। वंशी देखती रही। उसने बगल में दबी लाल रंग की धोती निकालकर इट्ठा को दी और गुत्ती से कहा, "साड़ी पहनाने का गुत्ती।"

धोती नई थी। इट्ठा ने आँखें खोल दीं। धोती लेकर वह उस पर हाथ फेरने लगी और एक दर्द-भरी मुस्कराहट उसके होठों पर नाच गई।

दूसरे दिन डाक्टर आया। देखकर बोला, "सेप्टिक हो गया है। गेट हर एडमिटेड इन दी हास्पिटल इमीजिएटली। केस इज वैरी सीरियस।" डाक्टर माँगले ने रत्ना को चिट लिखकर देते हुए ऐसा कहा और अपना

बैग उठाकर खड़ा हो गया। रत्ना उसकी ओर देखती रही। डाक्टर ने फिर कहा, "चिट दिखा देने से दाखला हो जायगा। शायद ठीक हो जाय।"

इतना कहकर डाक्टर नाक दबाता हुआ गली से निकलकर अपनी मोटर में जा बैठा और साथ आई रत्ना से बोला, "टैक्सी में लेकर अभी जाओ।"

बड़ी कठिनाई से म्युनिसिपल हास्पिटल के जनरल वार्ड में इट्ठा को जगह मिली। गुन्नी पहले तो मान ही नहीं रही थी। वंशी के समझाने पर साथ में गई। रत्ना भी थी। एक नर्स ने बैड देकर डाक्टर की सहायता से इंजेक्शन देते हुए रत्ना से कहा, "यदि यह इंजेक्शन सह गई तो बच जायगी।" एक बार तो लगा कि इट्ठा 'सिंक' कर रही है। 'सिंक' करती जा रही है। नर्स बराबर 'हार्ट' का 'पेल्पिटेशन' देख रही थी। धड़कन बन्द होने के साथ उसने डाक्टर को पुकारा। डाक्टर ने नाड़ी टटोलते हुए कहा, "बच नहीं सकती। खैर पाँच मिनट और इंजेक्शन की नली रहने दो।" और घड़ी देखने लगा। धीरे-धीरे इट्ठा में फिर चेतना आई तो नर्स ने डाक्टर की ओर देखा। "शी माइट सरवाइव, गो ऑन," कहकर डाक्टर और मरीजों को देखने चला गया। नर्स बराबर परिवर्तन देखती रही। रत्ना एक ओर खड़ी इट्ठा की ओर देख रही थी। गुन्नी चुपचाप अस्पताल की दीवारों और खाटों को देखकर हैरान थी। यह सब-कुछ उसके लिए नया था। वह टैक्सी में भी कभी नहीं बैठी थी। टैक्सी में बैठने, अस्पताल में दाखिल होने से लेकर सब कुछ वह बराबर आँखें फाड़े देख रही थी। जब इट्ठा को सिर ऊँचा कर हलते बिस्तर पर लिटाया गया तब सारा विस्मय, आश्चर्य, भय और आशंका जैसे उसकी आँखों में समा गई। प्रेत-छाया की तरह वह जड़ और मूक हो गई।

रत्ना के मन में इट्ठा के लिए प्रेम नहीं था, एक मानवीय सहानुभूति थी। वंशी अपना गौरव दिखाने के लिए इतना कर रही थी। वंशी ने इस काम से बाउला मौसा को नीचा दिखाया। वंशी का नाम गाँव-भर में हो गया। लोग घर, घाट, दुकानों में वंशी के इस काम की प्रशंसा

करते। वैसे इट्ठा ने जो व्यंग्य, मजाक बर्लीकर के सामने रत्ना से किये थे, गाली दी थी, बर्लीकर के यशवन्त को उठाकर पटक देने पर खुशी दिखाई थी, वह सब रत्ना को याद था। इतना सब-कुछ जानते हुए भी जो उसने इट्ठा की सहायता की उसमें रत्ना के जहर दिये जाने के बाद मन में हुई नई प्रतिक्रिया के स्वरूप, कर्त्तव्य की प्रेरणा और सहानुभूति का एक बोध था। वह अस्पताल में इट्ठा की देखभाल करती, खाने-पीने के लिए बाहर से सामान लाती। बुढ़िया गुत्ती चुपचाप यह देखती रहती। उसे लगा जैसे रत्ना देवी का रूप रखकर इट्ठा की मदद के लिए आ गई है। कालेज जाना उसने छोड़ दिया था। बंसी के मना करने पर भी अपना अधिक समय उसने इट्ठा की सेवा में बिताया। रात को बंशी रहती, बिट्ठल और जागला भी कभी-कभी आते। यशवन्त ने यह देखा तो वह रत्ना का और भी भक्त बन गया। इसी बीच माणिक भी बरसोवा से पता लेकर इट्ठा को अस्पताल में देखने आया। रत्ना इट्ठा के कपड़े बदल रही थी। कपड़े बदलने के बाद उसने बाल पोंछे, मुँह साफ किया और बिस्तर और तकिया ठीक कर के उसे लिटा दिया। इसी समय नर्स ने थर्मामीटर लगाकर इट्ठा को देखा और रत्ना से मुस्कराकर बोली—

"रत्ना, यू केन बी ए वेरी गुड नर्स।"

रत्ना केवल इतना ही कह सकी, "धन्यवाद।"

माणिक यह सब चुपचाप देखता रहा। उस समय काम करते हुए रत्ना के चेहरे पर जो निःस्पृहता की एक झलक थी, एक अनासक्त सेवा-भाव की चमक थी, उसे देखकर माणिक का मन उत्फुल्ल हो उठा। बोला—

"रत्ना तुमकू इतना करने का नई। हम एक नोकर का इन्तजाम कर देयेंगा। ओई सब काम करेंगा।"

"पन ए शरीर किस काम आयेंगा?" इतना कहकर रत्ना चुप हो गई और इट्ठा की सेवा में लगी रही।

माणिक ने अपने मन में कहा—

"चिड़िया चांगलाय, सूरत-शकल का साथ अकल बी। इससे हमारा धन्धा में भोत मदद होयेंगा। हम खूब पइसा कमायेंगा। बिट्ठल टीक

बोलता था, कोली जमात में एक बी ऐसा छोकरी नईं माणिक।"

वह खड़ा-खड़ा यही सब सोचता रहा। जब रत्ना इट्ठा का सब काम करके थैला लेकर बाहर जाने लगी तब माणिक भी साथ हो लिया और बोला—

"हम बरसोवा में तुमारा बाप वंशी का पास गया था। ओई हमकू बताया के तुम हास्पिटल में हे। मच्छीमार्कीट में हमने शॉप खोलाय। पन हमारा होटल खोलने का विचार हे।"

रत्ना ने पूछा, "मार्कीट का काम चलता नईं क्या?"

"पन हम होटल खोलेंगा।"

रत्ना ने दबे हुए स्वर से कहा—

"इतना जल्दी धन्धा बदलना नईं पाइजे।" साथ-साथ चलते हुए रत्ना को लगा जैसे वह बुरी तरह से उसे घूर रहा है। माणिक अक्षरों को पीसकर लफ्फाजी हाँक रहा था। मशीन की तरह उसे बोलते देखकर रत्ना को अच्छा नहीं लगा। वह चुपचाप चलती रही और बाजार पहुँचकर सामान खरीदने लगी तो माणिक ने पैसा देना चाहते हुए कहा, "अरे लो ए किसकाय?" कहकर पाँच रुपये का नोट उसने दूकानदार के सामने फेंक दिया। रत्ना ने दूकानदार से नोट लेकर माणिक को लौटा दिया और अपनी मुट्ठी में से गिनकर दाम चुका दिए। दो-एक और चीजें लेने के लिए वह इधर-उधर घूमने लगी। माणिक साथ-साथ चलता रहा। एक होटल आने पर उसने रत्ना से आग्रह किया—

"एक कप चाहा चलेंगा। आओ।"

रत्ना ने मना नहीं किया और होटल में चली गई। फिर भी रत्ना को यह सब अच्छा नहीं लगा। वह अन्तर्मुख होकर चाय पीती रही। उस समय भी माणिक बोल रहा था। कभी वह दुकान की बात कहता, कभी अपने मित्रों की। कभी अपने सम्बन्ध में कहते हुए वह रत्ना को घूरता। रत्ना जब चाय का प्याला खत्म कर चुकी तब भी वह बातें करता रहा और धीरे-धीरे चाय का एक घूँट लेता और प्याला रख देता। बहुत देर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब माणिक न उठा तो वह बोली—

"अबी हम जायेंगा।"

"नई-नई अइसा क्या, एक कप और," कहकर उसने ब्वाय को आवाज दी। रत्ना ने निषेध किया और चल दी और बिना मुड़े वह सीधी अस्पताल में आ गई। माणिक चिल्लाता हुआ पीछे आया, फिर न जाने क्या सोचकर मुड़ गया।

इट्ठा ठीक हो गई थी। अस्पताल में रहकर रत्ना की सेवा और वंशी की सहानुभूति ने उसे इस घर का दास बना दिया था। बरसोवा के लोग वंशी, रत्ना, विट्ठल की तारीफ करते। होटलों, मचानों, दुकानों और घरों में उन दिनों यही चर्चा चलती। कोई कहता, "वंशी बर्लीकर, वाउला से अइसे बदला लेताय। अब बर्लीकर की जागा जागला से इट्ठा का शादी होने का।"

दूसरे ने कहा, "जागला कबी शादी नई करायेंगा। वंशी ने गरीब इट्ठा का मदद कियाय।"

उस समय जागला समुद्र के किनारे मछुओं के साथ नाव से मछलियों के टोकरे उतार रहा था। कुछ लोग नाव पर कुछ नीचे लकड़ी के तख्तों पर बैठे बीड़ी पी रहे थे।

एक ने हँसकर जागला से कहा, "जागला काय कहताय इट्ठा कइसा हे रे।"

दूसरे ने बात काटकर बीड़ी का कश खींचते हुए कहा, "गप रह, इट्ठा अबीबी बर्लीकर कू पसन्द करताय।"

"ओ साला छोड़ के भाग गया, अबी इट्ठा शादी करना मांगेंगा?"

"औरत जात का मन ई तो हे। एक बार जी से चाहने पर मग नई छोड़ताय साला!"

"जागला, हात मार ले, क्या जिन्दगी-भर कुंआरा ई रहेंगा? घर बना जागला। हम तो ऐसा सन्धि हाथ से न जाने देयेंगा," चौथा बोला।

"मजेदार हे तो तूई कर ले," एक ने खंखारकर हँसते हुए कहा।

"माहीम के मछुआ के घर नई रहा, मग कौन के साथ रहने का?"

"औरत कू आदमी मांगताय।"

"और आदमी कू बाई।"

जागला कमर में से बीड़ी निकालकर सुलगाने के लिए आगे बढ़ा तो एक बोला—

"क्या रे जागला ?"

जागला बीड़ी सुलगाकर वहीं एक तख्ते के कोने पर बैठ गया और बीड़ी पीता रहा। इसी बीच लोग बातें करते रहे। जागला बोला—

"अब किती उमर है जो लगन करने का रे ?"

"अबे, अबी क्याय, लगन करेंगा तो चार औलाद होयेंगा।"

"औलाद नई मांगताय, कृष्णा।"

एक ने मजाक में कह ही तो दिया, "बंशी रहे तो जागला कू क्या !" जागला चुप रहा। वह कुछ भी न बोला।

इसी समय दूर से वंशी की आवाज सुनाई दी। वह न जाने किस बात पर नाराज़ होती आ रही थी। वहाँ बैठे लोगों की बातों की भनक उसके कानों में पड़ी और उसने अपना नाम भी सुना। वहीं से चिल्लाकर पूछा—

"काय रे रामा, कृष्णा, डोरू वंशी का क्या बात है ? अरे जागला तू आ गया ? किती पाटी लाया। भोत उशिर (देर) किया।"

"तीन पाटी तो पन होयेंगा वंशी," जागला ने उत्तर दिया और चुपचाप बीड़ी पीता रहा।

एक दूसरे अधेड़ कोली ने जवाब दिया, "चार-पाँच पाटी से कम नई होयेंगा वंशी। ए जागला कू अबी तलक पाटी का पन ज्ञान नई है।"

तीसरे ने कहा, "जागला मच्छी मार सकेंगा पन हिसाब जानताय नई।"

एक बोला, "जागला भोत इमानदार है। अब्बी आया बिचारा।"

यह कहने के बाद उसे काफी देर तक खांसी आती रही और बार-बार कफ थूककर बीड़ी का कश खींचता रहा। फिर भर्राई आवाज में बोला—

"वंशी, चांगला किया जो इट्ठा कू जिन्दा किया। अब जागला का शादी इट्ठा से करने का वंशी।"

अनमने भाव से वंशी ने जवाब दिया—

"हा हा बरोब्बर ।"

"घर बसेंगा बिचारा का ।"

वंशी ने बैठे हुए लोगों की ओर देखा और बोली, "जागला कू कोन रोकताय, गमे तो करेंगा ।"

"बरोब्बर बरोब्बर, जागला कर ले ना ।"

जागला मुस्कराकर रह गया ।

"और नईं करेंगा तो तुम लोग कू कराने का," वंशी ने ताने के साथ कहा ।

"हम कौन हे, जिसकू करने का ओ करे, नईं पसन्द पड़े तो नईं करेंगा ।"

वातावरण में एक उदासी-सी आ गई जैसे निरपेक्षता ने उल्लास की जगह ले ली । इसके साथ ही वंशी और भी तीखी हो गई । उसे लगा ये लोग मिलकर इट्ठा के लिए जागला को तैयार कर रहे हैं । ये कौन होते हैं ? जागला उसका है । लोगों को दूसरों का घर अच्छा नहीं लगता । उसी समय उठते हुए एक नौजवान मछुए ने कह डाला—

"तेरा पास ई रहने का जागला वंशी, हमकू क्या ?"

वंशी गरजकर बोली—

"आपुन मा का पास क्यों नईं रक्खेंगा, जागला कू, ले जा ।"

लौटकर लड़के ने कहा—

"मा का बात काय बोलताय ? आजकाल अइसा बाय भोत जो बद-माशी का वास्ते दूसरा कू रखताय ।"

यह आक्षेप सीधा वंशी पर था । वह आपे से बाहर हो गई । उसने कहनी, अनकहनी सभी बातें लड़के से कह डालीं । उससे कहा—

"तेरा बेन रखता होयेंगा दो-दो चार-चार; उसी का पास जागला कू ले जा । जा ले जा ।" इसके साथ डाँटती हुई वंशी टोकरी उठाकर चल दी । जागला चुपचाप मछलियों का टोकरा उठाए उसके पीछे हो लिया । लोग वाग्युद्ध का आनन्द लेते रहे । माच के पास पहुँचकर वंशी ने जागला से पूछा—

"काय रे जागला, काय बात हे ? ये लोक इट्ठा कू क्या बोलता था ।

तेरे कू शादी करने का क्या ?"

जागला झिझका, कोई जवाब देने के बजाय वह टोकरी लेकर नसैनी से ऊपर चढ़ गया और 'भट्' से उसने टोकरी मछलियाँ माच पर डाल दीं। वंशी मछलियाँ फैलाने लगी। तब तक उसने जल्दी-जल्दी और टोकरे लाकर माच पर रख दिए। वंशी मछलियाँ फैलाती हुई बोली—

"बोलेंगा नई ?"

"वंशी अइसा कोई बात नई हे। लोक बोला हमकू इट्ठा से शादी करने का।"

"और तू काय बोलताय ?"

टोकरी हाथ में लिये टांगों को खुजलाते हुए जागला ने वंशी की ओर ताका। वंशी की आँखों के पीले डोरे लाल हो उठे थे। वह समझ गया वंशी नाराज है। उसकी कड़कती आवाज से वह और भी सहम गया और नीचे निगाह करके बोला—

"कुच कराब हे।"

वंशी चौंकी। उसने जागला के मुँह पर उठने वाले भावों को पहचानने की चेष्टा करते हुए पूछा—

"मग तू क्या मांगताय जागला ? इट्ठा से शादी करना मांगताय ? हम कू क्या, कर ले, मग खायेंगा किदर से ?"

"तेरा काम करेंगा ना।"

"हमरा घर में मच्छी खाकर दूसरा का घर में रहने का बात हम नई जानताय, अइसा नई होयेंगा।"

जागला सहम गया। वह घिघियाकर दबी आवाज में बोला—
"वंशी।"

वंशी ने कोई जवाब नहीं दिया और माच से नीचे उतर गई। उधर सोमा अपने माच से उतर रही थी। उसने वंशी और जागला की कुछ-कुछ बातें सुनीं तो बोली—

"काय बात वंशी ?"

"कुच नई सोमा। ए जागला·······" बात मुँह में आते-आते रुक गई।

"इट्ठा कू तुमने बचा लिया, अब उसका टीक बी करने का।"

"इट्ठा तो तुमारा हे, बर्लीकर का।"

"अबी क्या आयेंगा बर्लीकर।"

"क्यों ?"

"पता नई अबी तक जो नई आया। इट्ठा का मा, भरपूर तुमाराई गुन गाताय।"

"हम क्या किया सोमा, सब हनूमान बाबा का कृपाय। हम उसका दरद नई देख सका, रत्ना ने दिवस-रात उसका सेवा किया।"

"आखा बरसोवा गुन गाताय, औरत हो तो अइसा हो।"

जब वंशी चलने लगी तो उसने एक बार जागला की ओर देखा। जागला वैसे ही खड़ा सोच रहा था। उसके सिर के बाल खड़े हो गए थे, जैसे पत्थर में कोई चेतना आ रही हो। वंशी फिर पीछे मुड़ी। उस समय तक सोमा आगे निकल गई थी। वंशी ने जागला को आवाज दी—

"मच्छी पसारकर जल्दी आने का जागला।"

जागला ने कोई जवाब नही दिया। चुपचाप मछलियाँ माच पर फैलाने लगा।

चलते-चलते वंशी के मन में सन्देह के बीज फूटने लगे। उसे मालूम हुआ जैसे उसी के पाले हुए साँप ने उसे काट खाया है। इट्ठा को अच्छा करके उसने एक बला मोल ले ली। अब वह जागला पर रीझी है या जागला उस पर। एक बार उसके जी में आया कि इट्ठा से जागला का ब्याह हो जाना बुरा नहीं, अब तक उसने जागला को रोककर भलाई नहीं की है। कोई भी आदमी जो कमाता है उसे घर बसाने की चाह होती ही है। क्यों न वह खुशी-खुशी उसे इट्ठा के साथ रहने की इजाजत दे दे। इट्ठा को अच्छा करने में जहाँ उसके मन की दयालुता और यश पाने की इच्छा थी, वहाँ बर्लीकर, बाउला और सोमा को वह यह भी दिखाना चाहती थी कि वंशी महान औरत है। फिर इससे बाउला की हार भी होती है कि चाहने पर भी बाउला बर्लीकर से इट्ठा की शादी नहीं कर सका। सिर पर खाली टोकरियाँ रखे वह यही सोचती जा रही थी। उसके मन में सोमा से बदला लेने का यह भाव और पकड़

रहा था। इसके साथ ही जागला के उसके घर में आने से लेकर अब तक का सारा चित्र खिंच गया। उसमें सुख-दुःख आनन्द-उल्लास के कई सपने भीगे हुए थे। फिर उसके जी में आया कि उसके चाहने पर ही जागला इट्ठा से शादी कर सकता है, यह कितना बड़ा अधिकार है उसका! वह गर्व से फूल उठी।

जागला उन आदमियों में है जो शरीर की क्रिया के अलावा और कुछ नहीं होते। मशीन की तरह दिन-भर काम करते हैं और काम करने की ताकत बनाए रखने के लिए खाते हैं। कोई खास न इच्छा होती है उनमें न कामना। वैसे यदि और भी कोई सुख-सुविधा मिल जाय तो हल्की उन्मुक्तता से उसे भी अपनाकर चलते हैं। बार-बार वैसा सुख मिलने पर उनके अविकसित मन में वे भावनाएँ भी बद्धमूल हो जाती हैं। इट्ठा को देखकर घर बसाने की इच्छा भी जागला में वैसे ही थी। फिर कभी-कभी उस सुख की भावना उसमें इतनी प्रबल हो उठती है कि जागला के मन में एक प्रकार का अधिकार जाग उठता। यह अधिकार उस समय जागला में जाग रहा था। वह भिखारी बनकर रोटी को पाने की अपेक्षा, अधिकारी बनकर रोटी पाना चाहता था। जागला मछली फैलाने के बाद माच के नीचे आ बैठा—चुपचाप। सोचने की टूटी-फूटी प्रक्रिया उसके मन में उभर रही थी। वह सोच रहा था वंशी नाराज हो गई तो क्या मैंने उसका काम नहीं किया? मैं इट्ठा को रख लूँगा, जरूर रख लूँगा। उसके उन्मादी मन में एक प्रकार के विद्रोही साहस का संचार हुआ। उसने कई सूत्रों से अपने मन को मजबूत किया। पर आंखों में वंशी का रूप सामने आते ही वह जैसे सहम उठता। इसीसे उसे लगा, जो मैं सोच रहा हूँ क्या वह मेरी हिम्मत उसके सामने रह सकेगी। एकदम उसे ध्यान आया क्यों न वह एक बार इट्ठा से मिले और उसके मन की बात जान ले।

जागला उठा और चुपचाप इट्ठा की झोंपड़ी की ओर चल पड़ा। पर अभी दिन था। सूर्य अस्त होने में देर थी। लोग आ-जा रहे थे। इसलिए उसने रात में उससे मिलने की बात सोची। वह दूर समुद्र के किनारे जा बैठा और अपने मन को मजबूत बनाता रहा। वह इट्ठा से

कैसे मिलेगा, क्या कहेगा, कैसे बात शुरू करेगा ? क्या इट्ठा उसकी बात मान लेगी ? यदि उसने न माना तो ? इस 'यदि' ने उसका सारा उत्साह ठण्डा कर दिया। वह डर गया। उसने समुद्र के पानी में हाथ डालकर झाग दूर किए। फिर कोनी-कोनी तक हाथ धोये, मुँह धोया, कुल्ला किया और मुँह पोंछकर किनारे आ बैठा। समुद्र की लहरों में वेग बढ़ रहा था। वह बैठा-बैठा ढेला फेंकता और समुद्र की लहरें गिनता रहा।

इसी समय पीछे से एक आवाज आई—

"जागला, जागला रे।"

जागला ने मुड़कर देखा, वह इट्ठा की माँ गुत्ती थी।

"काय गुत्ती, किदर ?"

गुत्ती जागला के पास आकर वहीं जमीन पर बैठ गई। बुढ़िया गुत्ती जब पोपले मुँह से बोलती तो आधे अक्षर खा जाती। उसकी पूरी बात समझना मुश्किल था। जागला उसके पास और खिसक आया। बुढ़िया बुड़बुड़ा रही थी, जिसका आशय था, "बंशी का दिया अनाज खतम हो गया। काम कोई नहीं है। पहले बंशी ने कहा था कि वह इट्ठा को घर के काम के लिए रख लेगी, पर अब उसने साफ मना कर दिया। न जाने उसे किसने नाराज कर दिया। इट्ठा ने तो कुछ कहा नहीं। अब क्या खायें, कैसे गुजारा हो। कल हम माहीम जा रहे हैं।"

"माहीम, माहीम में काय है ?"

बुढ़िया ने उत्तर दिया, "ओ पूला न।"

"कौन पूला ?"

"ओई जिसका पास इट्ठा रैता ता। ओ मारता ता, दारू पीकर। मग मारना से क्या ओताय ? वात तो देयेंगा न ?" पेट दिखाकर उसने कहा, "ए तो बरेंगा न।"

"जर उसने नई रक्खा तो ?"

"रक्खेगा काय नई ? उसकू औरत पाहिजे। इट्ठा उसकू त्यागाय।"

"अइसा कोई नई मिलेंगा जो नई मारेंगा। दारू तो अभ बी पीताय।"

"मग तू जागला भोत चांगलाय (सुन्दर है)।"

"इट्ठा किदर गया ?"

"वंशी का घर चावला का वास्ते गयाय। क्या करेंगा, ए पेट बी तो कइसा बरेंगा जागला ? हम बोलता इट्ठा किदर बी जायेंगा दो मुट्ठी बात तो मिलेंगा। बाउला इट्ठा कू पसन्द करताय मग सोमा घसपस किया।"

जागला गुत्ती के पास और सरककर बैठ गया। उसने कमर से निकालकर एक बीड़ी गुत्ती को दी और खुद भी सुलगाने लगा। कश खींचते हुए वह बोला—

"तब्बी उसने बर्लीकर कू निकाला, साला वर्लीकर।" फिर उसने धीरे से कहा—

"उसी ने रत्ना कू फेर दिया गुत्ती।"

"हेंएंएं !" मुँह फाड़कर गुत्ती रह गई। फिर बोली, "फेर, बोत कराब वर्लीकर। बच गया चोकरी।"

अँधेरा हो चला था। दोनों की काली देह उसमें मिल रही थी। प्रेत-छाया की तरह बहुत देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे।

"जाऊया" कहकर गुत्ती चल दी और दस कदम के बाद अँधेरे में खो गई।

जागला जब इट्ठा की झोंपड़ी में पहुँचा तो देखा किवाड़ भिड़े थे। ठेलकर आगे बढ़ा तो अँधेरा। कहीं भी कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। वह आँगन में देर तक खड़ा रहा। मन में आया आवाज लगाए, पर जीवन का कोई निशान तो हो। झिझकता खड़ा ही रहा। जब लौटने को हुआ तो एक आकृति घर में घुसती दिखाई दी।

"कौन, कौन हे ?" काँपती-सी आवाज आई।

"मी इट्ठा।"

"तू कौन ?"

"जागला।"

"जागला ! अम बी बोला कौन घर में आया। क्या, कइसाय जागला ?"

"कुच नई अइसा ई आया।"

"बइठ जा। कोठरी में तो अन्धारा हे। पइले चार दिवस किरासन नई मिला, तो नई मिला, किदर से लाने का ? कोई काम तो मिलताई नई। आखा बरसोवा में काम का वास्ते मारा-मारा फिराय। पइले वंशी बोला कि तुमकू हमारे इदर आने का, हमारे इदर काम करने का। रत्ना पन बोला। मग वंशी जवाब दे दिया। दो मुट्ठी चावल माँगने गया तो भोत मुश्किल से रत्ना का बोलने पर दियाय। केवल दो मुट्ठी। नमक बी नई दियाय। मच्छी आँगन में ढेर-ढेर ता, सो बी नई दियाय। जब्बी ओ चाँवल लेनें कू अन्दर गया तो हमने चार-छः मच्छी मुट्ठी में भर कमर में बाँधा। एक साला ओई जागा खिसक गया। पन क्या करता ? तू बोलना नई। पेट का वास्ते करताय जागला। पेट का वास्ते। माँ तीन दिवस से भूकाय। हम काल से नई खाया। तो हम बोला लाओ वंशी से माँगने का, पन ओ बी कितना देयेंगा ? भोत चाँगलाय वंशी, पन·······" लम्बी आह भरकर, "अब जाना होयेंगा जागला, सकाली ·······सकाली·······मग·······" (आह भरती है) "सकाली चला जायेंगा।"

"किदर जायेंगा ?"

"जहाँ सींग समायेंगा, दो बार बात मिलेंगा, जागला।"

"मग।"

"मा बोलताय माहीमवाला कू कर। उदर ई जायेंगा, अउर क्या। मारेंगा तो दो मुट्ठी बात तो देयेंगा। पेट तो बूका नई रेंगा।"

"बरसोवा पसन्द नई काय ?"

"पसन्द काय नई, पन काम बी तो होय जागला। वर्लीकर, इसकी सर्वनास होंय, दोका दियाय। अउर अब तो हम बरसोवा में रह बी नई सकेंगा।"

"क्यों ?"

"ले बइठ जा। हम बी बइठता हें। पन ठेर, ए बात हाड़ी में रख आयेंगा। अवी आग जलाने का, बात बनाने का। मा वी मांगने कू गयाय। मिल गया तो पेट बर जायेंगा।"

"किदर गयाय ?"

"जाना किदर ! पास गाँव में एक बाबू हे उनका घर मैं पहले काम करता था। ओई जागा गया होयेंगा। कदाच कुच मिले।"

"तो तू किदर जायेंगा इट्‌ठा ?"

"हम वरसोवा त्याग जाताय, जागला।"

"पन किदर ?" जोर देकर जागला ने पूछा।

"तो सुन, पन ठहर हम चावल रख आऊँ।" इट्‌ठा उस अँधेरी झोपड़ी में घुस गई।

जागला बैठा सोचता रहा। उसे लग रहा था कि उसने इस तरह इट्‌ठा के घर आकर ठीक नहीं किया। कोई देखेगा तो क्या कहेगा। वंशी सुनेगी तो क्या जानगी ! न जाने क्या कहे ! पर यह जा रही है। कहीं वंशी ने ही तो....। वह इस तरह सोच ही रहा था कि इट्‌ठा आ गई। साथ ही मिट्टी के तेल की एक कुप्पी भी लाकर बोली—

"ठेर जागला, जलायेंगा। तुमारा होले तक तो जलेंगा। मग आग जलायेंगा।"

जागला अँधेरे में बैठा रहा। एक बार जी में आया चुपचाप चल दे। उसे वंशी का डर था। वंशी से वह डरता भी था। उसे मालूम था वंशी और सब सह सकती है, यह नहीं सह सकती कि जागला किसी औरत के पास जाय। फिर उसके विचारों में परिवर्तन हुआ। वह सोचने लगा— "तो मैं क्या वंशी का नौकर हूँ ? बिट्‌ठल दबे, बहुत होगा निकाल देगी। मजदूर आदमी हूँ और जगह कमा-खा लूँगा। और जगह....जैसे यह बात मन में उठते ही उसे एक प्रकार का डर, एक धक्का-सा, लगा। तो क्या वंशी ने उसे कभी नौकर समझा है ? उसे क्या नहीं दिया ? उसे क्या नहीं मिला ? सभी-कुछ तो उसने वंशी से लिया है। खाना, कपड़ा और सभी कुछ। फिर इस इट्‌टा में क्या है ?" एक बार जी में आया उठकर चल दे। पर उठा नहीं गया। बैठा ही रहा। अँधेरा पहले से और भी गाढ़ा हो रहा था। जागला के मन में हर्ष और भय का द्वन्द्व उठ रहा था। उसे लग रहा था जैसे इट्‌ठा ही उसे खींच रही है। वह खिंचा चला आया है। तीस साल की उम्र में गरीब होते हुए भी इट्‌ठा में काफी सौन्दर्य है। जैसे वह चालीस साल के जागला के लायक ही है। उसका

मन रह-रहकर इट्ठा की खूबसूरती की ओर खिंचने लगा।

इट्ठा खूबसूरत थी—कोली लोगों में स्त्रियाँ जैसी होती हैं, साँवली-काली, बड़ी आँखें, मोटे होंठ, मुता शरीर, गठीला बदन। जैसे पुरुष वैसी स्त्रियाँ, उसीके अनुसार जागला इट्ठा के सौन्दर्य को भाँप रहा था। उसने माना इट्ठा वंशी से भी अच्छी है। उसकी मुखाकृति में, शरीर में, वंशी की अपेक्षा यौवन की चमक ज्यादा है। उसकी गठन ज्यादा अच्छी लगती है। उसके सम्पूर्ण चेतन में इट्ठा की प्रतिकृति जाग उठी। उसे लगा, इस सोचने से अच्छा और उसे कभी कुछ नहीं लगा। कैसा अच्छा हो कि वह इस अन्धेरे में इट्ठा की बात सोचता रहे और इट्ठा को अपने अंग में भर ले। वह सोचता रहा, सोचता ही रहा।

इट्ठा मिट्टी के तेल की कुप्पी जलाए लौटी तो वह काला धुआँ दे रही थी। फिर भी उसने उसमें इट्ठा का रूप देखा। बीमारी के बाद से वैसे उसने इट्ठा को कई बार देखा था। पर इतनी सुन्दर वह कभी नहीं लगी थी। कुप्पी का प्रकाश सीधे हाथ की तरफ होता हुआ भी उसकी छाती पर पड़ रहा था जहाँ धोती को उठाए उसके नुकीले स्तन उभर रहे थे। गले के नीचे का भाग खुला था। उसमें मिले-जुले बनावटी मोतियों की माला पड़ी थी। गोल मुख, भरे हुए गाल, बड़ी-बड़ी आँखें! जागला इस समय उसके रूप को देखकर रीझ उठा। इट्ठा के पहुँचते ही वह उसके पास आ गया।

"बइठ जागला, बइठ। थोड़ा उशिर तो कुप्पी जलेंगा ई।" इट्ठा ने कुप्पी आँगन के आले में रख दी।

जागला सरककर पास आ बैठा। इट्ठा ने कभी जागला की ओर देखा भी न था। वैसे ही मामूली तौर पर वह उसकी नजरों में आया और उतर गया। जैसे कोई नई बात नहीं हो। फिर इस बीमारी में रत्ना के साथ जागला भी उसे देखने दो-एक बार अस्पताल गया था। वहाँ भी जागला में उसने सहानुभूति का भाव पाया। मनुष्यता के नाम पर उठने वाली सहानुभूति में स्वार्थ नहीं आ पाता और उस समय तो वह और भी स्फटिक के समान निर्मल होता है जब केवल मनुष्य हृदय की निःस्वार्थ प्रेरणा के तन्तुओं से जागृत होकर दया दिखाता है और उससे किसी

प्रकार के प्रतिदान की आशा नहीं करता।

जागला में उस समय केवल वही भाव था। बीमारी में दुर्बल कान्तिहीन उसके चेहरे पर और कोई रूप की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर उसके बाद आज जो उसके चेहरे पर एक प्रकार स्वस्थता की चमक है उसी में जागला किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया है। इट्ठा को इन पिछले दिनों रोटी की चिन्ता ने नया आश्रय खोजने के लिए विवश कर दिया है। इसलिए यौवन की भूख से पहले पेट की भूख ने हर अपनी जान-पहचान के उपयुक्त मनुष्य को नई दृष्टि से देखने-परखने के लिए जैसे उसके मन में एक चेतना जगा दी है। इट्ठा को विश्वास था अब वंशी के यहाँ शायद उसका गुजारा हो सकेगा। पर इसी सायंकाल जब वह मजबूर होकर वंशी से अपने सम्बन्ध में बातचीत करने गई तो वह तो जैसे स्तब्ध रह गई। वंशी ने उसे रुखाई से ही नहीं फटकारकर बाहर निकाल दिया और कह दिया, "भलाई इसी में है कि तू बरसोवा छोड़कर चली जा।"

इट्ठा जागला के मुँह की ओर ताकती रही। फिर एक बार जागला ने इट्ठा को देखा। दोनों की आँखें चार हुईं जैसे दोनों एक-दूसरे के भावों को पढ़ रहे हों।

"और किसी का पास नई रै सकेंगा इट्ठा।"

"कौन का पास।"

"मानले कोई हे।"

"जानेंगा तो बोलेंगा जागला। चांगला तो होने का बरोब्बर। माहिम वाला देखेला सुनेला हे। कराब नई हें। मग दो न एक कराब बात नई हो तो ओ हीरा हे हीरा।"

जागला के मन में भीतर-ही-भीतर कुछ घुट रहा था। मुँह फाड़कर कहना उसके लिए असम्भव हो गया। जैसे मुँह पर ताला लग गया।

इट्ठा ने ही मौन दूर किया और बोली—

"शादी कर ले जागला। कब तलक शादी के विगेर रैंगा?"

"विचार करताय।"

"बरसोवा में वहुत-सा औरत हे। कम्मा, सूंसी, बात करें तू बोले तो।"

"नई, नई, इट्ठा ।"

जागला ने दीपक के मन्द प्रकाश में इट्ठा की ओर एक बार फिर देखा । उसकी आँखें बोल रही थीं । इट्ठा को लगा जागला बुरा नहीं है । कपड़े उसके मैले हैं, फटे हैं तो क्या हुआ ? आदमी तो है, कमाता तो है । कहना चाहिए इट्ठा का मन कुछ-कुछ खिंचने लगा ।

"अच्छा चलेंगा इट्ठा, वंशी बुला गई थी ।"

इतना कहकर जागला उठने लगा । बोला, "इट्ठा तू रै नई सकेंगा ? रै जा न बोल ।"

"वंशी जो रैना नई मांगताय ।"

"मुजकू वंशी का परवा नई साला ।"

"मुजकू तो हे । उसने हमारा सेवा कियाय, बला कियाय ।"

"सो तो हे ।"

"तू चाहे तो···"

इट्ठा भीतर ही फुसफुसाई ।

"तेरा पास ?"

"हा"

"ना बाबा, वंशी मुजकू मार डालेंगा ।"

"हम बरसोवा छोड़ देयेंगा ।"

"तब्बी जागला तब्बी ।"

मार्ग में जागला को वंशी मिली । वंशी जागला को बहुत देर से खोज रही थी । मांच से उसे बुला लाने के बाद वंशी ने समझा था कि जागला के आने पर उसे डाँटेगी, निकालने की धमकी देगी, पर खाना और दिन से अच्छा देगी । उसने चूल्हे पर कुछ मछलियाँ चढ़ाईं; भात, पुटाटा बड़ा, चटनी, भजिया तैयार की । उसके मन में जागला के प्रति जहाँ गुस्सा था वहाँ आकर्षण भी । उसके प्रति दया भी थी । इतने दिन पास रहने के कारण उससे ममता भी थी । वंशी उसे नौकर नहीं समझती थी । लोगों की नज़र में वह नौकर था, पर एकान्त में जागला के प्रति उसका व्यवहार सदय था । बिट्ठल को इससे कोई मतलब नहीं कि वंशी का जागला के प्रति क्या रुख है । एकाध बार उसे शक

हुआ, ईर्ष्या हुई। उसने एकान्त पाकर जागला को फटकारा भी। वंशी को ताने दिए तो वंशी ने उसे डाँट दिया। पचासों गालियाँ देते हुए बिट्ठल की बुराइयाँ खोल दीं। पर वंशी उनमें नहीं है जो आदमियों की कमाई खाती हैं। वह स्वयं कमा सकती है। बल्कि कमाती ही है। बाजार मछली लेकर जाती है। सब ऊपर की देखभाल करती है। वंशी ने जब बिट्ठल को आड़े हाथों लिया तब वह बेचारा सिट्टी-पिट्टी भूल गया। उसने मन में समझ लिया और चुप हो गया। इसके बाद तो उसने इस प्रसंग को ही खतम कर दिया। देखकर भी मुँह फेर लेना। जागला का वंशी के घर में अप्रतिहत प्रवेश हो गया।

मार्ग में जागला को देखते ही वंशी समझ गई कि वह इट्ठा के घर से आ रहा है। उसके तन-बदन में तो जैसे आग लग गई।

"क्यों जागला, इट्ठा से नक्की हो गया। दोस्ती माँड रहा था रे जागला। मालूम पड़ताय ओ राड़ ने वरसोवा में किसी कू भी नईं छोड़ने की शपथ लियाय। बोल, किदर गया था ?" उसकी तेज आवाज सुनकर दो-एक चलते-फिरते लोग पास आ निकले। वंशी ने एकदम रुख बदलकर कहना शुरू किया—"शाम से मच्छी मांच पर पसराय। घर का काम हे और तू मटरगस्ती करताय। हम बोलताय काम करना हो तो नीट कर, नई तो अपना रास्ता नाँप। हमारा घर अइसा चलने का नई। गुजारा नई होयेंगा। कान खोलकर जान ले।"

पास कहीं बिट्ठल बैठा था, वह भी सुनकर आ गया। एकदम कहना शुरू किया—

"टीक तो हे। आजकाल नोकर मालिक हो गयाय साला। खाना दो, कापड़ दो, रहने कू मकान बी दो, मग काम के नाम पर मौत आयेंगा।"

"चल तू रहने दे बिट्ठल, इसका मगज खराब हे। चरबी चढ़ाय साला कू!"

जागला चुप था। उसने वंशी का बात बदलकर बोलना ताड़ लिया था। कुछ समझा भी। पर वह कुछ नहीं बोला।

"चल घर।"

"नई हम नई जायेंगा।"

"काय काम नई करने का ?"

बिट्ठल को यह बुरा लगा। उस समय वह नशा करके ही लौट रहा था। एकदम धुत्त। उसने शराबी की तरह डगमगाते हुए तानकर एक लात जागला की पीठ में जमा दी और वंशी के रोकते-रोकते एक थप्पड़ भी उसके मुँह पर रसीद कर दिया। बोला—

"साला जान निकाल लेयेंगा। चल, चलेंगा के नई ?"

इतना कहकर बिट्ठल वहीं गिर पड़ा, लड़खड़ाकर। उसके साथ ही जागला सत्याग्रही की तरह दोनों हाथों में मुँह ढककर बैठ गया।

वंशी ने बिट्ठल को उठाया और एक आदमी के साथ उसे घर भेज दिया और स्वयं जागला की ओर मुड़ी। जागला रो रहा था। वंशी का हृदय जागला के प्रति किये गए बिट्ठल के अन्याय से पिघल उठा। उसने कई तरह से जागला को ले चलने का प्रयत्न किया, पर वह टस-से-मस न हुआ। हारकर वंशी चली गई। उसका मन जागला में रमा रहा। बिट्ठल नशे में पड़ा रहा। दो घण्टे बाद वंशी जब उसी स्थान पर पहुँची तो देखा जागला वहाँ नहीं है। इट्ठा की झोंपड़ी की ओर जाने पर उसने वहाँ भी जागला का कोई चिह्न नहीं पाया। हारकर लौट आई और बिस्तर पर करवटें बदलने लगी।

वंशी सोचने लगी, उसे जहाँ जागला पर नाराजी थी वहाँ उसका मन भी भीतर-ही-भीतर उसके लिए उभर-उभर उठता था। पिछले दस-बारह साल से जागला उसके पास था। वह उसका नौकर ही नहीं, प्रेमी भी था। घर का काम-काज देखता, नाव लेकर दूर-दूर समुद्र में से मछली मारकर लाता जबकि बिट्ठल या तो घर में रहता या फिर मटरगश्ती करता, शराब पीता, बीड़ी फूँकता और जागला के लौटने पर किनारे पर जाकर मछलियाँ उतरवाकर माँच पर डलवा देता और मछुओं के पास बैठकर गप्प मारता।

वंशी के मन में भीतर-ही-भीतर एक प्रकार की उदासीनता की लहर छा गई। मन डूबने लगा। यद्यपि अब उसमें प्रेम-रस की कत्तरंग, अभिलाषा नहीं थी। प्रतिदिन उठने वाली वासना कभी-कभी में बदल गई थी

रत्ना के काफी बड़े हो जाने, काफी उमर पार कर जाने के कारण मानस-उद्वेलन शिथिल पड़ गया था। फिर भी उसके कारण जो स्नेह का तन्तु उसके हृदय में आबद्ध हो गया था वही उसे रह-रहकर कचोटता। वह रात-भर करवटें बदलती रही। पास ही पड़ा बिट्ठल नाक से कई तरह के स्वर-सन्धान कर रहा था। अर्धमृत की तरह पास सोते हुए बिट्ठल मे न तो उसका मन ऊबा था न रम ही रहा था। आज उसे जागला की बहुत याद आ रही थी। रह-रहकर उसे ध्यान आता यदि वह जागला की शादी इट्ठा से करा देती तो बेदाम का वह नौकर भाग नहीं सकता था। उसी क्षण उसके मन में इट्ठा के प्रति एक प्रकार की विरक्ति भर आई। उसे लगा उसने व्यर्थ ही इट्ठा को जिन्दा किया। मर जाने देती तो आज यह न देखना पड़ता। फिर ऐसा नौकर भी कहाँ मिलेगा? वंशी के चतुर मन ने जागला को निरन्तर अपने पास बनाए रखने के लिए नौकर के समान उसे अपनी अभिलाषा की तृप्ति का एक साधन भी बना लिया था। इस तरह वंशी के दो स्वार्थ सिद्ध होते थे। पर जागला एक-दम नासमझ, बुद्धिहीन व्यक्ति था। उसे केवल इतना ही मानने का मौका मिला था कि जब खाने को मिल जाता है और कभी-कभी मानसिक तृप्ति भी मिल जाती है तो इससे अधिक उसे और क्या चाहिए। पर आज उसके मन ने जैसे एक नया भेद पा लिया। उसे लगा कि वह आज तक वंशी के स्वार्थ-जाल में फँसा रहा। यदि वह उसकी सच्ची हितचिन्तक होती तो निश्चय ही इट्ठा से शादी कराकर खुश होती।

बिट्ठल पर उसे कोई क्रोध नहीं था। न तो ऐसी लात या मार को वह मार मानता था न उसे इसमें कोई अपमान ही लगता था।

वंशी और बिट्ठल के चले जाने के बाद वह एकान्त देखकर इट्ठा के घर की ओर गया। इट्ठा और गुत्ती दोनों ही वहाँ थे। जागला के साथ होने वाले वंशी के अन्याय की बात वह सुन चुकी थी। वही क्या, उस मुहल्ले के सभी आदमी उस समय वहाँ इकट्ठे हो गए थे। जागला में जैसे एक नई चेतना जाग गई। वह सीधा इट्ठा के पास जाकर खड़ा हो गया।

"बोल क्या बोलताय इट्ठा, हम अब वंशी के इदर काम नई करेंगा।"

"क्या बोलेंगा जागला, तू तो जानताई हे वंशी कू ए गमता नई हे।"

"मग हम लोग इदर नई रहेंगा, किदर बी चला जायेंगा।"

"कोई बरोबर काम-काज तो होने का। हम लोग खायेंगा क्या?" इट्ठा ने पूछा।

जागला कुछ देर खड़ा सोचता रहा। उसे अपनी मूर्खता पर और भी खेद हुआ। आज जागला के पास दो आने के सिवाय और कुछ नहीं है, जो वंशी ने दो दिन पहले बीड़ी के लिए दिये थे। आज को यदि वह अपनी पूरी तनखा लेकर चलता तो क्या उसके पास कुछ भी न होता? वंशी ने उसे पूरी तरह ठगा है। आज उसके पास न कपड़ा है, न बिस्तर, न पैसा, न कुछ। आज से दस-बारह साल पहले जैसा वह था आज भी वैसा ही है। जागला के भीतर के सभी चेतना-तन्तु हिल गए। उसकी आँखें खुल गई। उसे लगा आज की घटना ने जैसे उसे बहुत-कुछ दे दिया है।

"जर हम कमाने लगूँ तो इट्ठा।"

"हम और मा माहीम जायेंगा।"

"तू हमारा पास रै, हम कमायेंगा।"

"कब तलक?"

"भोत जल्दी। हम····" उँगली से गिनकर जागला ने जवाब दिया, "एक मास में परतेंयेंगा।"

"तब तलक काय खायेंगा हम लोक जागला?" गुत्ती ने पूछा।

"जैसे आज तलक खाता रहा गुत्ती। शपथ ले ले गुत्ती जो हम इट्ठा कू कब्बी मारे।"

जागला के चेहरे पर चमक थी। इट्ठा चाँदनी में खड़े जागला को देख रही थी। उसे लगा जैसे जागला बदल गया है। जिसे आज तक बोलना नहीं आता था वह एकदम ऐसा कैसा हो गया। इट्ठा के मन में जागला के लिए एक खिंचाव हुआ। वह बहुत देर तक देखती रही, देखती ही रही। जागला के अंग-अंग में जैसे नई स्फूर्ति, नई चेतना आ रही थी। वह उस पर रीझ गई। अपने सौन्दर्य पर भी उसे गर्व हुआ। तर्क-वितर्क करना वह नहीं जानती थी। सोचना भी उसके परे की बात थी। वह बोली—

"बरोब्बर जागला, बरोब्बर, हम रेयेंगा, तू जा ।"

जागला ने इट्ठा के कन्धे पर हाथ रख दिया और उसकी पीठ थप-थपाकर चला गया । सवेरा होते ही वंशी ने कड़कती आवाज में बिट्ठल को उठाया तो बिट्ठल चौंककर उठा ।

"जागला कू मारकर निकाला तो अब्बी उठ काम कर ।"

"ऐंऽऽ जागला किदर गया साला ?" विट्ठल ने आँखें मलते हुए पूछा ।

'हम क्या जानूँ ?"

"अपने आप आयेंगा वंशी । तू परवा मत कर । अपने आप आयेंगा ।"

बड़ी निश्चिन्तता के साथ बिट्ठल ने मुँह पर हाफ फेरा और कमर से निकालकर बीड़ी पीने लगा । गंजे सिर के लम्बे बिखरे इक्के-दुक्के बाल समुद्री हवा में हिल रहे थे । रात की खुमारी आँखों की पांडुर ज्योति में झलक रही थी । माथे के गड्ढे में रेखाएँ अधिक व्यक्त हो उठी थीं । जागला के जाने की चिन्ता ने बिट्ठल को आ घेरा । उसे लगा जागला का जाना बुरा हुआ ।

"अब उठ बी बिट्ठल," वंशी ने फिर झिड़की के स्वर में कहा ।

"हा, वंशी ।" बिट्ठल उठा और झूले पर जा बैठा । उसने एक के बाद दूसरी बीड़ी सुलगाई और बड़बड़ाता हुआ जागला को गाली देने लगा । वंशी कमरे में झाड़ू लगा रही थी । जब वह झाड़ू लगाती हुई उधर आई तो देखा बिट्ठल वैसा ही बैठा है । बिट्ठल को देखते ही झाड़ लगाना छोड़कर कहने लगी—

"दूसरा का सामने बोलने का नई हे, पन तू रात जागला कू मार कर नीट नई किया । इसीसे ओ भाग गया । अब कइसा काम चलेंगा ? बला कोई बात हे, नशा में उसकू पीटा । अबी उठ काम कर । अब सब काम तुमकूई करना पड़ेंगा । तीन दिन से मच्छी मार्कीट में बेचने कू पड़ाय । क्या करेंगा, हम जायेंगा ? उठ धन्दा देख । जाल नीट कर । नया जाल एक और बनाने का । घर में कितना काम पड़ाय ।" झाड़ जमीन पर ठोकती हुई वह फिर कहने लगी, "दौड़कर नाना कू तड़ा । हमारा मच्छी बी ओ ट्रक में ले चलने का क्या ? और ट्रक तो जाने कू तैयार होयेंगा । कितनी देर हो गयाय ।"

"रत्ना कब आयेंगा शिवड़ी से ?"

"कदाच आज।"

विट्ठल उठा और बीड़ी पीता हुआ नाना की ओर चला गया। वंशी मछलियों को टोकरों में भरकर ठीक करने लगी। वह सूखी और गीली मछलियों को अलग-अलग टोकरों में रख रही थी। इस तरह उसने चार टोकरे तैयार किये और चूल्हे पर से चाय में दूध डालकर पीने लगी। अन्तस्थ होकर वंशी चाय के घूँट भरती जाती और जागला की बाबत सोचती जाती थी। उसे लग रहा था कि अब एक और नौकर रखना पड़ेगा। वह जानती थी विट्ठल से काम नहीं हो सकता। उसे लगा जैसे घर सूना-सूना हो गया है। फिर उसे रत्ना का ध्यान आया। रत्ना पिछले हफ्ते से भाई के पास शिवड़ी गई थी। शिवड़ी में उसका भाई होटल चला रहा था। फिर माणिक और यशवन्त की तुलना करने लगी। एक प्याला पीने के बाद उसने दूसरा प्याला भरा ही था कि विट्ठल आ गया। आते ही बोला—

"नाना जाताय, वंशी तू जा। सो हम दो टोकरा ट्रक तलक पहुँचा देयेंगा।" विट्ठल ने एक के ऊपर एक करके दोनों टोकरे वंशी की सहायता से सिर पर रख लिये और बाहर चल दिया। बाकी के टोकरे एक-एक करके वंशी ले गई।

वंशी के जाने पर विट्ठल ने चैन की सांस ली और केतली चूल्हे पर चढ़ाकर चाय बनाने लगा।

वंशी उस दिन बम्बई गई तो माणिक ने कहा, "एक मच्छीमार बोलताय शादी कर ले। हम बोला वंशी बाय से पूछेंगा। वंशी हमारा बाय है।"

"मग धन्धा तो चलताय नई ?"

"कौन बोलताय ?"

"एई मार्किट का लोक से हम पूछा।"

"सब साला झूठ बोलताय। हमकू अब एक होटल खोलने का।"

"क्यों ?"

"ए काम हम नई करेंगा।"

"काम ?"

"ए धन्धा में कुच नई। होटल चलायगा तो नीट रहेंगा। लोक बोलताय तुमारा काम चलता नई।" उसने जेब से नोटों का बंडल दिखाया। वंशी ने देखा उसके हाथ में दो-दो अंगूठियाँ हैं। कपड़े भी साफ हैं, आदि आदि।

रत्ना के बीमार होने के समय से ही यशवन्त बौखलाया हुआ फिर रहा था। उसने न जाने कैसे अनुमान लगा लिया कि बर्लीकर ने ही इसे जहर दिया है। अनुमान ही नहीं, उसे विश्वास भी हो गया था। उसी दिन से उसने कमर के रूमाल में एक लम्बी छुरी खोंस ली। उसके मन में उग्र प्रतिहिंसा जाग उठी। रत्ना के लिए जितना उसके मन में प्रेम था उतनी ही तेज बर्लीकर के प्रति प्रतिहिंसा। वह दिन-रात खून का घूँट पिये उसकी तलाश में घूमता। घर का काम बड़े अनमने ढंग से देखता। इस काम के लिए उसने दो हम-उम्र के जवान भी तैयार कर लिये थे। वे सब जंगल में जाकर बरछी चलाना सीखते। कभी-कभी आपस में बना-वटी लड़ाई लड़ते और बीच-बीच में 'यह मारा बर्लीकर साला कू' कहकर जोश से चिल्ला उठते। वे जब पेड़ के तने में बरछी भोंकते तब यह समझते कि वे बर्लीकर के पेट में बरछी भोंक रहे हैं। बर्लीकर का पता लगाने के लिए भी वे दूर-दूर घूम आए थे। पर बर्लीकर नहीं मिला। यशवन्त का क्रोध जैसे उसके हृदय में बद्धमूल बैर बन गया था। वह उसे रत्ना के प्रेम की तरह मन में संजोए फिरता। इसीसे उसकी वाणी में कर्कशता, परुषता और मन में गम्भीरता आ गई थी। रत्ना जैसे उसके मन की आराधना बन गई हो। उसने मान लिया कि अब वह बर्लीकर को मार-कर ही वीर पुरुष की तरह रत्ना से मिलेगा और निश्चय ही यह जान-कर रत्ना उसे स्वीकार कर लेगी। तब वंशी रत्ना का हाथ उसके हाथ में पकड़ा देगी। उसे लगने लगा रत्ना उसकी है। वह और किसी की नहीं हो सकती। बादलों में पानी की तरह उसके मन में रत्ना का प्रेम लहराता रहता। इसीलिए वह पहले की अपेक्षा जहाँ अधिक गम्भीर हो गया था वहाँ वह भीतर-ही-भीतर अपने मन के सपने भी देखता। इस तरह उसके भीतर प्रेमी का हृदय और पुरुष का यौवन एक साथ जाग उठा।

अचानक एक दिन झुट-पुटे में सोमा यशवन्त को मिल गई। सोमा के साथ पार्वती भी थी। दोनों समुद्र के किनारे मछलियाँ पसार रही थीं। यशवन्त नाव किनारे लगाकर उतरा तो वे सामने पड़ गई थीं। पार्वती ने भी उसे आँख भरकर देखा तो देखती रह गई। कल तक के लड़के यशवन्त में एकदम पुरुष रूप आ गया था। गठी हुई देह, चौड़ी छाती, गले में टोंटा, कसी हुई बनियाइन में उसका शरीर गसा और फटा पड़ रहा था। उसने टोकरियों में मछलियाँ भरीं और फूल की तरह उठाकर किनारे ला रखा। सोमा ने देखा तो बोली, "यशवन्त किदर से मच्छी लाया।"

यशवन्त ने सोमा को देखा पर कोई जवाब नहीं दिया। उसे वर्लीकर याद आ गया। उसका क्रोध भड़क उठा। मुँह जैसे तमतमा गया। "अरे बाउला कू देखा ?" सोमा जरा पास आकर बोली, "सवेरे से गयेला हे।"

"हम नई देखा।" एक फड़कती हुई आवाज में यशवन्त ने उत्तर दिया और अपने काम में लग गया।

"गुस्सा काय कू करताय यशवन्त ?"

कनखियों से देखती हुई पार्वती ने मीठी आवाज में कहा, "यशवन्त तो जवान हो गयाय बाय।"

"तो क्या मन आ गया री !" हँसकर सोमा ने पार्वती की ओर बिना देखे ही कह दिया; लेकिन अपने-आप यशवन्त को देखने लगी। पार्वती चुप हो गई, जैसे शरमा गई। सोमा यशवन्त को लगातार देखती रही और वर्लीकर से उसकी तुलना करने लगी।

यशवन्त सब काम करके जब पूरी तरह किनारे पर आया तो सोमा के पास आकर कठोर शब्दों में बोला, "वर्लीकर किदर हे काकी ? लुकन ठेली कियाय उस साला कू ?"

"तेरा काय बाईट किया वर्लीकर, यशवन्त ?" सोमा यशवन्त के पास आ गई और उसे देखने लगी। पार्वती मछलियाँ छाँटती रही। पर कनखियों से यशवन्त को देखती जाती थी।

"सुन यशवन्त, वर्लीकर हमारा नोकर हे। तू हमारा छोकराय....." सोमा कहने को यशवन्त से छोकरा कह गई, पर मन में उसके एक एका-

बट पड़ गई। जैसे वह झूठ बोल रही थी। निश्चय ही अगर उसके कोई बच्चा होता तो आज यशवन्त के बराबर होता। पर जैसे उसका अतृप्त मन भीतर से कुरेद उठा और उसे लगा वर्लीकर इसके सामने कुछ भी नहीं है। वैसे भी वर्लीकर को उसने और किसी दृष्टि से नहीं देखा था, पर आज यशवन्त को देखकर उसके मन में एक प्यास जाग उठी। उसका सुगठित शरीर, उसकी आलिंगन में कस लेने वाली मछलीदार भुजाएँ, स्त्री को पी जाने वाली बड़ी-बड़ी आँखें, चिरन्तन शान्ति देने वाली चौड़ी और विशाल छाती देखकर सोमा भीतर-ही-भीतर गमगमा उठी।

"तो तू मुझसे गुस्साय यशवन्त ?"

"हम बोलनाय बर्लीकर किदर हे ?"

"काय ?"

यशवन्त के मन में आया सब कह दे और दस-पाँच गाली देकर फिर एक बार वर्लीकर को मारने की प्रतिज्ञा सोमा के सामने दुहरा दे। पर कुछ सोचकर वह क्रोध पी गया और एक नीतिज्ञ की तरह हँसकर बोला—

"अइसा ई पूछताय काकी। देख नई पड़ता भोत दिवस से।"

खुर्राट काकी ताड़ गई। उसे मालूम था, यह रत्ना पर मरता है, उससे शादी करना चाहता है।

"तू इतना बड़ा हो गया, शादी करने का न।" यह कहकर उसने पार्वती की ओर देखा। पार्वती पुलक उठी। सोमा की तरफ कृतज्ञता से जैसे भर गई। फिर चुपचाप अपना काम करने लगी।

यशवन्त ने उधर देखा भी नहीं। न उसने इस बात का कोई उत्तर दिया। वह जाल समेटने लगा।

"क्यों रे क्या ?" सोमा ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर टटोलते हुए कहा, "बोल न।"

"मसकरी करताय काकी। हम बच्चा नई हे।"

"हम बी तो इसी वास्ते बोलताय।"

"हम इसी वास्ते जवाब देता काकी।"

जाल उठाकर यशवन्त ओझल होने लगा तो काम रोककर सोमा बोली, "खूब चांगलाय री, यशवन्त।"

"पार्वती चुप रही। वह अपना काम करती रही। यही पार्वती है जो कुछ दिन पहले बर्लीकर को चाहती थी, आज यशवन्त को देखकर रीझ उठी। बर्लीकर के जाने के बाद से वह सोमा के यहाँ काम करने लगी थी। जब सारी मछलियाँ टोकरों में भर गईं तो पार्वती ने कहा—

"भर गई सोमा बाय ?"

"चल मांच पर डाल दें।"

दोनों टोकरियाँ उठाकर चल दीं तो सोमा बोली—

"कइसा लगताय यशवन्त तुजकू, पार्वती ?"

"हम कू क्या मालूम।"

"आदमी बाईट नई है।"

"आदमी तो कोई वी बुरा नई होताय।"

"पन उस बर्लीकर से चांगलाय। न जाने किदर होयेंगा ? न इट्ठा से शादी किया न तेरे से। मेली पागल निकला।"

"तो क्या रत्ना की भेर की बात सच्ची है सोमा बाय ?"

"हाँ, उसी ने रत्ना कू भेर दिया। हम मना किया, पन बाउला ने उसकू चड़ाया। अब भागना पड़ा। रत्ना मुजकू नई पसन्द, नई जाने काय ?"

"यशवन्त रत्ना कू चायताय।"

"हम चायताय तेरे साथ यशवन्त लग जायँ।"

"कुच करने का ना।"

दोनों टोकरियाँ सिर पर उठाए मांच पर चढ़ गईं और मछलियाँ बिखेरने लगीं। सोमा कुछ गुनगुनाने लगी। पार्वती फैलाने लगी। उसी समय दूसरे पास के मांच से आवाज आई—

"सोमा।"

सोमा ने निगाह उठाकर देखा तो यशवन्त की माँ थी हीरा। सूखी मछलियाँ बीन रही थी।

"काय हीरा, अरे तू।"

"हा।"

"अबी यशवन्त नाव से परता था।"

"मरजी चा मालिक हय ।"

"तो उसकू पार्वती चा मालिक बना दे न । आदमी किसी-ना-किसी चा मालिक बनने का ।"

"पार्वती !" हीरा चुप रही ।

"क्या करेंगा बिचारा ।"

"जागला भाग गया, तुम सुना ?"

"अइसा क्या, काय बात हुआ ?"

"बोलताय बिट्ठल ने पीटा ।"

"काम नई करने कू माँगता था ।"

"सच-मच क्यों नई बोलना हीरा, इट्टा से शादी नई करने दिया वंशी ने ।"

"होगा, हम माहित नई ।"

"नई माहित, अइसा हम मानता नई ।" सोमा ने ताने के साथ कहा ।

"बला देख, हम दूसरे का बात कइसा जान सकेंगा । तेरा बात ठीक होयेंगा । पर जागला का बिगेर वंशी का काम कइसा चलने का । बिट्ठल से तो काम होयेंगा नई । रत्ना ठहरा पड़ेला-लिखेला छोकरी । मेरे कू लगताय वंशी तलक ई मच्छीमार का काम । ए रत्ना...."

"काय यशवन्त हय न ?" सोमा ने हीरा के मन की थाह लेने की गरज से प्रश्न कर दिया और साँस साधकर उसकी बात सुनने को उधर ही किनारे पर जा खड़ी हुई ।

"देख बाय, पइले हम सुना था । पन अबी माहिम का एक मछुआ किती बार आया हे । यशवन्त माने तब न ।" हीरा ने ठोड़ी पर उँग-लियाँ रखते हुए कहा ।

"क्या कहताय यशवन्त ?"

"माहिती नई सोमा ।"

"तुजकू मालूम होयेंगा, तेरा छोकराय ।"

"हम ठहरा गँवार औरत । नाना जाने और यशवन्त । हम पूचताय तो भी कुच बोलताय नई । जवाब नई देताय । सीधा बोले तो समजेंगा ।"

"तू भी भोली है।"

हीरा चुप रही। हीरा सचमुच भोली थी। सोमा ने ही प्रसंग उठाते हुए कहा—

"सुनताय कोई बम्बई से मानिक नाम आदमी आया था।"

"सुना हमने बी। पन...."

"कान खोल के सुन ले, शादी चाहे जिससे होने का, यशवन्त से नई होने का। रत्ना कू यशवन्त पसन्द नईं है।"

हीरा ने सुना तो धक से रह गई। भोली औरत क्या जवाब देती। सोमा ने फिर कहा—

"तू बोले तो हम और जागा बात करूँ।"

"हम क्या बोले, कोई माने तबी ना। नाना का दोस्ती बिट्ठल से। ओ बोलताय रत्ना का शादी यशवन्त से होने का। हमारे जमाना में तो अइसा नई था। बात बोला और शादी हो गया।"

"अब प्रेम चलताय न।"

"प्रेम तो पहले बी जास्ती था। तू जाने जिससे चाह हो गया उसीसे प्रेम हो गया। प्रेम तो आदमी औरत का है। दो मिले और हो गया। माँ-बाप ने जिससे कर दिया।"

"हा, पर अब नया जुग है।" दार्शनिक की तरह गम्भीर होकर सोमा बोली।

"पन जर तू ध्यान न रखा तो छोकरा हात से निकल जायेंगा।"

"क्या निकल जायेंगा, सोमा काकी! क्यों मांकू चड़ाताय?" लपककर आते हुए यशवन्त बोल उठा। "तुम औरतों कू तो जैसे और कोई काम नईं है। चल बाय चल, जल्दी। मुजकू भूक लगाय।"

हीरा बिना कुछ कहे चल दी। सोमा सकपकाकर चुप हो रही।

आसमान में तारे निकल आए थे। समुद्र उसी-रफ्तार से गरज रहा था। अँधेरे ने वस्तु की इकाई को पी लिया था। केवल कुछ दूर पर बिजली की बत्तियाँ अस्तित्व के लिए उससे लड़ रही थीं। समुद्र के किनारे काँप-काँपकर लहरों से युद्ध कर रहे थे, जैसे कोई पहलवान प्रबल शत्रु को पीछे हटाकर फिर उसके प्रत्याक्रमण की प्रतीक्षा में खड़ा

हो। दूर तक समुद्र की सतह पर अन्धकार का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। लगता था, कहीं कुछ भी नहीं है। केवल कुछ काया-कृतियाँ प्रेत की तरह कहीं-कहीं किनारे पर घूम रही हैं। मांचों पर पड़ी कभी कोई मछली फड़फड़ा उठती। सब ओर काला। इसी समय एक काली छाया वंशी के मांच की ओर बढ़ी और सीढ़ियों से उस पर जा चढ़ी। उसने कुछ मछलियाँ बीनीं और चलने ही लगी थी कि पास से आवाज आई—

"कौन है?"

उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गए। वह सब-कुछ छोड़कर भागी कि पास आकर वंशी ने पकड़ लिया।

"कौन है तू?"

"हम ऽऽ।"

"हम कौन, बोल?"

"इट्ठा।"

"मछली चोरने आया था राड़।"

"माफ कर वंशी बाय।"

वंशी ने इट्ठा के सिर का जूड़ा पकड़कर घसीटते हुए पूछा, "जागला किदर है?"

"हमकू नई मालूम।"

"सच बात बोलेंगा तो हम तेरे कू जास्ती मच्छी देयेंगा।"

"मेरे कू नई मालूम। हम सच बोलताय।"

"झूट।"

नरम पड़कर वंशी ने फिर पूछा—

"सोट बोल, नई तो हम अबी पुलिस में दे देयेंगा।"

पुलिस का नाम सुनकर इट्ठा डर से काँपने लगी। उसने निहोरा करते हुए कहा—

"तुमने मुजकू रोग में भूखा मरने कू क्यों बचाया वंशी बाय। क्या करेंगा, मग काम नई मिलनाय।"

"काय जागला है न?"

"हा, जागला एक रात कू दो रुपया दे गया था। पर उससे कितीक दिवस चलने का ? आज तीन दिवस से माँ-बेटी दोनों बूकाय।"

"जागला दो रुपया दे गया था ? किदर हे ओ ?"

"ये हम नईं जानता। फिर आने कू बोलाय। ना जाने कब आयेंगा !"

"क्यों माहिम वाला ?"

"नईं, हम माहिम नईं जायेंगा।"

"जागला के पास रहेंगा।"

इट्ठा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह डर से काँपती रही, जैसे शेरनी के पंजे में पड़ गई हो।

"उठा मच्छी, जिता लेना हो।"

"नईं अब माफ कर दे वंशी बाय।"

"अच्छा घर चल।"

आगे-आगे इट्ठा और पीछे वंशी चली। घर जाकर उसने कुछ चावल, मछली और दो रुपये देते हुए कहा—

"जागला आवे तो हमकू बोलना।"

इट्ठा उस समय तक स्वस्थ हो गई थी। पर वह वंशी को पूरी तरह समझने में असमर्थ थी। वह समझ नहीं पाई कि वंशी क्या चाहती है। फिर भी उसके मुँह से निकला—

"अच्छा।"

"जरूर, भूलना नईं।"

इट्ठा आँख फाड़कर वंशी को देखती चली गई। पर उसे नहीं मालूम हुआ कि वंशी का दिल धड़क रहा था। उसकी साँस धीमी हो रही थी।

× × ×

अचानक एक दिन बरसोवा में खबर फैली कि जागला और इट्ठा का ब्याह हो रहा है। वंशी कर रही है। ब्याह में कोई धूम-धाम नहीं हुई। सिर्फ ताशे बजे, मन्दिर में विधिपूर्वक ब्याह हुआ। वंशी ने दोनों ओर से खर्च किया। बरसोवा के सब मछुओं को दावत दी गई। गाना-बजाना हुआ। लोगों ने वंशी की तारीफ की। बिट्ठल को खुशी थी कि

काम करने के लिए जागला फिर आ गया। घर के काम के लिए इट्ठा भी आ गई। वंशी ने अपने मकान के पास खाली जगह में खजूर के पत्तों का एक छप्पर डलवा दिया। उसी में जागला और इट्ठा को टिकाया। दूसरे-तीसरे दिन एकान्त पाकर वंशी ने जागला से पूछा—

"जागला बरा हे न ?"

जागला सिर झुकाए खड़ा रहा।

"क्या नाराज हे ?"

जागला बोला कुछ भी नहीं, उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। वंशी खड़ी-खड़ी देखती रही। जैसे जागला के अन्तर में झांक रही हो।

"तेरे कू पसन्द न पड़े तो और किदर जाकर रहने का हे।"

"अबी हम किदर जायेंगा वंशी।" इतना कहकर वह वंशी के पैरों पर गिर पड़ा। वंशी ने उसे उठा लिया और उसके दोनों हाथ पकड़े खड़ी रही।

"अब नई जाना, हा।"

"मेरे कू माफ कर दे।"

वंशी ने अपनी साड़ी से जागला के आँसू पोंछ दिये और बोली—

"इट्ठा का खयाल रखना, हा।"

आज जागला की नजर में वंशी देवी बन गई।

एक दिन दोपहर के समय वंशी चटाई पर लेटी इट्ठा से सिर में तेल झँसवा रही थी। पास ही जागला उकड़ू बैठा बीड़ी पी रहा था। धूप में काफी गरमी थी। हवा जैसे बन्द हो गई थी। रह-रहकर वंशी साड़ी से पसीना पोंछ लेती और साड़ी के किनारे की बत्ती बनाकर कान खुजाती। कान में एकदम ज्यादा खुजली मचने से वह उठकर बैठ गई और जागला से माचिस माँगकर कान में डालती हुई बोली—

"मार्कीट से मच्छी का पैसा ले आ जागला। भोत दिन हो गया। ओ साला पैसा नई देताय। साला दुकानदार लोक एकदम बदमास हे।"

"पन मच्छी का भाव तो बड़ गयाय, वंशी। रामास, हलवा, टांगरी तीनों की माँग बड़ गयाय।"

"रामास तो इदर किदर, दूर तक नई हे जागला। क्या करे तू ई

थोड़ा और दूर तक जाना रे।"

"जायेंगा। पन आठ-दस मील पश्चिम तक तो रामास किदर है नई। दांडेकर बोलता था बरसोवा के मच्छीमारों का कुच सभा होने का। क्या होने का माहित नई वंशी।"

"यूनियन, क्या ?"

"हा, जो कुच भी बोला। उससे भोत फायदा होने का।"

"क्या फायदा होने का रे ?"

"जाने क्या फायदा होयेंगा ?" हाथ की उँगलियाँ फैलाकर जागला बोला, "फायदा तो तब होयेंगा जब जास्ती मच्छी मिलेंगा। कबी-कबी तो परतने कू होताय। और मिली बी तो क्या हुआ ए कोई मिलनाय ? तू क्या नाम लेताय, भला उससे क्या होयेंगा ? काल लोग बोलता था मिम्बर बन जाने का, न जाने क्या बन जाने का। हमारा कू तो कोई बात माहिती नई पड़ा। भोत सा लोक बनने का वंशी। एक बोला—'तेरे कू वंशी क्या पगार देताय ?' हम बोला—'सब-कुच और कुच नई।' तो ओ हँसने लगा। न जाने क्यों हँसा वंशी। हम तो चला आया।"

इट्ठा ने कहा, "लोक कुच-न-कुच घसड़ा करताय, बूम मारताय। मेरे से बी पूछता था। पन हम तो चला आया।"

वंशी कोई जवाब न देकर सोचने लगी। फिर बोली—

"तो तुम बोलो—दस रुपया पगार और खाना। पाँच इट्ठा का।"

"दस रुपया किदर मिलताय वंशी ?" जागला बोलने को बोल गया पर वंशी नाराज न हो यह सोचकर बोला, "पन हमकू क्या पाहिजे ? हमकू तो कुच बी नई पाहिजे। दो मुट्ठी बात, कपड़ा, रहने कू घर। और क्या ?"

"वैसे दस रुपया मिले तो हम एक साड़ी न लेयेंगा ?" इट्ठा ने तेल लगाते हाथ रोककर कहा। फिर तेल लगाने लगी।

"ए बोलता, चिउड़ा खाने कू मन मांगताय। किदर से आयेंगा हर रोज ? चिउड़ा क्या हम लोक कू खाने का चीज है ? अमीर आदमी खाताय चिउड़ा भजिया। न जाने क्या-क्या नई बात हर रोज होताय वंशी।" जागला ने मौज में भर पैर पसार दिये और अपने-आप खड़-

खड़ाकर हँसने लगा।

"माहिम में तो चिउड़ा मिलता ता।"

"तो महिमा जाने का।" कड़ककर जागला ने इट्ठा को डाँटा।

इट्ठा चुप हो गई।

वंशी बोली, "जास्ती मच्छी मिलें और पूरा दाम में जाय तो चिउड़ा बी मिल सकताय, साड़ी बी आ सकेंगा।"

"सो तो हे ई, सो तो हे ई," जागला ने बीड़ी की राख झाड़ते हुए कहा।

"पन मच्छी कू तो वंशी हम कमती नईं करता। जहाँ बी मिलताय, जानाय। दिन-दिन भर जाल पर रहताय। तब किदर जाकर दो पाटी हात आता। दस पाटी मछली से कमती में कुछ नईं होयेंगा। तीन रुपया तो मार्कीट तक भाड़ा होताय। छोटा मच्छी का दाम बी तो कमती उठताय।"

"माटी के मोल जाताय।"

"सड़ जाने पर कबी-कबी ओ बी नई।"

"बाउला बोलता ता सरकार अच्छी मच्छी खरीदता हे।"

"ओ रोहू, टांगरा मांगताय।"

'रोहू कबी-कबी हात आता हे साला। सौ में धा (दस)।'

"बिट्ठल भोत मोज मारताय। दिन बर इदर-उदर घूमता। हम कहेंगा, अब तेरे साथ जायेंगा।"

"जायेंगा तो चार हात नईं होयेंगा? मग सारा अपना ई नई होयेंगा वंशी। दो तो नाव पर पाहिजे। काल तो तोफान में नाव ई उलट जाने कू था। पवन एकदम जास्ती हो गया।" जागला उठते हुए बोला, "देखें कौन-कौन जाताय नाव लेकर? पाल में छेद हो गयाय। उसे बी सिउने का साला।"

"हाँ डोर ले जा। हम बी चलताय मांच पर," वंशी ने कहा।

जागला चला गया। वंशी उठते हुए इट्ठा से बोली—

"झाड़ दे दे आखा घर में इट्ठा!"

इसी समय बिट्ठल के साथ माणिक आया।

"बंशी, माणिक भाई आयाय," बिट्ठल बोला।

"हा क्या हरज हे? बइठ।"

इट्ठा ने उठाते हुए चटाई फिर बिछा दी। दोनों बैठ गए।

"चहा तैयार करने का इट्ठा। बीड़ी पियो लो।"

"तुमारे कू तो आज सिगारेट····"

"ठैर, हम बनायेंगा," कहकर बंशी रसोई में चली गई। इट्ठा इधर-उधर के काम में लग गई।

माणिक आज नये फैशन में, पतलून-कमीज पहने आया था। हाथ में बीड़ी की जगह सिगरेट जल रहा था। वह बैठा सिगरेट फूँकता रहा और बोला—

"होटल खोलने का पूरी तैयारी कर लियाय। अगला मास में दुकान मिलेंगा। सामान खरीद लेयेंगा। चार-पाँच बैरा, एक मुनीम होयेंगा।"

"कितना वैठेगा?"

"सात-आठ हजार का अन्दाजा हे। सौ-डेढ़ सौ रोज का धन्धा।"

सौ-डेढ़ सौ का नाम सुनकर बिट्ठल जैसे चौंक उठा।

"तब तो भोत हे।"

"देखता जाओ। रत्ना क्या इदर नई हे?"

"बोल नई सकेंगा, होगा इदर-किदर ई, सकाली तो था।"

"ओ छोकरी का बाप आया था। हम बोला—'बरसोवा का बाप से पूछेंगा।' जबान तो एक ही होताय न आदमी का। जबान पर हजारों का धन्धा चलताय। दुनिया जबान पर कायम हे। हम बोला पीछे जबान होयेंगा। भोत खुशामद किया। एक दिन छोकरी कू लेकर बी आया। मग पास आकर घुसपुस सुर में बोलने लगा—'बात ए हे, तुम्हारा घर हमकू भोत चांगला लगा हे।' बाप भी जबान का नक्की मालूम होता हे। ईमान बड़ी चीज हे। आदमी का धरम होताय। हम धरम कू मानताय। बम्बई में तो लोक बदमाश बध्धा हे। हम बोलताय तुमारे कू जैसा करो बाबा। अपना-अपना काम देखो। सब कोई वाइट हे, सब कोई चांगला।" कहता हुआ माणिक उठकर सिगरेट की राख झाड़ने दरवाजे तक गया तो बिट्ठल बोला—

"इदर ई झाड़ने का राख।"

"नई-नई घर कू गन्दा करने का काम नई हे। हम तो ऐश-ट्रे पास रखताय। आप एक बारं आइये न, देखो हम कैसा रहताय। मकान में कुरसी हे, मेज हे, काउच हे, झूला हे, बेड रूम अलग से। दस जोड़ी ड्रेस नई होने से बड़ा आदमी से मिलना कैसा होयेंगा! इतना तो पाहिजे ई, बरोबर न। कबी-कवी टाई बी जरूर पड़ताय। साब लोक के पास जाने का होताय।"

"कौनसा साब लोक?"

"भोत'सा लोक हे। एक थोड़ाई? बीसों बड़ा आदमी हे। टेक्सी लिया और दनदनाता चला गया।"

त्रिट्ठन चुपचाप चकित, भ्रमित-सा माणिक की वातें सुनता रहा। उसे लगा रत्ना के लिए इससे अच्छा और वर नहीं हो सकता। आदमी भी देखने में बुरा नहीं है। साहबों से मिलता है। कुरसी-मेज वाला मकान है। टैक्सी में चढ़ता है। होटल खोल रहा है। मार्केट में एक दूकान भी है।

इसी समय वंशी चाय लेकर आ गई। इट्ठा ने खाने का सामान लाकर रख दिया।

"हा, हम एकदम पूछने आया हे," माणिक ने घुटने जमाकर बैठते हुए कहा।

"वंशी कू पूछने से होगा, ओ जाने माणिक।"

वंशी कुछ भी नहीं बोली। माणिक की ओर एक नज़र देखकर उसने नीची निगाह करके चाय बनाना शुरू कर दिया।

माणिक चाय पीते बोला—

"बात करने से नक्की होगा न। ओ अपना छोकरी से व्यवहार मांगताय वंशी बाय। जर आज नई होता। आदमी खाते का, कमाते का पाहिजे। मालदार होने से बी बुरा नई। हम एक होटल खोलेंगा। सौ नकद का धन्दा में बाँधा नई हे। जास्ती भी हो सकेगा। विजिटर्स पर हे। अच्छा सामान होयेंगा, जास्ती देयेंगा तो साला विजिटर्स तो दौड़ा आयेंगा। नई आयेंगा तो और आयेंगा। और आयेंगा, क्यों नई आयेंगा?

नर्विस प्राम्प्ट होने से आपुन आप आयेंगा साला। आधा कप, पूरा कप, दाल, भजिया, चिउड़ा, स्वीट्स अच्छी सप्लाई करेंगा। मछली भी देयेंगा। मटन चाप बी देयेंगा। सेण्ड विचेज, रोगन जोश बी, पेस्ट्री बी। जास्ती सामान। रत्ना किदर हे ?"

"रत्ना की तब्बेत बरोबर नई। हम अवी कुच बी नई बोल सकेंगा माणिक !"

माणिक का मुँह उतर गया, फिर भी वह चाय पीता रहा। बिट्ठल चुप बैठा चाय का घूँट भरता रहा। वंशी चटाई का तिनका तोड़ती रही। इसी समय कमरे से तैयार होकर रत्ना निकली तो माणिक उत्सुक-सा हो तनकर बैठ गया।

"हम सारिका का घर जाताय मा !"

"बइठिये न जरा," माणिक ने ऊपर निगाह करके रत्ना की ओर दांत निपोरते हुए कहा।

रत्ना ने कोई जवाब नहीं दिया और अपनी धानी रंग की साड़ी का पल्ला सँभाले खड़ी रही। वंशी भी कोई जवाब नहीं दे सकी। इसी समय बायें हाथ में पट्टी बाँधे यशवन्त आकर बोला—

"बापू ने पईसा बेजाय काकी !" यह कहकर कमीज की जेब से कुछ रुपये निकालकर उसने वंशी को दिये।

"बइठ यशवन्त, चहा का एक कप लेने का न।"

"काम भोत हे साला।"

"अइसा क्या, तुम आना ई छोड़ दियाय। ला इट्ठा एक यशवन्त के वास्ते ला। अरे ए क्या, पट्टी कइसाय ?"

यशवन्त चटाई से हटकर जमीन पर ही बैठ गया। बोला कुछ भी नहीं, जैसे उसके भीतर एक गर्व उभर कर मूक भाषा में कोई नई वीरता की बात कहने को आतुर हो। उसने बायें हाथ की पट्टी पर दूसरा हाथ फेरा और गांठ को दांतों से कस दिया। माणिक इस अजनबी आदमी को उपेक्षा से देखकर सिगरेट पीता रहा।

"ए क्या यशवन्त ?" रत्ना ने आग्रह से पूछा।

"अइसा ई खोच आ गया। सो पट्टी बाँध लिया।"

इस 'अइसा ई' शब्द ने सारी उत्सुकता को ठण्डा कर दिया। वंशी भी कुछ न बोली। माणिक ने उंगली की दोनों अंगूठियों का मुँह सीधा करते हुए वंशी की ओर देखा और बोला—

"बड़ा अच्छा पिच्चर है, हिट जाताय। चार दिवस का पीछे बड़ा मुश्किल से साला टिकिट मिलेलाय। लोक बोलताय अइसा पिच्चर आज मुधी नई आयाय।"

"कउन सा ?" यशवन्त पूछ बैठा।

"ठैरो !" याद करता है····"क्या नाम बोला ई, पाताल भैरवी।" बड़ी उपेक्षा से यशवन्त की ओर देखते हुए उसने जवाब दिया।

"पाताल भैरवी !" रत्ना ने दुहराया।

"तो चलिये न। हम खुद आकर आपकू छोड़ जायेंगा।"

इट्ठा ने एक कप चाय लाकर यशवन्त के सामने रख दी। वह चाय पीते-पीते कई चित्र-पटों का जिक्र करने लगा। कौन पिक्चर कहाँ लगती है, कैसी है, उसने कौनसी देखी है, इसी के साथ सुरैया, दिलीप, अशोक कुमार, नर्गिस को उसने कहाँ-कहाँ देखा सब बातें उत्साह में भरकर कहने लगा। माणिक को लगा जैसे रत्ना का ध्यान यशवन्त ने पूरी तरह खींच लिया है। उसे नहीं मालूम था कि वरसोवा का कोई आदमी बम्बई के सिनेमा की इतनी जानकारी रखता है। स्वयं उसका ज्ञान इन चित्र-पटों के बारे में बहुत अधूरा था और 'पाताल-भैरवी' की सुनी-सुनाई बात रत्ना का मन अपनी ओर खींचने के लिए कह दी थी। टिकट-इकट भी उसके पास नहीं थे। यशवन्त की रोचक बातों ने वंशी, बिट्ठल, रत्ना को अपनी ओर कर लिया था। इट्ठा भी खड़ी होकर सुनने लगी थी। इसी समय बात काटकर माणिक ने कहा—

"हम तो अंग्रेजी पिक्चर देखना माँगता है। साला हिन्दी सिनेमा बड़ा चीप है।"

"अपने कू तो समझ आता नई," यशवन्त ने जवाब दिया। "वइसे हमने इंग्रेजी का पिक्चर भी देखेला है। गिट-पिट—गिट-पिट हिन्दी होने, मराठी होने गुजराती होने से समजेंगा।"

"अरे समजने कू काय, देखता जाओ। मजा कम नई होयेंगा। अपने

कू तो मजा पाहिजे। मग 'पाताल-भैरवी' भोत मशूर मारूफ पिक्चर हे।"

"हा, पाताल-भैरवी तो जरूर अच्चा होने का, हम पन सुनाय।"

"हा। अच्चा हे तो चलेंगा। अपने पास बाक्स टिकिट हें, सबसे ऊपर का।" माणिक ने रत्ना के चेहरे पर आँखें जमाते हुए पूरे बल से कहना शुरू किया और अपनी सोने की अँगूठियों के मुँह सीधे करने लगा।

"जा देख आ न रत्ना, माणिक भाई बोलताय। हम कू बी तो चलने का। पन तुमी जायेंगा।"

"हमकू सारिका के इदर जाने का माँ, ओ बुलाता था।"

"हा हा, क्या हरज हे! रत्ना जा।" विट्ठल ने वंशी की हाँ-में-हाँ मिलाकर कहा।

"जाने का तो अपने कू बी हे पिक्चर में।"

"तो चल न यशवन्त," रत्ना ने आग्रह किया।

यशवन्त पट्टी पर हाथ फेरकर बोला, "पन हमकू एक जागा जाने का। मग मांच पर जाने का। दो-एक काम और हे। बापू की तब्बेत बरोबर नई।"

"अइसा क्या? क्या होने का नाना कू?" विट्ठल पूछ बैठा।

"ताप।"

"तो चल हम देखेंगा।" लेकिन माणिक की ओर देखकर जैसे उठते-उठते रुक गया।

यशवन्त पट्टी के घाव की बात कहना चाहता था, पर बात चलने पर उसने 'अइसा ई' कहकर टाल दिया था और अब पछता रहा था कि क्यों उसने बर्लीकर से लड़ाई की बात सबके सामने नहीं कह दी। बुरा हुआ। रह-रहकर उसके भीतर एक उबाल-सा आता। जब उससे नहीं रहा गया तो जोर से चिल्लाकर कहा—

"काकी, आज साला बर्लीकर कू टीक कर दिया। ओ बी याद करेंगा।"

वंशी ने सुना तो वह खुश हुई। पर माणिक के सामने उसने उस प्रसंग को लाना ठीक नहीं समझा तो बोली—

"सुनेंगा यशवन्त सुनेंगा, अबी नई। चल मुजकू बी मांच पर जाना है।" बंसी यशवन्त का हाथ पकड़कर बाहर निकल गई।

रत्ना माणिक के साथ लौटी तो काफी खुश थी। माणिक ने अपनी सामर्थ्य के बाहर वैभव दिखाने के लिए खूब खर्च किया। टैक्सी में घुमाया, होटल में दोनों ने पेट भरकर खाया। एक सिनेमा देखा। यह रत्ना के लिए पहला ही मौका था कि उसने बम्बई की सैर की। आज उसके मन में नया उल्लास था, नई उमंग थी। उसे लगा, बरसोवा का वह जीवन बहुत फीका है बम्बई के जीवन के सामने। माणिक उसे अपने घर भी ले गया। साधारणतया सजे हुए कमरे को देखकर बरसोवा के अपने रहन-सहन के प्रति होने वाली एक प्रकार की ग्लानि ने उसके हृदय में वैभव की भूख जगा दी। गेट वे ऑफ इण्डिया, ताज महल होटल, म्यूजियम, क्रॉफर्ड मार्केट, राजा बाई टावर, चौपाटी और, भी इधर-उधर घूमते हुए उसे लगा कि अब तक का उसका जीवन बहुत-कुछ सूना-सूना था। पहले एक-दो बार वह इन्हें देख चुकी थी। इसके साथ रत्ना के मन की बाहरी भूख ने उसे माणिक की तरफ आकृष्ट किया। रात में लेटे-लेटे उसने माणिक और यशवन्त को नापा, तोला, जोखा। थोड़ा अंग्रेजी पढ़ा उसका अविकसित मन बम्बई के उस जीवन की ओर दौड़ने लगा। माणिक में उसने पाया कि जितना उसने किया है अगर वह सही है तो निश्चय ही माणिक यशवन्त से अच्छा है। होटल चलने पर वह मछलीमारों के घिसे-पिटे जीवन से उठकर सारिका के घर की बराबरी कर सकेगी। वैसे ही घर के आँगन में कुरसी डालकर मेज पर चाय पी सकेगी। अच्छे कपड़े-गहने पहनकर रोज न सही तो कभी-कभी घूमने आया करेगी। हो सकता है कभी माणिक मोटर भी खरीद ले, जैसा कि वह कह रहा है। वह नये-नये सपनों के ताने-बाने में नई गाँठें लगाती रही। यशवन्त के लिए उसके मन में जो छोटी-सी जगह बनी थी उसने पाया अब वह धीरे-धीरे धुँधली हो रही है। जो मूर्ति बनी थी उसका कंकाल रह गया है। और इस समय तो सारे कंकाल की अपेक्षा उसका दाँत निपोरता मुँह-भर रह गया जिसमें माणिक जैसी आभा नहीं है।

माणिक दूसरे दिन फिर आया। आज उसके कपड़े और भी साफ

थे। मोतिया रंग की रेशमी कमीज, मक्खन जीन की बुर्राक पतलून, पम्प शू। उँगलियों में दो की जगह तीन अँगूठियाँ थीं। मामूली सेंट की खुशबू उसके कपड़ों से फूट रही थी। बिट्ठल दरवाजे पर बीड़ी पीता मिला। नाना उसके पास ही बैठा था। पास ही सामने होटल वाला दोनों को चाय का प्याला दे रहा था। दोनों हाथ में प्याला लिये मुँह में बीड़ी दबाए बातें कर रहे थे कि माणिक आ गया। बिट्ठल ने चाय के लिए पूछा, पर माणिक मना करके घर की ओर चला गया।

नाना ने एक बार इस व्यक्ति को देखा था। उसने आशंका से प्रश्न-भरी नजर बिट्ठल पर डाली और माणिक के स्वामी की तरह घर जाने को घूरकर देखने लगा।

"कौन है बिट्ठल ?"

"माणिक, जिसकू अपन ने बचाया था। अबी ए मच्छी मार्कीट का एजेन्ट है।"

"माणिक, ए माणिक इदर काये कू आया ?"

नाना का आश्चर्य दुगना हो गया, उसके मन में कई प्रकार के तर्क-वितर्क उठने लगे। माणिक आढ़ती के यहाँ आने का क्या मतलब हो सकता है ? यह क्यों आया है, मछली मार्कीट में इतने ठाठ से बैठने वाला तो कोई दुकानदार है नहीं। उसे याद आया कि यशवन्त ने रात को उसे जिस आदमी का नाम बताया था, हो सकता है, यही हो। इसी के साथ रत्ना बम्बई गई थी। तो क्या रत्ना की शादी माणिक से हो रही है ? वह बिट्ठल के मन का भेद लेने आया था कि रत्ना की शादी वह यशवन्त से कब कर रहा है। पर इधर-उधर की बातों में उलझ जाने से भूल ही गया था। माणिक के इस समय आने से उसका शक और भी बढ़ गया तो बोला—

"इसीसे बोलताय, बिट्ठल हम तो जूना आदमी है। अपने वरसोवा का छोकरी इदर ई रेता आयाय।"

"नया जमानाय नाना, अब जो होय तो थोड़ाय। पन माणिक मालदार है। होटल खोलने कू जाताय। नया धन्धा करेंगा। देखता नई कइसा कपड़ा पहनताय, लगताय कोई साब है।"

नाना ने अपनी पुरानी परम्परा की स्थापना करते हुए आधा मुँह फाड़े ही कहना शुरू किया—

"इसीसे बोलताय बिट्ठल, अपन कू बार नई जाने का। यशवन्त कमाताय, जवान हे। करेंगा बरसोवा में उससे कोई बराबरी? दो आदमी का काम केवल करताय। इसीसे ओ बोलताय ओ बाबा, तुम घर बइठो हम मछली मारकर लायेंगा। दो दिन पूरा में अकेला ने पाल बनाया। अब एक नई होड़ी बनाने कू जाताय। काल ही था पाटी मच्छी मारकर लाया। इसीसे बोलताय, इदर आजकाल समुद्र बी पूरा जोरों पर हे। बीता काल तड़के पच्छिम का तरफ येरंगेल का कोली का होड़ी उलट गयाय। भोत मुश्किल से बरसोवा के कुच लोक ने मिलकर उसकू बचाया। यशवन्त जान हथेली पर रखे लाट (लहर) से लड़ता रहा था। तब किदर जाकर होड़ी चलाया।"

"यशवन्त कू क्या हम जानता नई, नाना!"

"इसीसे बोलताय, इसीसे बोलताय बिट्ठल! ले बीड़ी पी न।"

दोनों चाय के बाद फिर बीड़ी पीने लगे। होटल वाला चाय के प्याले लेने आया तो नाना ने एक बीड़ी उसे भी दी। उसने खड़े-खड़े नाना की बीड़ी से बीड़ी सुलगाई और उँगलियों में प्यालियाँ लटकाकर पिर्च प्याले दबाये हुए हाथ हिलाता हुआ बोला—

"सात बंगला के पास आज का बात सुना? ओ ईसाई अपने लाखा की छोकरी कू उड़ाकर ले जाता था। लाखा होड़ी लेकर पानी में गया के एक ईसाई पादरी आया और बार खेलती लड़की कू मीठा देकर साथ ले चला साला। उधर सात बंगला के पास लाखा का औरत अँधेरी से बस में परत रहा था। तो उसने रूपा कू देखा। देखते ई उसने हल्ला शुरू किया। बस ठैर गया। ईसाई भागा तो लोक उसकू पकड़ा साला कू। छोकरी कू लेकर लाखा का औरत परता। आखा बरसोवा में संसेशन फैलाय।"

"अइसा क्या? ओ अपना लाखा क्या?"

"हा।"

"क्यों, काय कू ले जाता था?" बिट्ठल ने पूछा।

"ईसाई बनाने कू ले जाता होयेंगा, और क्या ?" नाना ने बीच ही में टोक दिया—

"लाखा तो ईसाई बनने कू जाता था। उसकू मशीनरी लोक कुच्च महीना देने कू था न।"

"नई बनता होयेंगा तबी तो," बिट्ठल फिर बोला। "कुच बात बिगड़ गया होयेंगा।"

होटल वाला प्यालियाँ हिलाता हुआ कहने लगा—

"हम सुना मूसा लाखा की औरत कू चाता हे के ओ ईसाई हो जाय तो उससे मैरिज कर ले, इसकू तल्लाक देकर। लाखा आज सकाली हमारा इदर प्याला चाय पीता-पीता बोला—'मूसा भोत दादागीरी करताय। साला हम उसकू समजेंगा।' इसके पीछे ई मूसा आया और दोनों नाव की ओर चला गया। जैसे दोनों दोस्त होने का। अजब बात साला। मुँह का दोस्ती!"

"अरे होयेंगा, इससे अपन कू क्या? इसी से बोलताय आखा संसार बिगड़ेलाय, बिट्ठल।"

बिट्ठल बोला, "नया जुग हे नाना। सब नया बात। ले एक बीड़ी लेयेंगा?"

बिट्ठल उठता हुआ कहने लगा, "देखें माणिक क्या बोलताय।"

"तो जर बिट्ठल। इसी से बोलताय अपने कू बरसोवा से बार नई जाने का। यशवंत···"

बिट्ठल बीच ही में टोककर बोला—

"नाना हमकू तेरे से क्या बोलने का? क्या हमारा कोई मानताय? वंशी जो चाहेंगा सो होयेंगा। रत्ना जो चाहेंगा सो होयेंगा।"

"रत्ना तो तेरा छोकरी हे न," नाना ने रोस में कहा।

"पन भाई, वंशी हमारा औरत बी तो हे।"

नीची निगाह कर बुड़बुड़ाते हुए नाना ने कहा, "तो मग यशवंत का वास्ते बी कमती नईं। इसीसे बोलताय पास का मामला था। कौन दूर हे, इस घर से उस घर, पन बिट्ठल तू जान।"

होटल वाला पहले ही चला गया था। दोनों उठते-उठते बड़े

विश्वास के साथ धीरे-धीरे एक-दूसरे का हाथ पकड़कर बात करने लगे, जिसका सार यह है—

"देख नाना, मैं तो बंशी से कह चुका हूँ कि रत्ना का ब्याह यशवंत से कर दे। अच्छा लड़का है, जाना-पहचाना, देखा-भाला। और मैं क्या कहता, तू बता।"

नीची निगाह करके दार्शनिक की तरह सोचता नाना निराश होकर जब चलने लगा तो बिट्ठल ने हाथ पकड़कर फिर कहा—

"अपना चलता हम रत्ना का शादी यशवंत से ई करेंगा तू चिन्ता काये करताय ? हा।"

"हा बिट्ठल बराय।"

दोनों हट ही रहे थे कि माणिक और रत्ना बाहर निकले। रत्ना आज काफ़ी अच्छी साड़ी में थी।

"बापू हम बम्बई जाताय।"

बिट्ठल कोई जवाब न दे सका। वह दोनों को ताकता रह गया। माणिक ने हाथ उठाकर नमस्ते कहा और रत्ना को लेकर चल दिया। नाना ने भी देखा तो सहम गया। अच्छा बिट्ठल को भी न लगा कि लड़की एक बाहर के आदमी के साथ अकेली जाय। पर बंशी का रुख देखकर उसने भी तो हाँ कर दी थी। वह चुप रह गया। दोनों चले गये। वे दोनों उन्हें बाजार के मोड़ तक देखते रहे।

× × ×

"वर्लीकर अब बरसोवा का सूरत नईं देखेंगा काकी। हमने सालाकू इतना मार दियाय कि और चाहे जिदर रहेंगा बरसोवा की ओर नईं परतेंगा।"

"क्या बात हुआ यशवंत ?"

"ओ दिन हमने रत्ना का बेहोश होने पर वायदा बोला था न।"

"हा। मग बात क्या हुआ ? लड़ाई कइसा हुआ ?"

"होयेंगा क्या ? अचानक ओ खार में मिला। हमारा तीन और साथी था। ओ अकेला। साँझ का झुटपुट। हम अपना एक दोस्त के इदर से आता था के समुद्र के तट पर ओ मच्छी का टोकरा लिये

मिला। हम डाँटा—'बोल वे बर्लीकर का बच्चा, अब बोल। एक औरत जात पर हमला करके बच गया साला, आज देखेंगा।' हमने खूब गाली दिया। ओ मग बी चुप रहा। हम एक हात उसका टोकरी में मारा। मच्छी पसर गया। और उसकू पीटना मांगा। ओ वी तनकर खड़ा हो गया। हमारे साथी ने बीच करने का बहाना उसकू पकड़कर ओ मार मारा के मुर्दा माफिक मार खाता-खाता गिर गया। ओई ने हाथ में कापा। पन काफी बड़ा ताकत है साला बर्लीकर में। हम अकेला होता तो क्या फत्ते होता? तो बी अइसा मारा हम उसकू के साला याद रखेंगा जनम-भर के कोई मिला था।"

"मग।" उत्सुकता से आँखें चमकाती वंशी ने पूछा।

"मग क्या, मर गया होयेगा साला।"

"और पुलिस में जायेंगा तो!" जैसे डर गई हो।

"हम दादागीरी निकाला, साला बूम् मारता था। क्या खाके रपट लिखायेंगा। हम लोक नास आया।" यशवंत अपनी वीरता की बात कहकर वंशी के मुँह की ओर ताकने लगा जैसे बर्लीकर से लड़ाई के बाद उसकी प्रतिक्रिया वंशी के चेहरे पर देखना चाहता हो।

उस समय वंशी इट्ठा के सिर पर मछलियों का टोकरा रखवाकर खड़ी थी। इट्ठा मछलियाँ लेकर जब चल दी तभी सामने आते हुए यशवन्त ने वंशी से बर्लीकर की बात छेड़ दी। दोनों आमने-सामने खड़े थे। यशवन्त की जवानी के उभार को वंशी देख रही थी। उसका सुता हुआ शरीर, बलिष्ठ बाँहों में उभरती मछलियां, खिंची हुई मांसल जाँघें, लम्बा कद, उगती मूँछें और दाढ़ी के बाल, यौवन के गर्व से चमकता हुआ चेहरा। सामने अस्ताचलगामी सूर्य के प्रकाश में यशवन्त का वह रूप उसे अद्‌भुत लग रहा था। उसकी आँखों के सामने माणिक और यशवन्त दोनों नाच उठे। उसे लगा माणिक में न तो यशवन्त की-सी आभा है, न सौन्दर्य। उसके फीके चेहरे पर अच्छे कपड़े पहनते हुए भी जवानी जैसे कुछ निशान-भर छोड़ गई है। जैसे खण्डहर का कोई प्रेत अपने अतीत वैभव का कोई गीत गा रहा हो। आज पहली बार भान हुआ कि रत्ना के लिए उपयुक्त पात्र केवल यशवन्त ही है। माणिक के पास रुपया

है सही, यह बाहरी ढंग से शायद उसे सुखी भी रख सके, पर यशवन्त-जैसा यौवन और मन उसके पास नहीं है। औरत का मन सिर्फ रुपये से ही तो नहीं भरता। उसे उसके मन की तृप्ति के लिए वैसा शरीर भी तो चाहिए। सौन्दर्य और यौवन भी तो चाहिए। उसे अपने अतीत की स्मृति हो आई। अपने अतीत यौवन की भूख के उतार-चढ़ाव उसके मन में जाग उठे। पहले विट्ठल और फिर जागला का रूप उसके थके मस्तिष्क में घूम गया। बचपन में एक बार अपने बाप के साथ जब वह समुद्र में गई थी और तूफ़ान में उसकी नाव उलट गई थी उस समय इसी तरह के नौजवान लड़के ने जान पर खेलकर उसे समुद्र से निकालते हुए अपने अंक में कस लिया था। उसे पीठ पर लादकर वह दूसरी नाव तक उसे घसीट लाया था। उसे लगा, वह जवान इस यशवन्त की ही तरह था और बहुत दिनों तक वह भी उसका प्रेमी बना रहा।

वंशी को अतीत की स्मृतियों से खेलते देखकर भी यशवन्त कुछ नहीं समझा। उसे लगा शायद वंशी को उसकी बात पसन्द नहीं आई या बर्लीकर को इस तरह मारना उसे बुरा लगा है। वह कुछ भी नहीं समझ सका। भौंचक-सा खड़ा वंशी की ओर देखता हुआ बोला—

"अच्छा काकी चलेंगा, नाव पर जाने कू उशिर होताय।"

वंशी जैसे स्वप्न से जागी। उसने दबी जबान से कहा—

"हा, यशवन्त, भोत अच्छा किया। तू जा उशिर होताय। हम बी चलेंगा।" कहकर उसने सूखे मन से उसकी पीठ ठोकी।

यशवन्त साधारण प्रशंसा से खुश नहीं हुआ। वह समझ कुछ भी न पाया, काकी क्यों इस तरह बोली। उसने बुरा तो कुछ भी नहीं किया। उसे डर हुआ शायद रत्ना उसे बिलकुल नहीं चाहती, वंशी भी उसे नहीं चाहती। वह माणिक के साथ ही रत्ना का ब्याह करना चाहती है। वह मालदार है न। पर क्या उसकी तरह माणिक भी रत्ना को प्यार कर सकता है। रत्ना नहीं जानती उसके मन में रत्ना के लिए समुद्र लहरा रहा है। वह उसके लिए सब-कुछ कर सकता है। बर्लीकर के साथ लड़ाई करके उसे क्या मिला? केवल रत्ना के लिए ही तो उसने यह सब किया? पर उसका कोई फल उसे न मिला। उसका

मन निराशा से उबक-उबक उठा जैसे उसकी नसें निश्चेष्ट हो गई हों। वह नाव पर जाते-जाते किनारे पर बैठ गया। समझ में उसको कुछ भी नहीं आ रहा था कि क्या करे? क्या रत्ना का ब्याह उस माणिक से हो जाने दे? नहीं, यह नहीं हो सकता। तो क्या वह माणिक को मार दे? तभी रत्ना उसकी हो सकती है। वह तैयार हो गया। उसके भीतर की स्फूर्ति, उसकी चेतना जाग उठी, उत्तरंग हो उठी। जैसे उसने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। बहुत देर बैठे-बैठे सोचने के बाद फिर एक मोटा-सा विचार उसके मन में उठा। यदि वह ऐसा करते पकड़ा गया, तो फाँसी हुई तब? तब तो वह कहीं का नहीं रहेगा। रत्ना फिर भी न मिल सकेगी। निश्चय ही रत्ना तब दूसरे किसी की हो जायगी। वह उठकर नाव पर जा बैठा। उस समय पश्चिम की दिशा को छोड़कर तीनों ओर अँधेरा छाने लगा। केवल उसके मन की निराशा में पच्छिमी सूर्य की किरणों की तरह आभा बाकी थी। वह शायद उसके जीवन का प्रकाश था, जिन्दा रहने का प्रकाश था। न जाने कब तक वह बैठा रहा। रात हो गई।

"कौन, यशवन्त ?"

यशवन्त नहीं बोला। वह छाया और पास आ गई। यशवन्त ने देखा वह छाया रत्ना थी। वह चौंक पड़ा।

"क्या करताय यशवन्त ?"

"कौन, रत्ना !"

उसके शरीर से जैसे बिजली का तार छू गया। वह उठकर खड़ा हो गया। रत्ना किनारे पर थी। वह नाव से उतर रत्ना के पास आ गया।

"तू इदर, इस रात में।"

"हा, इट्ठा के साथ मछली उठाने आया।"

"तू तो बम्बई गया था।"

"हा, यशवन्त जल्दी चला आया। टिकट नहीं मिला सो परतना पड़ा। अब काल जायेंगा।"

"कौन पिच्चर हे ?"

"एक गुजराती। भोत गर्दी था।"

यशवन्त चुप हो गया। इट्ठा लालटेन लेकर आ गई। दोनों दो टोकरियों में मछलियाँ बीनने लगीं। इट्ठा एक गीत गा उठी—

नाइ गोंगे, ख़ालगोंगे आज लायलिंगों मजूरी भर
ए थूनी बर आले सांझे कवल बाइलो की लागो।

यह सगाई का गीत था। बीच-बीच में रत्ना भी कोई कड़ी उठाकर इट्ठा का साथ देती। यशवन्त बैठा सुनता रहा। असामयिक होने पर भी यशवन्त को वह गीत अच्छा लगा। मछलियाँ बीनने के बाद दोनों चल दीं तो यशवन्त रत्ना के पास आकर बोला—

"बैठेंगा नई रत्ना ?"

रत्ना मुड़कर खड़ी हो गई और मुस्कराती हुई बोली—

"नई यशवन्त, अब जायेंगा। तू, इट्ठा तू चल।"

इट्ठा चलते-चलते बोली, "रत्ना, यशवन्त की बी बात सुन। गाँव का आदमी बुरा नई होता।"

"जा जा, तू जागला से बात कर।"

इट्ठा के मन में आया कुछ जवाब दे, पर कोई जवाब उसे नहीं सूझा और जवाब सूझा वह रत्ना को बुरा लगता शायद, यही सोचकर वह टोकरी उठाकर चल दी।

"लालटेन ले आयेंगा रत्ना ?"

"हम बी चलताय इट्ठा।"

इट्ठा ठहर गई। रत्ना इट्ठा के गाल पर हलकी चपत जमाकर बड़े नखरे से टोकरी उठाने खड़ी हो गई तो इट्ठा ने मुस्कराकर कहा—

"रत्ना का टोकरी उठाने का यशवन्त, देखता क्या है ? अन्त में उठायेंगा तो !"

"रत्ना ई नई मानता इट्ठा, हम तो तैयार है।"

मुस्कराता यशवन्त उठा और एक हाथ से टोकरी उठाने लगा तो इट्ठा ने फिर कहा—

"दोनों हात से उठा, ये रत्ना बाय का भार है।"

रत्ना के भीतर गुदगुदी-सी हुई इट्ठा की इस बात से और हँसी

से टोकरी उसके हाथ से अधबीच में ही छूट पड़ी। सारी मछलियाँ बिखर गईं। हँसते-हँसते रत्ना बोली—

"बड़ा धूर्त है इट्ठा। आखा मच्छी गिरा दिया।"

इट्ठा टोकरी लिये खड़ी-खड़ी बोली—

"तुमारा मन यशवन्त कू देखे बिगेर नईं मानताय तो हम क्या करेंगा ? ले अब तो ठेरना ई होयेंगा।" इट्ठा ने अपनी टोकरी खुद ही उतार ली और तीनों मिलकर मछली बीनने लगे।

यशवन्त बोला—

"ए बखत तो मच्छी ने हमारा भाग जगाया।"

"हमारा दुर्भाग।"

"दुर्भाग में भीतर ई भाग रेता है रत्ना।"

रत्ना ने बनावटी क्रोध में भरकर कहा—

"आज भोत बात करताय इट्ठा।"

"बात तो तुमकू और यशवन्त कू देखकर ई सूझा। नईं तो हम बोलना क्या जानूँ, गँवार औरत।"

"गँवार औरत जास्ती प्रेम जानताय," यशवन्त ने कह दिया।

"गँवार आदमी बी," रत्ना ने तुरन्त कह डाला।

"पढ़ेला-लिखेला प्रेम कू लुकुन ठेली भोत करताय," यशवन्त ने तुरन्त उत्तर दिया।

"पढ़ेला-लिखेला का प्रेम पुस्तकी होताय," इट्ठा मछलियाँ टोकरी में डालते हुए बोली।

"जो प्रेम कू लुकुन ठेली करताय ओई प्रेम करना बी माँगताय, यशवन्त।"

"पन प्रेम कोई पुस्तक नईं, ओ तो अन्दर का चीज है। हमने कोई किताब नईं पढ़ा पन हमारे प्रेम का कोई परीक्षा करेंगा तो देखेंगा, वर्ली-कर से हमारा लड़ाई....।"

कहते-कहते यशवन्त रुक गया और रत्ना की ओर देखने लगा। रत्ना ने निगाह फेर ली और मछलियाँ बीनने लगी। इस बार रत्ना की टोकरी इट्ठा ने उठवाई और इट्ठा की यशवन्त ने।

दोनों चल दीं तो यशवन्त भी पीछे-पीछे चलने लगा। रत्ना ने पूछा—

"क्या आज समुद्र नईं जायेंगा यशवन्त ?"

"केवल डूबने कू जा सकेंगा रत्ना, जर तू बोले तो।"

इट्ठा ने कोई बात नहीं की। वह गम्भीर हो गई। रत्ना हँसी के मूड में थी। बोली—

"डूबने का पाड़ी आने से पइले कोई तुजकू बाँध लेयेंगा यशवन्त।"

"जर बाँधने वाला खुद ई कोई और के चक्कर में होयेंगा तो…"

"तूई पइले जाल डाल न यशवन्त," इट्ठा ने रुककर कहा।

"कदाच हमारा जाल का डोरी कच्चा हे इट्ठा।"

"कच्चा डोरी लेकर चलने वाला हमेशा धोका खाताय। पन जाल में नाका मगर नई आता। बड़ा ह्वेल बी नई।" रत्ना ने कहा।

इट्ठा बोली, "रत्ना टाँगरा नईं हे, ह्वेल हे ह्वेल।"

"उसके लिए कोई जाल नई हे हमारा पास।"

सब बाजार के मोड़ तक पहुँच गए।

"चलेंगा रत्ना।"

"हा, जा," कहकर रत्ना इट्ठा चली गईं।

यशवन्त समुद्र की ओर न जाकर मकान के बाहर चबूतरे की जमीन पर लेट गया। उसे लगा रत्ना से अब उसकी शादी नहीं हो सकती। रत्ना माणिक को चाहती है, इसलिए कि वह मालदार है, बम्बई में रहता है, सिनेमा देखता है, अच्छे कपड़े पहनता है, अच्छा खाता है। रत्ना पढ़ी-लिखी है। वह कुछ भी नहीं जानता। उसके मन में उदासी भहराने लगी। जैसे सभी उपाय उसकी ताकत के बाहर हों। जैसे हाथ में आई रत्ना को छीनने के लिए कोई आ रहा हो। आज की बात से उसे साफ हो गया। न जाने कब तक वह यही सोचता रहा।

× × ×

दूसरे दिन माणिक आया तो रत्ना को उसने पहले से ही तैयार पाया। बंशी के चाय के एक प्याले की बात सुनकर रत्ना तुरन्त बोल उठी—

"चाय हम होटल में पीयेंगा माँ।"

वंशी चुप रह गई। रत्ना और माणिक बाहर निकले और बाहर खड़ी टैक्सी में बैठ गए। टैक्सी में बैठते ही रत्ना माणिक से बोली, "हमकू जरा अपना एक सखी से भी जरा देर के वास्ते मिलनाय। कार उदर ई ले चलने का।"

जैसे-जैसे रत्ना माणिक की ओर आकृष्ट होती गई वैसे-ही-वैसे वंशी का मन उड़ा-उड़ा रहने लगा। इससे पहले माणिक ने दो-एक बार शादी की बात छेड़ी तो वंशी ने पाया कि रत्ना तैयार है। पर वंशी को अड़चनें दिखाई दे रही थीं। सबसे बड़ी रुकावट थी कि रत्ना बरसोवा छोड़कर बम्बई रहने लगेगी। वह नहीं चाहती थी कि रत्ना अलग रहे। उसका बहुत पुराना सपना था कि वह घर में ही जमाई को रखेगी और मकान, नाव सब दे देगी। उसका सपना चूर-चूर हो रहा था। रत्ना को वह चाहती भी कम न थी। एकमात्र वही उसका सहारा थी। वह सोचने लगी, "यशवन्त के साथ रहने पर रत्ना बरसोवा में ही रहती, उसकी आँखों के सामने। नाना के परिवार पर उसका शासन होता। आजकल जितने रिश्तेदार पास-पास रहें उतना ही अच्छा रहता है। माणिक जाने कैसा निकले ?"

बहुत देर तक वह झूले पर झूलती सोचती रही। उसके पैर जमीन पर पड़ रहे थे, दिमाग कल्पना के द्वारा भविष्य के आकाश में उड़ रहा था। उसे लगा—माणिक के साथ यह विवाह अच्छा नहीं रहेगा। उसके दिमाग में यशवन्त घूमने लगा। कल शाम जो उसने यशवन्त को देखा तो उसका रूप, गठन, लम्बाई, चौड़ाई देखकर वंशी डोल उठी। उसे लगा रत्ना, उसकी प्रिय रत्ना, के लिए बम्बई और आसपास यशवन्त को छोड़कर और कोई वर नहीं है।

वह अधीर होकर घूमने लगी। क्या करे ? लड़की ने माणिक को पसन्द कर लिया है। औरत का मन किसी में एक बार रमा तो रमा। फिर उसे कोई रोक नहीं सकता। वह सोच रही थी बिट्ठल से सलाह करेगी। इसी समय बिट्ठल ताड़ी पीकर गाली देता लौटा तो वंशी उसे देखते ही बौखला उठी। वह उसके सामने जाकर खड़ी हो गई और क्रोध में भरकर बोली, "काय, आज मग ताड़ी पिया। मग पिया बिट्ठल।

कोई काम न धन्धा, ताड़ी ताडी बस, दिन-भर ताड़ी का सपना देखताय।"

वंशी के सामने पड़ते ही जैसे उसका साहस खो गया। वह अपराधी की तरह चुप खड़ा रहा। ताड़ी का प्रभाव उस पर सवार था। जब वह खड़ा न रह सका तो बैठ गया, उकड़ूँ होकर। वंशी के काफी कहने-सुनने के बाद भी जब बिट्ठल कुछ न बोला तब वंशी चुप हो गई। रसोई में से चाय बनाकर बिट्ठल के सामने रखती हुई बोली—

"ले कप।"

उसने एक प्याला बिट्ठल के सामने रख दिया, दूसरे में खुद बनाकर पीने लगी। बिट्ठल बिना इच्छा के चाय पीने लगा। वह इस समय कुछ नमकीन चाहता था।

वंशी बोली, "अब क्या होने का बिट्ठल ?"

बिट्ठल आँखें फाड़कर वंशी की तरफ देखने लगा।

"माणिक शादी कू बोलताय।"

बिट्ठल ने चाय पीकर स्वस्थता पाई और जवाब देने लगा, "टीक तो है।"

"क्या ?" वंशी ने चिल्लाकर पूछा।

"माणिक से शादी और काय ? जब तू माना है····"

तनकर वंशी ने चाय का प्याला हाथ में थामे ही पूछा, "क्या माना है ?"

"रत्ना की शादी और क्या ?"

"मैंने माना है ?"

"नई तो यशवन्त····अब भोगना होगा। छोकरी बम्बई रहेंगा।"

नरम पड़कर वंशी ने बिट्ठल की ओर देखते हुए कहा, "हम नई चाता बिट्ठल।"

"हम बी नई चाता, रत्ना बरसोवा त्यागकर जाय। हम ये शादी नई करेंगा।"

"तो नई होयेंगा।"

वंशी चुप होकर सोचने लगी। बिट्ठल वहीं जमीन पर लेट गया।

रत्ना आज और दिनों से भी अधिक खुश थी। माणिक के व्यवहार, ठाठ-बाट ने उसे और भी मोह लिया। बाप की तरफ लापरवाही से देखते हुए सीधी माँ के पास आकर बोली—

"माणिक तेरे से बोलने कू केता था।"

"और तू रत्ना ?"

रत्ना ने अप्रत्याशित तैयारी से कहा—

"ओ जल्दी करताय माँ।"

"हूँ," कहकर वंशी चुप हो गई।

"माँ, बड़ा चांगलाय।"

रत्ना कपड़े बदलकर झूले पर बैठी पंखे से अपना बदन सुखाने लगी। वंशी उसके कपड़े खड़ी करके अर्गनी पर टाँग रही थी। उसने पास आकर झूले पर बैठते हुए रत्ना से कहा—

"हमकू तेरा ये काम बिलकुल पसन्द नई हे, रत्ना। अपना इदर शादी से पइले कोई भी छोकरी इस माफिक किसी के साथ घूमने नई जाता। मग खराब तो खराब नई हे। जब तक शादी नई होता····।"

तड़ककर रत्ना ने जवाब दिया, "तो तुम आपुन मुजकू पइले जाने कू बोला।"

"हम तो एक बखत के वास्ते बोला।"

"जइसा एक बार वइसा सौ बार। मग एक बार बी बेजने का क्या मतलब ? एइ न के हम·······अब हम शादी करेंगा तो माणिक से नई तो···।"

"बम्बई रहेंगा जाकर।"

"हा, बम्बई अच्छा लगताय, इस गांवड़ा में····"

"गाँवड़ा ई सही, जिदर अपन रैता हे उदर तो···"

"मुजकू कुच बी नई मालूम। हम नई जानता।"

"सोच ले," निहोरे के स्वर में वंशी ने कहा।

"मुजकू कुच बी सोचने का नई," लौटकर रत्ना ने जवाब दिया।

"तू तो पड़ेला-लिखेलाय, रत्ना।"

"ये बुराई नई हे।"

"क्या ?"

"ये के·······" बिगड़कर रत्ना खिड़की के बाहर समुद्र की तरफ झाँकने लगी। उस समय समुद्र की तरफ से फ़र्राटे की हवा आ रही थी। बाहर आसमान में बादलों के टुकड़े चल रहे थे। समुद्र की लहरों में अनादि काल की उथल-पुथल मच रही थी। दूर मछुओं की नावें समुद्र की छाती पर पाल ताने तैर रही थीं। उन पर बैठे पक्षी उड़ते और फिर आ बैठते। सब-कुछ वही पुरानी बातें। किन्तु रत्ना का मन बम्बई के वैभव के लिए छटपटा रहा था। माणिक उसके मन में इतना नहीं था जितना इस मोहमयी नगरी के सौन्दर्य का प्रलोभन। उसे लगा केवल माणिक के साथ ब्याह होने पर ही वह नया अज्ञात सुख पा सकेगी। बरसोवा का जीवन, वहाँ के निवासी जैसे जंगल के रहने वाले हों। विज्ञान के इस चमत्कार में भी हम लोग आदिम रूप से आगे नहीं बढ़े हैं। वही पुराना मछली मारने का काम। वही पुराना रहने का ढंग। पुराने मकान, पुराने विचार, पुरानी बातें। उसने इतना पढ़ा है तो क्या माँ की तरह मछली मारकर मार्कीट में जाकर बेचने के लिए। ये बड़े आकाश चूमने वाले मकान, उनका वैभव, रहन-सहन का ढंग, मोटर, गाड़ी, हवाई जहाज, सिनेमा, बागों की सैर, नये-नये फैशन के कपड़े। ये एक-से-एक सुन्दर गहने, जिन्हें पहनकर कुरूप भी सुन्दर लगने लगें, क्या उसके लिए नहीं हैं? उस दिन माणिक के कमरे के साथ दूसरे कमरे में एक बीमार को देखने मोटर पर बैठकर डाक्टर आया तो उसे कितना अच्छा लगा। चमकती हुई दवा की शीशियाँ, रबरबाटल, थर्मामीटर, पास ही मेज पर रखा हुआ गुलदस्ता, स्प्रिंगदार गद्दे पर बिछी सफेद चादर पर बीमार को पड़े देखकर उसे भी एक बार बीमार पड़ने की इच्छा हुई थी। उसी बीमार औरत की लड़की जो कहीं टाइपिस्ट का काम करती है कितने चटकदार अँग्रेजी ढंग के कपड़े पहनती है, उसके बॉब्ड हेयर, मुँह पर लिपस्टिक, पाउडर, नेल पेन्ट से रंगे नाखून, नंगे हाथ उसे कितने अच्छे लगे। अपने दोस्त से हँस-हँसकर उसका बातें करना, फिर अट्टहास कर उठना, उसे कितना अच्छा लगा था और उस दोस्त के साथ वह सीढ़ियों से खट-खट करके फुदकती नीचे उतर

गई थी। दरवाजे पर ही टैक्सी में दोनों एक-दूसरे की बगल में बैठकर मीठे सपनों की तरह उड़ गए। यह उसे कितना अच्छा लगा था। शाम के समय बरसोवा में जब कि सुनसान होता है, लोग चुपचाप होटल में, घरों में बैठकर बीड़ी पीते हैं तब मलाबार हिल, गेट वे ऑफ इण्डिया, चौपाटी, जुहू, मैरीन ड्राइव पर स्त्री-पुरुषों का हजूम नये-नये कपड़े पहन-कर लकदक मोटर में और पैदल सैर करता है, मानो स्वर्ग से देवता उतर आये हों, मानो रूप, सौन्दर्य, कामदेव अपनी सेना लेकर घूम रहा हो! कितना जीवन है कितना रंग है! कितना वैभव! "मैं यह कैसे पाऊँ?"

'माणिक के साथ शादी' उसके भूखे मन ने उत्तर दिया। रोज अँधेरी में स्कूल जाते हुए पहले उसे यह सब नहीं सूझा। बरसोवा एक-दम पुराना गाँवड़ा है। यहाँ के रहने वाले अनकल्चर्ड पुराने दकियानूसी विचार के हैं। माणिक के साथ सिनेमा-घरों की चहल-पहल ने उसकी आँखें चौंधिया दीं। वह भूल गई कि इस दुनिया के अलावा और भी कोई अच्छी दुनिया हो सकती है। माणिक के साथ किसी होटल में बॉल डान्स देखकर तो वह विस्मित, चकित, भ्रमित-सी रह गई। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले नाच रहे थे, चिपटे-चिपटे। कहाँ यह, कहाँ बरसोवा!

उसके मन में बरसोवा के प्रति भयंकर विरक्ति व्याप्त हो गई। उसे लगा जैसे वह जीवन कितना आनन्दमय है, कितना विलासमय है। एक तरफ बाजे बज रहे हैं, दूसरी तरफ नाच! उसकी आँखें खुल गईं। उसे विश्वास न हुआ इसी बम्बई में यह भी है। रत्ना जैसे आश्चर्य में खो गई।

इसी समय वंशी ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर पूछा—

"क्या सोचताय रत्ना?"

रत्ना ने स्वप्न देखते हुए उत्तर दिया—

"मा, ओई जो अब तलक नईं देखा-सुना था।"

"पागल छोकरी, अबी से सपने देखने लगाय?"

रत्ना स्वप्न-लोक से इस लोक में आई तो देखा वही छोटा पुराना

कमरा है जिसमें खिड़की के सहारे वह खड़ी है। चटाई टूटी हुई, झूला गन्दा मैला, पुरानी रस्सियों का, मिट्टी, लोह चीनी के बरतन, सब-कुछ उबकाई ला देने वाला। मां वही पुरानी मैली साड़ी पहने है। सांवला रंग, चिपटी नाक, पिचके गाल, पीलापन लिये मुँह, कान में सोने की गाँठें, वही पुरानी बेढंगी बातें।

उसे अपने पर भी विरक्ति हो आई। कैसे घर में उसने जन्म लिया! उसकी उंगलियाँ उस टाइपिस्ट लड़की से कितनी मोटी हैं, कितनी काली हैं, कितनी भद्दी बेडौल! 'तो क्या वह भी वैसी ही सुन्दर नहीं बन सकती?' उसके मन ने प्रश्न किया—

क्यों नहीं बन सकती! सभी तो जितनी दीखती हैं उतनी सुन्दर नहीं होतीं। जरूर ऐसी चीजें हैं या होंगी जिनसे उसका रूप भी निखर सकता है। उसका जी उन चीजों को पाने को लालायित हो उठा। बर-सोवा में यह सब नहीं हो सकता।

मां बक-झककर बाहर किसी काम से चली गई थी। वह खिड़की से हटकर छोटे-से शीशे के सामने जा खड़ी हुई। शीशा छोटा था, पुराना लकीरें पड़ा हुआ, तेल से मैला।

"एक बड़ा शीशा भी नहीं है इस घर में। यह घर है!" उसे घर की सभी चीजें नाचीज़ और निकम्मी लगने लगीं। फिर भी उसने उसी शीशे में अपना मुँह देखा। बुरा नहीं लगा। पाउडर लगाने पर उसका चेहरा और भी अच्छा लग सकता है। लिपस्टिक से उसके होंठ लाल हो सकते हैं। काला रंग हल्का भूरा बन सकता है। क्रीम से हाथों की उंगलियाँ मुलायम हो सकती हैं। उसे भी गाना सीखना होगा। हो सका तो नाचने का अभ्यास भी वह करेगी। वह अपने चेहरे का एक-एक भाग गौर से देखती रही। उसे अपनी सखी सारिका याद हो आई। उसका मुँह निश्चय ही रत्ना से साफ है। पतले होंठ, उभरे हुए गाल, पतली नाक, घनी काली भौंहें। छोटी पर रसदार आँखें। उसकी आँखों से मुकाबिला करने पर उसे अपनी आँखें ही ज्यादा अच्छी लगीं। 'कितना रस है इनमें। माणिक ने इनकी कितनी बार तारीफ की है। तो क्या सचमुच मेरी आँखें ऐसी हैं? उसने अपनी आँखों की लम्बाई, चौड़ाई,

गहराई, मादकता को परखा। शीशा हाथ में लेकर मुँह पर हाथ फेरा। गालों को छुआ, दाँत देखे। उसे लगा दाँत उसके सफेद नहीं हैं। वे बेढंगे और पीले हैं। उसे दुख हुआ। नीचे मसूड़े का मांस मोटा और काला है। माथा भी कम चौड़ा है। अपना रूप देखकर वह विवशता का अनुभव करने लगी। उसने शीशा ताक में रख दिया और उदास-सी लौटकर खिड़की पर खड़ी हो गई।

बाहर यशवन्त जाल लिये किनारे की ओर जा रहा था—बनियाइन पहने, रूमाल बाँधे, अपने काले शरीर से जाल उठाये। उधर से इट्ठा मछलियों का टोकरा सिर पर उठाये आ रही थी। सामने की झोंपड़ी में बैठी एक बुढ़िया चावल बीन रही थी। नंगे-धड़ंगे दो बच्चे उसीके पास बैठे बाँस के टुकड़ों की नावें बना रहे थे। पर नाव किसी तरह बन नहीं पा रही थी। गली में चिउड़ा, भजिया बेचने वाला एक आदमी चिल्ला रहा था। उसके खोमचे में एक बूढ़े की लकड़ी लग गई थी। इसके साथ कुछ लोग भीड़ में दोनों का बीच-बचाव कर रहे थे। दूर किनारे की नावों पर मछुए गुट बनाकर बैठे थे। रत्ना यह सब ऊपरी आँखों से देखती रही। उसका मन बम्बई में दौड़ लगा रहा था। रत्ना अपने में खो-सी गई। थोड़ी देर बाद उसने महसूस किया कि कोई उसका कन्धा हिला रहा है। उसने मुँह फेरकर देखा तो सारिका उसीके कन्धे से टिकी हँस रही थी।

"आ सारिका, बहुत दिनों बाद ?"

"सुना है आजकल बम्बई के चक्कर बहुत लग रहे हैं। कोई नई बात होने वाली है क्या चुपके-चुपके ?"

"नया कुछ भी नहीं है।"

"तो कोई पुराना किस्सा छिड़ गया ?"

"पुराना कुछ भी नहीं सारिका। अरी बैठ न, ले यहाँ चटाई पर बैठ जा। हम मछुओं के यहाँ सोफा-सेट तो हैं नहीं। ले बैठ जा। कह, क्या कुछ है ?"

"बहुत दिनों से देखा नहीं था तुझे। परसों आई भी, तू मिली ही नहीं। वंशी मां ने कहा बम्बई गई है। क्यों, कोई प्रेम-वेम की बात है

क्या ? या किसी को फाँस रही है।"

"फाँस रही हूँ, या फँस रही हूँ," रत्ना एकदम अट्टहास करती हुई बोली।

"यानी ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं। वह तो मज़ाक था।"

"सच बता।"

"सच क्या बताऊँ ?"

"क्यों क्या ब्याह हो रहा है ?"

"तू बता, तेरा क्या हाल है ?"

"बी० ए० में दाखिला लेने की सोच रही हूँ।"

"अच्छा तो है। कहीं नौकर हो जायगी। हमारा भी खयाल रखना भाई।"

"एक बात कहूँ रत्ना। तूने बड़ी गलती की, इम्तहान भी नहीं दिया, नहीं तो पास हो जाती। फिर साथ-साथ पढ़ते।"

"माँ ने ही नहीं माना। फिर सारिका, हम लोगों में पढ़ता ही कौन है ? मैंने जितना पढ़ा है उसके लिए ही मुश्किल हो रहा है। माँ परेशान है। बापू कहते हैं यशवन्त से ब्याह कर ले—पढ़ा न लिखा।"

"बरसोवा का।"

"हाँ।"

"देखने में बुरा तो नहीं है।"

"शायद तेरा मन ललचा उठा है। तुझे तो कोई अफसर मिलेगा, बड़ा आदमी।"

"मैं ब्याह ही नहीं करूँगी।"

"सब ऐसे ही कहते हैं।"

"देख लेना।"

"देख लेना। एक दिन बहू बनी पीछे चलती नजर आयगी।"

"नहीं रत्ना नहीं, जिन्दगी दूभर हो रही है हमारे लोगों की।"

"क्यों ?"

"बाबूजी को जो तनखा मिलती है वह इतनी थोड़ी है कि हम लोगों

का महीना भी नहीं चलता। माँ भी खीझ उठती है। बाबूजी भी परेशान हैं। दो भाई हैं उन्हें पढ़ाना तो होगा ही। फिर मुझे भी बाबूजी पढ़ाना चाहते हैं। माँ मना करती है, पैसा नहीं है। वे ब्याह पर जोर दे रही हैं।"

"फिर ?"

"फिर क्या ! कोई लड़का ही नहीं मिलता। रोज घर में झाँय-झाँय होती है। लड़ाई होती है। हम लोग पिस रहे हैं, रत्ना। तुम लोग अच्छे हो, मेहनत-मजदूरी करते हो, खाने लायक कमा लेते हो। थोड़ा खर्च, रहन-सहन सादा। हम लोगों की मुसीबत है। अच्छे कपड़े न पहनें, ठीक मकान न हो, लोगों का सत्कार न करें तो समाज में बदनामी होती है। कोई बात नहीं करता। लड़कों के दिमाग खराब हैं। चाहते हैं, ससुराल मालदार हो। लड़की को गाना-नाचना आता हो। लड़की कम-से-कम बी० ए० तक पढ़ी होनी चाहिए और नौकरी के नाम पर कुछ भी नहीं। ढाई सौ बाबूजी को मिलता है। मकान का किराया पचास है। क्या खाएँ, क्या करें ! सोचती हूँ कोई नौकरी कर लूँ, पर एफ० ए० पास को नौकरी भी कहाँ मिलेगी। टाइप सीखकर नौकरी कर लूँ, पर माँ नहीं मानती।"

"क्यों, टाइपिस्ट गर्ल्स तो अच्छा कमा लेती हैं। अभी मैंने एक लड़की देखी है, बड़ी चटकदार।"

"कोई ईसाइन होगी या एंग्लो इण्डियन।"

"पर इसमें क्या बुराई है ?"

"तू नहीं जानती रत्ना। माँ कहती है ऐसी लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं। फिर उनके ब्याह में हजार झंझट।"

"तो तू ब्याह नहीं कर रही, कर ले फिर नौकरी। वहीं किसी से ब्याह कर लेना।"

सारिका सोच में पड़ गई। आनन्द का प्रसंग विषाद में बदल गया। रत्ना जितनी सारिका के घर में सुख की कल्पना करती थी उतना उसे नहीं दीखा। उसे लगा यह क्या कह रही है। क्या सचमुच इन लोगों में दिखावा-ही-दिखावा है। असलियत कुछ और ही है।

"फिर तू कैसे पढ़ेगी ?"

"बम्बई के एक सेठ वजीफा देते हैं। एप्लाई कर रही हूँ। मिल जायगा तो पढ़ूँगी।"

"न मिला तो ?"

"आगे कुछ भी नहीं सोचा। अरी न जाने क्या पचड़ा ले बैठी। तू सुना।"

"मेरा ब्याह हो रहा है। आदमी मछली मार्कीट का आढ़ती है। एक होटल खोलने जा रहा है। बम्बई में रहता है। इन पिछले दिनों में बम्बई क्या घूमी, नई दुनिया देखी सारिका। बरसोवा तो नरक है, गाँवड़ा।"

"ओह, तो यों कह, इसी ने तुझे लुभाया है।"

"हाँ।"

"आदमी कैसा है, प्रेम हो गया है ?"

"प्रेम-वेम नहीं जानती, ब्याह हो रहा है बस।"

"बिना प्रेम के ?"

"रुपया है, ठाठ हैं, टैक्सी पर चलता है। मकान सजा हुआ है।"

"और रूप-रंग ?"

"हम मछुओं में जैसा होता है, वैसा ही।"

"यशवन्त जैसा।"

"तुझे यशवन्त भा गया है क्या ?"

"मैं अन्दाज़ से कह रही हूँ।"

"अन्दाज कुछ भी नहीं, मुझे बरसोवा से नफरत है। यहाँ के लोगों से, इस काम से नफरत है। दुनिया इतनी आगे बढ़ गई है और हम अभी तक बाप-दादों की तरह मछली मार रहे हैं। न ऊँचाई, न रहन-सहन, न कुछ और।"

"समझी।"

"भला तू ही बता। मैंने इतना पढ़ा है तो क्या इसलिए कि इस गाँवड़े के एक गँवार से शादी करूँ और मछली लिये डोलूँ ?"

"वह भी तो मछली का आढ़ती है।"

"इससे तो अच्छा है। बम्बई में तो रहता है। फिर होटल खोल

रहा है। मुझे यह पसन्द है। मैं तो····"

"रुक क्यों गई ?"

"अब तुझसे क्या कहूँ, मैं तो किसी बहुत ऊँचे से शादी करना चाहती हूँ।"

"यानी ?"

"यानी उससे···अब क्या कहूँ !"

"कह न।"

"जहाँ मैं बड़ी बनकर रह सकूँ। मोटर, गाड़ी, मकान हो। ठाठ-बाट हो। मैं भी शाम को मैरीन-ड्राइव पर घूम सकूँ। मलाबार हिल जा सकूँ। सिनेमा देख सकूँ। नौकर-चाकर हों।"

"उमंग बुरी नहीं है, रत्ना। पर ग़रीब आदमी को यह सब मिलता कहाँ है ?"

"मुझे मिलेगी।"

"तब तो अच्छा है। पर कहीं ऐसा न हो····चल, जाने दे। मैं तो तेरी मित्र हूँ।"

"तू देखेगी। चाय-वाय लाऊँ क्या ! बोल ! तुम लोगों से डर लगता है। क्या जाने न पियें। हम लोग नीच जो ठहरे।"

"नहीं ऐसी बात नहीं है। इस समय मन नहीं करता।"

"मैं जानती हूँ तू नहीं पियेगी।"

"ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे तो कोई एतराज भी नहीं है तू जानती है।"

"तो लाऊँ, इट्ठा को बुलाती हूँ। ठहर। इट्ठा, ओ इट्ठा !"

इसी समय बाहर से इट्ठा आ गई—मैली कुचैली। पसीना उसके बदन से चू रहा था। सारिका ने देखा तो मन ग्लानि से भर उठा। पर चुप रही। उसे लगा वह यहाँ फिजूल आई। वह नहीं पी सकती चाय ऐसी जगह। बोली—

"रहने दे रत्ना। चल ऐसा ही है तो होटल में चलकर पियें।"

"नहीं, घर पर ही मैं कुछ मँगा लूँगी।"

"नहीं नहीं, क्यों झंझट करेगी ? वहाँ सब मिलेगा, चल।"

सारिका ने रत्ना का हाथ पकड़ा और चल दी। रास्ते में वंशी मिली तो उन दोनों को घसीट लाई। स्वयं चाय बनाने चली गई। फिर लौटकर आई तो बोली—

"सारिका बेटी, हमारा इदर का चहा पी लेंगा?"

रत्ना ने जवाब दिया, "क्यों नहीं पियेंगी। क्या हम आदमी नहीं हैं?"

"नहीं नहीं, किसी का धरम क्यों बिगाड़ेंगा।"

सारिका चुप रही। जैसे यह एक नई मुसीबत हो। एक तरफ मित्रता दूसरी ओर ब्राह्मणत्व! रत्ना के घर में ऐसा प्रसंग पहले कभी नहीं आया था। फिर एकदम बोल उठी, "मुझे कोई एतराज नहीं है माँ।" इसके साथ ही उसके भीतर एक तरह की वितृष्णा भर गई।

रत्ना ने उछलकर उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, "मैं कहती नहीं हूँ माँ, तू जा भी।"

उसी समय बाजार से कई तरह की मिठाइयाँ मँगाकर वंशी ने सारिका को खिलाई। इसके साथ सारिका और रत्ना समुद्र के किनारे घूमने चली गई।

माणिक

सुबह की धूप में काले मेघ की तरह माणिक ने माहीम में एक मछुए के घर जन्म लिया था। उसके पैदा होने पर चौथे दिन माँ परलोक सिधार गई। नदी में प्रवाह से रगड़ खाते-खाते जैसे कई कोने वाले पत्थर गोल हो जाते हैं, वैसे ही काल की रगड़ खाकर माणिक ने खेल-कूद के साथ बोलना, बात करना सीखा। बाप उसे एक पड़ोसी के घर टोकरे में डालकर काम पर चला जाता। पड़ोसिन अपने एक और बच्चे के साथ उसे भी बचा-खुचा दे देती और पाखाने-पेशाब में सना वह शैशव के आँसुओं की वीणा पर तान और अलाप छेड़ता रहता। दिया जले जब उसका बाप बाहर से आता तो मछली के पानी से मिला भात उसको खिलाता। रात को जमीन पर पड़ा-पड़ा वह कुछ देर तो सोता और ज्यादा समय हाथ-पैर उठा-उठाकर रोता या भाग्य को कोसता रहता, जैसे वह पैरों को हिलाकर पास आती मौत को दूर हटाता रहता हो। और एक दिन जब माणिक तीन साल का था तो उसका बाप भी दो दिन के हैजे में चल बसा। वह हैजे की उल्टी और पाखाने से सने बाप की लाश के पास भी सांस लेता रहा। लड़का अब कहाँ जाय, कौन उसे सँभाले! अन्त में उसी पड़ोसिन ने उसे आधा-पेट खाना देकर जैसे-तैसे पाला। माणिक सब विषमताओं में भी बढ़ता रहा। वह चलने के साथ-साथ बढ़ा और बढ़ने के साथ उसने दुनिया देखने-पहचानने का अभ्यास किया, अपने-पराये को समझा। पर उसे लगा जैसे उसका सगा कोई नहीं है, साथी कोई नहीं है। पड़ोसिन अपने लड़के की जूठन उसे खाने को देती और न बचती तो बासी भात देकर

ही टाल देती। कभी-कभी वह दिन-दिन-भर भूखा रहता। एक दिन जब पड़ोसिन का लड़का भी मर गया तो उसने माणिक को राक्षस समझकर डंडा मारकर घर से निकाल दिया।

माणिक को फिर भी मौत नहीं आई। वह इधर-उधर टुकड़े माँग-कर खाता और कहीं कोने में रात काट देता। कोलीवाड़े का वह भिखारी धारावी जमशेदजी रोड तक घूमता-घूमता माँगने वालों के एक गिरोह में शामिल हो गया। वह रेवा किला, सालमती, धारावी, किंग्ससर्कल, मारवली, करोल, वाशी, चराई और चेंबूर तक घूम आता। लकड़ी की घिसटनी गाड़ी में एक लंगड़ा अन्धा भिखारी बैठ जाता तो माणिक उसे घसीटता एक बाजार से दूसरे बाजार तक ले जाता। शाम तक सात-आठ आने कमाकर माणिक पास के ही सस्ते होटल में खाकर कभी कहीं और कभी बाजार के फुटपाथ पर कपड़ा बिछाकर सो जाता। कुछ दिनों बाद एक मछलीमार ने उसे नाव पर नौकर रख लिया। वह दूर तक समुद्र में मछली मारने वाले मछुओं के साथ घूमने लगा। थोड़े ही दिनों में वह एक तेज मछलीमार बन गया। जब उसका मन वहाँ नहीं लगता तो किनारे पर उतारी गई मछली लेकर वह मजदूर की तरह मछली मार्कीट ले जाता। वहाँ वह मछली बेचने के ढंग देखता, भाव-ताव, मोल-तोल जानता।

कुछ दिनों के बाद उसने किनारे पर ही छोटे मछुओं की टोकरी खरीदना शुरू कर दिया और एक दिन माहिम के मछुओं ने देखा कि सोलह-सत्रह साल का माणिक मार्कीट में टोकरे बेच रहा है। अचानक मछली बेचने आए उसके पहले स्वामी ने माणिक को देखा तो पूछ बैठा—

"अरे माणिक तू इदर?"

"हा काका।"

"क्या धाप किया रे?"

"धाप आप तो क्याय, गुजारा चलताय।"

इसके साथ ही दौड़कर माणिक ने नारियल का पानी और एक बण्डल बीड़ी मांगा के सामने ला रखा। मांगा ने पानी पिया और बीड़ी सुलगाते हुए माणिक से बहुत-सी बातें कीं।

माणिक को मांगा की मछलियाँ बेचने को मिल गईं। धीरे-धीरे वह एक छोटा-मोटा आढ़ती बन गया। जिसे मृत्यु भी नहीं चाहती उसे ज़िन्दगी चाहने लगी। माणिक ने अपनी पुरानी झोंपड़ी सँभाली। उसमें भीतर पक्का फर्श बन गया। चटाई के साथ शीतलपाटी आ गई। एक स्टोव, कुछ आलमीनियम के बरतन और लालटेन से झोंपड़ी चमक उठी। चीथड़ों की जगह साफ कपड़ों ने ले ली। सिर में मांग बनने लगी। सस्ते खुशबूदार तेल से सिर चमकने लगा।

एक सवेरे जब माणिक मार्कीट जाने को तैयार था कि मांगा बीड़ी मुंह में दबाए आया। साथ में आई गूगी, उसकी औरत।

"अरे मार्कीट जाताय क्या ?"

"हा काका। आज साला उशिर (देर) हो गया। लो एक बीड़ी चलेगा न।" माणिक ने टीन की डिबिया में से एक बीड़ी निकालकर मांगा को दी और एक उसकी औरत गूगी को। खट से दियासलाई जलाकर दोनों की बीड़ियाँ सुलगाता बोला—

"एक-एक कप चहा, काका ?"

"नईं, पीकर आयाय।"

माणिक ने नहीं माना और फट से स्टोव जलाकर चाय का पानी गरम करने लगा। फिर चीनी-लगे लोहे के प्यालों में दोनों को चाय पीने को दी। मांगा ने मछली के सम्बन्ध में इधर-उधर की बहुत-सी बातें कीं और वायदा किया कि चार नई कोलिनें अपनी मछलियाँ माणिक के चबूतरे पर लाकर रखेंगी। वही उन्हें बेचेगा।

माणिक उत्सुकता से मांगा के मुँह पर आँखें जमाकर बोला—

"सबसे जास्ती दाम में न बेचा तो माणिक कू दो जूता मारना काका। ये साला लोक आढ़त में दोनों ओर से खाता है। हम मूल लेता है।"

"बुरा हालत है मार्कीट का।"

इधर-उधर की बातों के साथ मांगा और गूगी ने माणिक को घर पर खाने का न्यौता दिया और चले गए।

माणिक की निगाह से यह ओझल नहीं रहा कि मांगा क्यों खाने

पर बुलाता है।

वह शाम को गया तो उसने गूगी की लड़की को देखा। वह गदराये कटहल की तरह सुन्दर लग रही थी। गले में सीपी की माला, सोने की कंठी। नई काले किनारे की रंगीन धोती। लम्बा कद, पतला और छरहरा बदन। छोटी चुँधियाई आँखें पीलापन लिये। यौवन का संकोच। उसी ने माणिक को खाना परोसा। पूरी, कढ़ी, भात, दाल, सेव, भजिया, मछली, बरफी का एक टुकड़ा और श्रीखण्ड, यही कुछ था। माणिक को लगा जैसे वह नई दुनिया में आ गया हो। इतना स्वादिष्ट खाना उसने नहीं खाया था। उसका मन खाने के साथ बनाने और परोसने वाले पर भी ललचा उठा।

मांगा और गूगी दोनों भीतर-ही-भीतर ताड़ते एक-दूसरे से आँखों-ही-आँखों में कुछ कह रहे थे। दुर्गा ने माणिक के मना करने पर भी ढेर-ढेर परोसा। माणिक मना करने के बहाने आँख उठाकर दुर्गा को देख लेता। दुर्गा से चार आँखें होने पर उसे लगता जैसे यह परोसने वाली खाना ही नहीं दे रही है उसके भीतर एक नशा भी भर रही है और वह उसमें सिर तक डूबा जा रहा है। हर निगाह से जैसे शराब का एक झरना बह रहा है। आखिर एक बार मना करने पर उसने कहा—

"और ले न, अबी खाया ही क्याय? इतना तो हमारे इदर बच्चा लोक बी खाताय।"

"हम बच्चा नई है।"

बीच में गूगी ने कहा, "अरे ले न, दुर्गा बोलताय तो ले ले। डालेगा री……"

दुर्गा ने ढेर-सा भात थाली में डाल दिया और मुस्करा दी। माणिक हतबुद्धि-सा दुर्गा को देखने लगा। फिर मुस्कराकर बोला—

"अच्चा, हम बी कबी देखेंगा।"

"जीमना का मामला में आदमी औरत से कब्बी नई जीतेंगा।" कहकर दुर्गा भीतर चली गई। माणिक जैसे ठगा गया। बोला वह कुछ भी नहीं। गूगी और मांगा ठहाका मारकर हँस उठे।

गूगी बोली, "हमारा दुर्गा अइसा-वइसा नई है माणिक।"

जब माणिक खा-पीकर चलने लगा तो माँगा ने जोर देकर कहा—"तुम इदर ई खायेंगा माणिक।"

दूसरे दिन गूगी के साथ दुर्गा भी मार्कीट गई तो माणिक ने सब छोड़कर दोनों के लिए मिठाई और चाय मँगाई। गूगी चाय पीकर और मछली बेचने के बाद कुछ सामान खरीदने के बहाने बोली—

"हम अब्बी आया दुर्गा, तू इदर बइठ।" कहकर गूगी टोकरी छोड़कर बाहर चली गई। माणिक अपने काम की व्यस्तता से छुट्टी पाकर पैसा गिनते-गिनते दुर्गा से बोला—

"दुर्गा, आज हमारा का ओर से दावत, आने दे काकी कू।"

"हम होटल में नई खायेंगा।"

"घर तो हमारा हे नई, मग किदर से लाकर देयेंगा तुमकू ?"

"पइले घर कर ले।"

"किसी का मेहरबानी होने से ई तो होयेंगा," कहकर माणिक ने दुर्गा के ऊपर आँखें जमा दीं। दुर्गा ने मुँह फेर कर कहा, "हम क्या जानूँ।"

कहकर दुर्गा शरमा गई। उसकी उस भोली चितवन पर माणिक मन-ही-मन सोचने लगा—कहीं मांगा मान जाय तो दुर्गा मेरी है। क्यों न मैं ही कहूँ मांगा से। कहीं बुरा मान गया तो? इस 'तो' ने उसके मन में हठात् एक शंका पैदा कर दी। फिर भी उससे रहा न गया तो जरा पास खिसककर इधर-उधर देखता बोला—

"हमारा मन में न जाने क्या होताय !"

दुर्गा भोलेपन से पूछ बैठी, "क्या ?"

"बोलने की बात नई हे। तू ई जान ले। क्या तुजकू कुच नई होताय ?"

उसने मुँह फेरकर कहा, "ना जाने क्या बोलताय, हम क्या जानेंगा ?"

इसी समय दो-एक और टोकरी वाली आ गईं। दुर्गा को वहाँ बैठे देखकर बोलीं—

"गूगी किदर गया री ?"

"बाजार।"

माणिक ने मछलियाँ देखीं और दाम तय करके बोली बोलने लगा। थोड़ी देर में एक गाहक आकर टोकरियाँ ले गया। माणिक फिर आवाज़ लगाने लगा, बोली बोलता रहा। बीच-बीच में निगाह बचाकर वह दुर्गा को देख लेता। माणिक ने देखा, जब वह दुर्गा की तरफ देखता है उससे पहले दुर्गा उसी को देखती है। ऐसा कई बार हुआ। माणिक का शंकाशील मन स्वस्थ हुआ और उसे लगा दुर्गा भी उसे चाहती है।

शाम को मांगा से मिलकर वह पूछ बैठा, "काका, पन रोज तुमारा इदर खाने कू नीट नई जमता। सोचताय घर बसे तो......"

"हा हा क्या हरज माणिक।"

"पन हम तो छोटा हैं। बात कइसा करेंगा। ना जाने कोई क्या समझेंगा ?"

"हम बात करता है।"

ग्रुगी की निगाह में एक और मालदार घर का लड़का था। मांगा के पूछने पर उसने मना कर दिया। उधर दुर्गा को माणिक बुरा नहीं लग रहा था। माँ से बातों-ही-बातों में उसने पूछने पर अपनी स्वीकृति दे दी।

मांगा का आग्रह था माणिक बुरा नहीं है। कमाता, खाता है। गरीब है तो क्या, किसी दिन काम करते-करते मालदार भी हो सकता है। फिर मुहल्ले का लड़का है। वैसे मांगा के और भी बच्चे थे। वे सब दिन-भर धूल में लोटकर बड़े हो रहे थे। जितना ही मांगा ब्याह की बात चलाता उतना ही ग्रुगी का आग्रह बढ़ता जाता। वह कहती—

"अपने यहाँ लड़की पर रुपया मिलता है तो क्यों न रुपया लिया जाय। बिना रुपया हम लड़की नहीं देंगे। हमारी कमाऊ लड़की है।"

मांगा का मत इसके विपरीत था। घर में खूब झगड़ा होता। एक दिन मांगा ने माणिक से दुर्गा के ब्याह की बात कह ही तो दी। माणिक का उन्मादी मन नाच उठा। उसने मांगा के पैर पकड़ लिये और धूमधाम से माणिक का ब्याह हो गया। मांगा ने कुछ नकद और गहने-कपड़े दिये; और भी दिया।

इस तरह माणिक का घर बस गया। भिखारी माणिक मुहल्ले में

अकड़कर चलने लगा। मांगा ने एक नाव भी दी थी। उसे दुर्गा के मना करने पर भी माणिक ने बेच दिया और रुपये खड़े करके मार्कीट में बड़ी जगह ले ली। जहाँ इससे उसका धन्धा बढ़ा, वहाँ नाव बेचने के कारण वह मांगा के मन से उतर भी गया। नाव बेचना कोलियों में कंगाली, दिवालियेपन की निशानी है। अशुभ तो होता ही है। दुर्गा, गूगी, मांगा सबने इसका बुरा माना। पर माणिक बिना परवा किये वैसे ही अकड़कर चलता रहा। इस बात पर उसने दो-एक बार दुर्गा को पीटा भी। और एक दिन दोपहर को दुर्गा माणिक का घर छोड़कर चली आई। किसी तरह लोगों के बीच-बचाव करने पर माणिक खुशामद करके दुर्गा को फिर ले गया।

माणिक स्वभाव से अकड़बाज था। स्वार्थ के लिए वह झुकता और काम निकलने पर बाँस की तरह फिर सीधा हो जाता। इधर दुर्गा का स्वभाव भी कम उग्र नहीं था। वह चोट-खाई साँपिन की तरह मार खाकर फुंफकारती रही। इन्हीं दिनों माणिक में शराब पीने की लत भी जोर पकड़ गई। वह हर रात शराब के नशे में धुत्त घर लौटता और खूब जोर-जोर से जो जी में आता बकता और गालियाँ देता; मार-पीट करता। गर्भिणी दुर्गा ने अब बात करना छोड़ दिया था। गूगी के द्वारा रखी एक बुढ़िया ही घर का सब काम करती थी।

एक दिन बकता-झकता माणिक जैसे ही घर में घुसा तो उसने दुर्गा को सोते हुए पाया। शराब के नशे में माणिक ने कसकर एक लात जमाई और बोला, "हरामजादी नबाब हो गयाय। जैसे हम इसके बाप का नौकर हूँ। उठ साली।"

नौकरानी को उसने गाली देकर निकाल दिया। दुर्गा के क्रोध का पारा बढ़ रहा था। उसने चूल्हे की जलती लकड़ी उठाकर माणिक के ऊपर तड़ातड़ बरसाना शुरू कर दी। कपड़े तो उसके सब पहनने के जले ही इससे उसका नशा भी हिरन हो गया। कई जगह से वह जल भी गया। माणिक ने महिम के समुद्र-तट पर पड़े रहकर रात गुजारी। इधर दुर्गा के पेट में चोट के कारण थोड़ी देर में ही खून के फव्वारे छूटने लगे। सारी झोंपड़ी खून से भर गई। आधी रात को पड़ोसिन जो

बाहर निकली तो देखा झोंपड़ी का दरवाजा खुला है। भीतर लालटेन जल रही है। दुर्गा कराह रही है। सारी झोंपड़ी में खून बह रहा है। चौंकनी-सी बाहर गई और जाकर गूगी को खबर की। इलाज के लिए डाक्टर को बुलाया गया और सवेरा होते-होते दुर्गा को अस्पताल में दाखिल करा दिया गया।

जब सवेरे माणिक ने सुना तो उसे बहुत दुख हुआ। अस्पताल में दुर्गा अभी तक बेहोश पड़ी थी। खून नहीं बन्द हो रहा था। गूगी व मांगा ने उसे देखकर घृणा से आँखें फेर लीं। तो भी वह दुर्गा के पास डटा खड़ा रहा। आँखों में आँसू भरे वह उसे देखता रहा। थोड़ी देर बाद नर्स ने आकर उसे हटा दिया। वह बाहर खड़ा रहा। बिना खाये-पिये उसे शाम हो गई। रात हुई। मांगा घर से खाना लाया। गूगी ने उससे खाने को कहा तो बोला—

"हम दुर्गा का साथ जीयेंगा और उसीका साथ मरेंगा। जब तलक यह ठीक नई होनाय तब तलक खाने का क्या बात, पानी बी नई पीयेंगा।"

नर्स से बात करने पर उसे मालूम हुआ खून बन्द हो रहा है; उम्मीद है ठीक हो जायगी। माणिक दिन-रात दुर्गा के सिरहाने डटा रहा। जब दुर्गा आँख खोलती तो चुपचाप रो पड़ता। जैसे उसकी आँख का प्रत्येक आँसू अपने अपराध की क्षमा माँग रहा हो। स्वयं दुर्गा को जब यह मालूम हुआ कि माणिक ने पिछले कई दिनों से खाना नहीं खाया तो उसने माणिक के कन्धे पर हाथ फेरते हुए समझाया, पर माणिक टस-से-मस नहीं हुआ। उसने नहीं खाया तो नहीं खाया। केवल पानी पी लिया। उसकी दशा और तत्परता देखकर गूगी और मांगा के मन का मैल धुल गया। वे भी उसे प्यार करने लगे। मांगा के चले जाने पर उसने गूगी को विदा कर दिया और उसकी सेवा में लग गया।

एक दिन दुर्गा ठीक हो गई तो माणिक टेक्सी में बैठाकर उसे घर लाया। पिछले पन्द्रह दिनों तक न तो उसने मार्कीट का मुँह देखा, न नहाया, न कपड़े ही बदले थे। उसने गूगी को खर्च करने को मना कर दिया और अपने-आप सारा खर्च किया। कमजोरी की हालत में दुर्गा को वह कोई काम न करने देता। सुबह-शाम उसे समुद्र के किनारे

घुमाता। कभी-कभी बम्बई सैर को ले जाता। नये-नये सुन्दर फूलों की माला, वेणी के फूल, गजरों से रात को उसे सजाकर सुलाता। एक दिन मार्कीट से लौटता हुआ माणिक रेशमी साड़ी ले आया और बोला—

"दुर्गा, देख कैसाय, परी सा लगेंगा।"

दुर्गा ने लेटे-ही-लेटे कागज में लिपटी साड़ी खोली और देखकर मुस्करा दी। माणिक ने झुककर दुर्गा का मुँह चूम लिया। दुर्गा ने दोनों हाथ गले में डालकर उसे अपनी ओर खींच लिया।

"ये फूल बी, गजरा बी, वेणी बी, साड़ी बी पहन अब्बी हम लोक घूमने चलेंगा।" नौकरानी को आवाज देकर उसने चाय बनवाई और दोनों पीकर घूमने निकल गए।

थोड़े दिनों में दुर्गा पहले से भी ज्यादा स्वस्थ हो गई। अब जब वह हँसती तो चेहरा लाल हो जाता। आँखों में पहले से अधिक मस्ती छा जाती। बदन में कसकसाहट आ गई। धीरे-धीरे घर का काम भी खुद देखने लगी। वैसे कुछ काम था भी नहीं। नौकरानी थी ही। दिन-भर इधर-उधर घूमती। माणिक सवेरे उठकर मार्कीट चला जाता और शाम को लौटता।

उस रोज शाम को जो माणिक आया तो उसके साथ छरहरे बदन का एक गुजराती युवक भी था। घुँघराले बाल, ऊँचा माथा, उभरी ठोड़ी, पतले होठ, आँखें तेज पर छोटी। रेखें फूट रही थीं। रंग गोरा, चुलबुला और बातूनी। आते ही माणिक बोला—

"दुर्गा, ये हमारा दोस्त कान्तिलाल, भीमसी चम्पकलाल कम्पनी में काम करताय।"

यह पहला ही अवसर था कि इस तरह का कोई आदमी कोली बाड़े में इतने पास से दुर्गा ने देखा हो। वहाँ तो काले, मैले-कुचैले, आदमियों-औरतों का साम्राज्य था। दुर्गा ने चाय अपने हाथ से बनाई और चटाई बिछाकर प्याले सामने रख दिए तो कान्तिलाल बातों की झड़ी लगाता बोला—

"हमारा मालिक भीमसी भाई दाँत से चाय पीता है। बड़ा मुनीम होठ से गाठिया तोड़ताय। हमकू दोनों का तमाशा सारा लगताय।

एक दिवस एक साब का आने पर जो चाय आया तो दोनों का ए तमाशा देखकर श्री हँसने लगा। उसकू इतना हँसी आया कि चाय का फव्वारा छूटा। आखा कपड़ा खराब हो गया। आन ए, भीमसी का ऊपरी होंठ कटा हे और बड़ा मुनीम कू दाँत नई हे। एक नाक से बोलता हे। बीजा फप्-फप् करके, समझ कुछ नहीं पड़ताय। जब हम नोकरी किया तो बह्वा दिवस कुधी किसी का बात नई समझा। ए लोको पाँच बोले तो हम सात समझूँ। एक दिवस बड़ा मजा पड़ा। दोनों हिसाब का मामला में बात करता-करता लड़ पड़ा तो भीमसी बोला—

'फूल्फन फाई, फारो फिसाव मारी फमज माँ बरोवर फड़तो न थी।' (कुन्दन भाई, तेरा हिसाब हमारी समझ में नहीं आता।)

'नई फँरने फँर बी और फूँ आने का।' (नहीं करोगे तो मुझे और को बुलाना पड़ेगा।)

बड़ा मुनीम बोला—

"हँम कांम तो नींट करतांय तुम एंम कैंम बोलता हे, भींमसी भाँई?'

"फो फिमाव फन फो फरोफर फँफँने फान ना।' (तो हिसाब तो बरोबर मिलने का न।)

बड़ा मुनीम बड़बड़ाता बोला—

'अमने मूँ बोलें नेका चला जायेंगा।' "

कान्तिलाल ने वैसा ही मुँह बनाकर जो बात की तो दुर्गा हँसती-हँसती लोट-पोट हो गई। माणिक के भी पेट में बल पड़ गए। कान्ति लाल बिना हँसे नक़ल उतारता चला जा रहा था। बोला—

"जब हम पेला दिवम गया तो वन्नेड का तमाशा ही देखता रहा। हम बोला, पगार न मिलने पर बी हम इदर काम करेंगा। मजा हे मजा। कुच दिवम तक किसी का बात समझ नहीं पड़ा साला। हम गुजराती औ वन्नेउ काठियावाड़ी ठेठ सौराष्ट्र का। दिन में दस बार लड़ता। दस बार मेल करता। भीमसी भाई दिन-भर पगड़ी कसता रहताय। न जाने क्यों उसकू लगता हे पगड़ी टीक नई हे और कुच कुन्दन भाई धोती बाँधना रहता हे। एक दिन दोनों कू कहीं जाना था। भीमसी भाई ने

पगड़ी कसकर बाँधना शुरू किया अने कुन्दन भाई धोती कसने कू जुटा। पन न उसका पगड़ी बाँधने सका और न ए इसका धोती। बन्नेउ पहलवान का माफिक पगड़ी और धोती से लड़ता रहा। कुन्दन भाई जो धोती बाँधकर चला तो पीछे से उसका लांग निकल गया। उदर भीमसी का पगड़ी निकल गया तो बन्नेओं ओई जागा बाँधने कू जुट पड़ा। भीमसी वापिस आया अने जब्बर करके पगड़ी बांधा अने कुन्दन भाई ने पाछा आवी ने धोती बाँधा। भीमसी बोला, 'फुन्दन फांई जल्दी कर न। फेंर फोंने सें कांम फैसे फोयेगा ?' तो कुन्दन बोला—

'मूँ करियें भीमसीं भांई, धोंती साला बँधान में आंती नांई।' "

दुर्गा माणिक दोनों हँस रहे थे। हँसी थी कि रुकने का नाम नहीं लेती थी। आखिर दुर्गा जो हँसती-हँसती लोटी तो सारी चाय बिखर गई।

कालि बोला—

"हमारे भीमसी भाई के यहाँ एक बार चाय फैल गई तो भीमसी चिल्ला पड़ा, 'फले फुन्दन फाँई फोंय फँफरा बी गई फें।' और लगा हाथ से बटोरकर प्यालों में डालने, पर भला चाय भी कहीं ऐसे उठता है। जब न उठा तो कुन्दन लगा जमीन पर पड़ी चाय को फूँक-फूँककर पीने। और बोला, 'फफफाँन का फँरसाद छे फुन्दन फाँई।' इसी समय झुकने पर लांग खुल गई तो एक हाथ पीछे करके लांग खोंसने लगा और मुँह झुकाकर चाय की चुस्की लेता रहा।

कुन्दन ने इस पर कहा—

'अरे अंष्ट हें अंष्ट भीमसी भांई।'

भीमसी ने बिल्ली की तरह मुँह उठाकर कहा—

'फीनी फिली है फानक्ते फो। फाफन का फयाना फे फीमची फाई।' "

हँसते-हँसते रुककर बिना बोले हाथ जोड़ती दुर्गा ने इशारा किया, बस करो, बस करो।

माणिक से न रहा गया तो उठकर बाहर चला गया। पहले हँसी फिर खांसी। जैसे-तैसे कान्तिलाल ने बोलना बन्द किया। पर दुर्गा को कान्तिलाल की सूरत देखते ही फिर हँसी फूट उठी। माणिक चुप हो

चुका था। माणिक ने कहा—

"बाहर जा न।"

दुर्गा बाहर चली गई।

माणिक बोला—

"कान्तिलाल, तूने तो मजा कर दिया यार।"

"अभी क्या है, पूरा महाभारत सुनो तो मजा आवे।"

दुर्गा बाहर ही हंस रही थी।

माणिक ने कहा, "बस कर, हमारा औरत का बुरा हाल होताय।"

बहुत देर बाद दुर्गा आकर सीधी रसोई से चाय बनाकर लाई। सब ने मिलकर चाय पी।

रात को दुर्गा ने कहा—

"ये कान्तिलाल भी खूब आदमी है। किदर रहताय?"

"माटुंगा।"

"औरत बच्चा तो होयेंगा।"

"गुजरात के गाँव में है। अभी शादी हुआ है।"

दुर्गा चुप हो गई।

"कैसा है कालि?"

दुर्गा ने कोई उत्तर न दिया। माणिक ने उसकी बहुत खूबियाँ बखानीं और बोला—

"ये पहले गिरहकट का काम करता था, बम्बई में। फिर इसका बाप ले गया। पढ़ाया, लिखाया अब नोकर है।"

एक दिन दोनों शराब पीकर लौटे। आते ही माणिक ने भजिया चाय की आज्ञा दी। दौड़कर वह सारा सामान लाकर भजिया चाय बनाने लगी। पर माणिक में इतना धीरज कहाँ। उसने बार-बार कान्ति के सामने उसे डाँटा। दोनों बोतल खोलकर शराब पीने लगे। माणिक से न रहा गया तो गालियाँ देते हुए दुर्गा को लात-थप्पड़-घूँसा मारना शुरू कर दिया। दुर्गा ने माणिक को हटाना चाहा तो वह गिर पड़ा। उठते ही उसने दुर्गा को फिर मारा। कालि बीच-बचाव करने आया तो माणिक उससे भी लड़ने लगा।

"तू शाला हमारा औरत कू ताकताय कान्ति का बच्चा। मार डालूँगा साला।"

"कालि भी बकता-झकता माणिक से लिपट पड़ा। दुर्गा को और कुछ नहीं सूझा तो उसने दौड़कर कान्ति को अलग कर दिया और उसे चटाई पर लिटा दिया। फिर माणिक को पकड़कर झूले पर लिटा दिया। पहले दोनों बातों-ही-बातों में लड़ते रहे फिर बेहोश हो गए। जब दुर्गा भजिया चाय बनाकर लाई और उसने संकोचवश डरते-डरते माणिक को उठाकर बैठाया तो वह फिर लेट गया। कान्ति को उठाकर चाय, भजिया उसके सामने रख दी। वह चुपचाप चाय पीने लगा और वहीं लेट गया।

उस रात दुर्गा का मन काफी खिन्न था। इसी समय उसे लगा कि किसी ने झोंपड़ी के किवाड़ खोले हैं। वह उठी तो देखा कान्ति बाहर जा रहा है। मन में आया कि कह दे—यहीं सो जा, पर जैसे मूक हो गई। उससे कुछ भी नहीं कहा गया। कान्ति दूर जा चुका था। गली में कुत्ते भोंक रहे थे। वह चुपचाप आकर लेट गई। वह कब सो गई, यह उसे याद नहीं रहा।

दूसरे दिन अंधेरे जब माणिक उठा तो देखा कान्ति की जगह दुर्गा चटाई पर सो रही है। उसने चुपचाप इधर-उधर निगाह डाली पर कान्ति कहीं भी नहीं था, उसकी चप्पल भी नहीं; केवल थोड़ी सी शराब के साथ बोतल खुली पड़ी थी। प्याला और सोडे की बोतल औंधी पड़ी थीं। निद्रा के वशीभूत दुर्गा का शरीर करवट लिये सिकुड़ा पड़ा था। धोती जांघ तक ऊँची हो गई थी। एक हाथ सिर के नीचे और दूसरा जांघ तक फैल रहा था। वह उठा और करवट बदले पड़ी दुर्गा का मुँह देखने लगा तो देखता रहा। रात की घटनाएँ उसके चेतन मन से बाहर होकर न जाने क्या करती रहीं, क्या खेल खेलती रहीं, यह वह दुर्गा के चेहरे से भी न पढ़ सका। शराब की खुमारी से उत्पन्न शिथिलता के साथ उसमें बेचैनी बढ़ने लगी। कुछ भी न जान पाने के कारण क्रोध उभरा। कटुता बढ़ी। उसे लगा जैसे कान्ति यहीं सोया इस दुर्गा के पास और उठकर चल दिया। हो सकता है कि दुर्गा ने ही उसे चुपचाप जाने के

लिए कह दिया हो। उसके मन में शंका की लहरें उठने लगीं। उसे दुर्गा पर विश्वास था, पर कान्ति पर नहीं। वह झूले पर आ बैठा और मुँह लटकाए सोचने लगा। धीरे-धीरे खुमारी बढ़ने के कारण फिर झपकी आ गई और वह बची-खुची शराब पीकर फिर सो गया।

जब हम किसी के सम्बन्ध में पूरा नहीं जान पाते हैं तब सन्देह पैदा होता है। ज्ञान और अज्ञान दोनों की कड़ियों में सन्देह झूमने लगता है। सन्देह की आँखों से बुराई और क्रोध जागता है। वह अच्छे-से-अच्छे मनुष्य में अपनी कल्पना में अवगुण खोज निकालता है। माणिक में भी यही शंका-बीज फूटकर अंकुराने लगा।

दुर्गा जब जागी तो उसने देखा माणिक सो रहा है। पर उसे लगा उसका कपड़ा उघड़ गया है। उसने साड़ी ठीक की और उठ बैठी। माणिक पड़ा सोता रहा।

जब माणिक की आँख खुली तो सवेरे के दस बज गए थे। वह चुप-चाप उठा और कपड़े पहनकर बाहर चल दिया। दुर्गा ने चाय बनाई; वह भी वैसे ही रखी रही। खाना बनाया; वह भी वैसे ही पड़ा रहा। उसने स्वयं खा-पीकर ढककर रख दिया और पति की प्रतीक्षा करने लगी। रह-रहकर पति का मौन उसे अखरने लगा। न जाने क्या बात है? कहाँ गया? सवेरे उठकर बोला भी नहीं। आखिर मेरे बाद ही तो उठा है। दिन-भर बेचैनी में इधर-उधर घूमती रही। फिर उसे ध्यान आया, माणिक जो सवेरे ही उठकर बिना बोले चला गया इसमें क्या भेद होगा। क्या उसे शक हो गया है? क्या उसने कुछ देखा? पर कान्ति तो उसके सोते रहने पर ही चला गया था। नहीं यह नहीं हो सकता। उसने कुछ किया भी तो नहीं है। वह निर्दोष है। मुमकिन है माणिक की तबियत खराब हो और किसी जरूरी काम से बाहर उठकर चला गया हो। यह शराब कितनी बुरी है! व्यर्थ ही वह और कान्ति लड़ पड़े। पड़ोस की एक औरत आकर बैठ गई। वह उसीसे बातें करने लगी। बच्चे खेल रहे थे; वह उन्हें देखती रही। उसने सोचा यदि माणिक उसे लात न मारता तो आज उसके भी एक बच्चा होता। मन दूर-दूर तक दौड़ता रहा। उसका शरीर बिस्तर पर ही पड़ा उधेड़-बुन में लगा रहा।

शाम को वह माँ के यहाँ चली गई। उस समय बाप मछली लेकर समुद्र से लौट रहा था। कई लोग बाहर से लौट रहे थे। घरों में कोयले का धुआँ फैल रहा था। झोंपड़ी के बाहर आँगन में बैठे लोग बीड़ी पी रहे थे। बच्चे बाहर गलियों में नंगे-धड़ंगे कुलाचें मार रहे थे। औरतें कोई बम्बई से और कोई पास से ही साग-भाजी मछली-चावल बेचकर लौट रही थीं। वह मां के पास बैठी रही। इसी समय और भाई-बहनों ने आकर उसे घेर लिया। वह बातों में लग गई। उस दिन गूगी बम्बई से कुछ कपड़े लाई थी। उसने उनको लाकर उसके सामने रख दिया। छोटी बहनें गुड़िया-खिलौने और लड़के बल्ले-गेंद अपने छोटे आंगन में खेलने लगे। एक ने जो गेंद जोर से मारी तो सामने रखे घड़े में जा लगी। उसका पानी हलहल करके बह गया। दूसरे की गेंद पड़ोस की झोंपड़ी पर जा गिरी और उस घर के लड़के ने उठा ली। जब वह माँगने गया तब तक दूसरा लड़का गेंद लेकर बाहर भाग गया। थोड़ी देर में गाली गलौज हो उठी। पड़ोसिन लड़के की शिकायत लेकर आ गई कि गेंद उसके घर गिरी ही नहीं, छाँगा वैसे ही गाली दे रहा है। बात बढ़ी और दोनों में तू तू-मैं मैं हो गई। मांगा ने बीच-बचाव किया तो पड़ोसिन का मालिक बीड़ी पीता आ निकला। इस तरह बहुत देर तक चिल्ल-पों मची रही।

दुर्गा अपने घर लौट आई। पर माणिक अभी तक नहीं आया था। दरवाजे का ताला खोलकर दुर्गा ने लालटेन जलाई। काफी रात बीतने पर भी माणिक नहीं आया। दुर्गा की बेचैनी बढ़ी। वह उठकर माँ के पास गई, उससे दिन-भर का समाचार कहा। बाप रात को मछली मारने समुद्र में चला गया था। कुछ भी न हुआ।

"आ जायेंगा दुर्गा, इन छोकरों का नाक पर गुस्सा रेता हे। तेरा बाप भी कम गुस्सा नईं करता था। रोज मुजकू मारता था। अबी टीक हो गया हे।"

"नईं मां, अइसा न हो ओ नईं आवे।"

"नई आयेंगा तो किदर जायेंगा छोकरी? तू क्यों फिकिर करताय? जा सो जा। घर अकेलाय।"

दुर्गा उदास मन लौट आई और बिना खाये पड़ी रही। दरवाजे के किवाड़ भिड़े थे। लालटेन जल रही थी। कमरे में हलके प्रकाश की तरह उसका मन धुँधिया रहा था और कभी-कभी लगता कि समुद्री हवा से हिलते हुए खूटी पर टंगे माणिक के कपड़े उसे कह रहे हों कि 'माणिक अब नहीं आएगा।' पर लालटेन की बत्ती जलकर उसके जी में हलका प्रकाश भर रही थी। कोने में बैठा अन्धेरा उसे अपनी ओर बुलाता और कहता कि 'लालटेन जलाकर तूने मेरा अपमान किया है। मैं तुझे देखूँगा। तुझ पर छाकर तुझे अपने जैसा न बना दूँ तो कहना।'

इसी समय छिपकली की चीं-चीं सुनाई दी। उसने ऊपर को देखा तो एक दूसरी बड़ी छिपकली उस पर झपट रही है। पहली भाग रही है। वह उसका पीछा कर रही है। इसी दौड़ में लकड़ी के रेक पर रखे बरतन बोल उठे, जैसे वे उन्हें लड़ने से मना कर रहे हों और एक बरतन ने उनके बीच-बचाव में नीचे लुढ़ककर अपनी जान दे दी। गिलास का दूध औंधकर फैल गया। वह उन्मन सब देखती रही। दुर्गा को हँसी आ गई। वह प्रकृति का तमाशा देखती रही। फिर वह लेट गई। लालटेन फिर भी जल रही थी। अन्धेरा कोने में फिर भी छिपा बैठा था। छिपकलियों की लड़ाई शान्त होने पर बरतन चुप हो गए थे। दूध को धीरे-धीरे जमीन पी रही थी। पर दूध आराम से पैर फैलाकर लेटा हुआ था। जैसे बहुत देर तक बरतन की कारा में बँधा-बँधा वह थक गया हो। झोंपड़ी की खिड़की की हवा ने, जो पहले कमरे में घूम रही थी, दुर्गा के शरीर को थपकना शुरू कर दिया, उसके माथे का पसीना पोंछा, फिर बाल सहलाए, गालों पर हाथ फेरा, चोली के भीतर घुसकर स्तनों को सुखाया और शरीर पर घूम-घूम मन के आवेग को हटाने के लिए जैसे पहरा देने लगी। फिर वह आँखों में घुस कोने में छिपी नींद को बुला लाई, जिसे डर, संकोच आशंका ने मिलकर घेर रखा था। दुर्गा नीचे बिस्तर पर जहाँ लेटी थी, वहीं सो गई।

रात को बारह बजे के बाद माणिक लौटा, नशे में चूर। उसने धीरे से किवाड़ खोले तो देखा दुर्गा बिस्तर पर उकड़ूँ पड़ी है। वह उसी के पास आकर बैठ गया।

उसका चेहरा शान्त, पर चिन्ता की रेखाओं से भरा था। वह विरक्ति से भर गया। जी में आया जोर से एक लात लगाकर दुर्गा को जगा दे। पर मन में स्वयं इतना अटपटा घिनौनापन भरा था कि उसे अपने ऊपर लज्जा आ रही थी। रात को जुए में वह सब हारकर आया था। दोस्तों ने उसके जीत के पैसों से शराब पी और उसे पिलाई। फिर भी हार की कचोट उसके जी में भरी थी। उसकी अपनी ही गलती थी। वह गया ही क्यों? क्यों खेला जुआ? इसमें दुर्गा का क्या कुसूर है? उसने चौके की ओर दृष्टि डाली। दूध बिखर गया था। उसे जानते देर न लगी कि चाय के लिए जो दूध आया था सो चाय नहीं बनी। वह उठा, ढँके खाने की ओर देखा और चुपचाप खाने बैठ गया। दिन-भर का भूखा था। उसने पेट भरकर खाया, पानी पिया और बीड़ी सुलगाकर दुर्गा के पास आ बैठा। उसके सामने पिछली रात की सारी घटनाएँ घूमने लगीं। वह शराब के नशे में दुर्गा से आमोद-प्रमोद करना ही चाहता था कि झटके की तरह उसे लगा कि कान्ति उस पर हँस रहा है और उस हँसी में बड़ा गहरा व्यंग्य है। एक तीखी हँसी है वह। उसका आगे बढ़ता हुआ हाथ रुक गया। बहुत देर तक वह सोचता रहा। एक विचार के साथ उसे घृणा होती, गुस्सा आता और दूसरे ही क्षण वह मानने लगता जैसे यह सब असत्य है। उसने जेब से 'पौआ' निकाला और गटगट करके आधे से ज्यादा पी गया। इसी समय दुर्गा की आँख खुली तो उसने देखा माणिक खड़ा-खड़ा ताड़ी पी रहा है। वह चुपचाप देखती रही। वह बक रहा था—

"हम साला कान्ति कू देखेंगा, देखेंगा। दुर्गा कू मार डालेंगा। हमकू कोई नई रोक सकेंगा। मांगा कू गूगी कू मार डालेंगा। सबको सबको खल्लास कर देयेंगा।"

बहुत देर तक बकने के बाद वह वहीं चटाई पर बैठ गया और धीरे-धीरे नशे में बेहोश हो गया। दुर्गा ने उठकर उसे सीधा लिटाया और उसके मुँह की ओर देखती रही, देखती ही रही। उसके मुँह से साँस के साथ शराब की झार उठ रही थी।

माणिक रोज रात को देर से लौटता, शराब पिये हुए। गूगी

मछली लेकर मार्कीट जाती तो देखती मारिणक नहीं है, किसी को भी उसका ठीक-ठीक पता नहीं है। कभी आता है, कभी नहीं आता। काम उसका बहुत कम हो गया है। दुर्गा ने अपनी माँ से कहा, "अब ओ खरच बी नई देता। हम उधार लेकर काम चलाताय। हर रोज शराब पीकर लौटताय। रोज गाली-गलौच मारपीट करताय।"

एक दिन मांगा ने पता लगाया और मिलने पर पूछा तो उसने जवाब दिया—

"हम दुर्गा कू छोड़ देयेंगा। वह माली बदमाश औरत हे।" कहकर बिना मांगा की बात सुने वह सर्र से भीड़ में विलीन हो गया।

मांगा ने गूगी से आकर कहा तो वह बोली—

"तू फिकर क्यों करता हे मांगा, हम दुर्गा को दूसरी जागा बैठा देयेंगा। हमारा बेटी दुख नई उठायेंगा।"

इसके साथ ही वह उठी और दुर्गा के घर पहुँचकर कहने लगी, "दुर्गा चल मेरे साथ, छोड़ दे इस मारिणक का घर। कहीं और इन्तजाम करेंगा।"

अचानक यह बात सुनकर दुर्गा चौंकी और पूछने लगी—

"क्यों?"

"ओ बदमाश तेरे कू नईं चाता। कमाता बी नई हे।" हाथ उठाकर गूगी ने कहा। फिर बोली—

"चल मुजकू ओ मुला मिले तो कच्चा ई खायेंगा। तुजकू किस बात का परवा हे रानी। और कर देयेंगा। चल।"

गुस्से में गूगी हाथ पकड़कर दुर्गा को उठाने लगी तो दुर्गा ने हाथ छुड़ाते हुए जवाब दिया—

"नई मां, हम अबी नईं जायेंगा। तू बोला के हर घर में पइले अइसा ई होताय। फिर ठीक हो जाताय।"

"ओ ठीक नई होयेंगा। किसी हरामी का बीज हे। चल उठा ले सामान। देखूँ कौन रोकताय? उसका मूरत हे कि हमारे घर आये!" मांगा बोलता था। "मारता-मारता साला का भुरकुस बना देयेंगा। समझ क्या रखा हे, ओ साला ने। तू चल बेटी।"

दुर्गा टस-से-मस नहीं हुई। वैसी ही बैठी रही। माँ बक-झककर उसे ही कोसती चली गई।

"अपना ई माल खोटा हे।"

रात को माणिक फिर देर से लौटा, पर उस दिन शराब पिये हुए नहीं था। दुर्गा भरी बैठी थी।

"माणिक आजकाल मार्कीट नई जाताय ?"

"तू कौन होता हे ?"

"तेरा औरत।"

"जा, जा अपना काम करेंगा के नई हरामजादी," कहकर उसने कपड़े उतारकर खूँटी पर टाँगे।

"और तू शराब पीकर उजाड़ता रहताय। जुआ खेलताय। काम बी नई करताय। आज कितना दिवस से बजार का उधार हे। कहाँ से देयेंगा हम ?"

"तो तेरे बाप का घर चला जा।"

"मेरा घर येई हे। तू मेरा मालिक," जोर देकर उसने कहा। "समझा ? हम किदर नई जायेंगा। तू बी अब कल से शराब नई पियेंगा। जुआ नई खेलेंगा कान खोलकर सुन ले।"

चटाई पर बैठता माणिक बोला—

"सुन लिया, सुन लिया।"

"सुन नई लिया। हम कोलिन हूँ जिसका राज चलता हे घर में।"

माणिक के मन में आया उठकर एक थप्पड़ वह दुर्गा को जड़ दे और दो लात लगाकर उसे घर से निकाल दे। दिन होता तो शायद वह वैसा करता भी। पर उस दिन उसे अपने किये पर ग्लानि हो रही थी। इसीलिए उसने ताड़ी नहीं पी थी, जुआ खेलने दोस्तों के साथ नहीं गया था।

उसी रूखे और आज्ञा के स्वर में दुर्गा ने कहा, "मुँह-हाथ धो। हम भात परोसताय। लोकर कर।"

दुर्गा उठकर रसोई से खाने की थाली भर लाई। माणिक हाथ धोकर बैठ गया और खाने लगा। सारा भोजन गरम और काफी स्वादिष्ट

था। माणिक को लगा जैसे बहुत दिनों के बाद वह ऐसा भोजन कर रहा है। दुर्गा सामने बैठी देख रही थी और जो कम होता वह थाली में डाल देती थी। माणिक को मुरब्बा प्रिय है। दुर्गा ने चुपचाप उठकर एक कटोरी में मुरब्बा उसके सामने लाकर रख दिया। माणिक को मालूम है कि उसके घर मुरब्बा नहीं है। जब वह चीज़ सामने देखी तो खुश होकर खाने लगा। वह पूछना चाहता था कि यह कहाँ से आया पर भीतर की अकड़ में भरे होने के कारण वह चुप रहा। दुर्गा भी न बोली। जब खा चुका तो दुर्गा ने मीठा भात परोसा। माणिक ने वह भी खाया। आज वह भीतर-ही-भीतर बहुत तृप्त था। चटाई पर लेटते ही दुर्गा ने एक पान उसके सामने लाकर रख दिया। माणिक ने आश्चर्य में भरकर पान भी खा लिया। फिर बीड़ी सुलगाकर पीने लगा। उसे लगा उसने दुर्गा के साथ अब तक बड़ा अन्याय किया है। क्या इतना सुख और कहीं होटल में उसे मिल सकता है? इस खाने के साथ कितना स्नेह, प्रेम मिला है! कितनी हमदर्दी छिपी है! माणिक की ज्ञान और विवेचना की जितनी आँखें खुलती जा रही थीं वैसे ही भीतर की तृप्ति से बाहर की आँखें बन्द हो रही थीं। थोड़ी देर बाद उसने निगाह उठाकर देखा तो दुर्गा सवेरे का रखा भोजन कर रही थी। मुरब्बा बचा हुआ उसने रख दिया था। मीठा भात भी अलग रखा था। वह चुपचाप देखता रहा। उसने एक के बाद दूसरी बीड़ी सुलगाई और धुआँ छोड़ने लगा। दुर्गा ने खाकर बरतन साफ किये, चौका किया, फिर बाल्टी में पानी भर साबुन से माणिक के कपड़े धोने लगी। माणिक यह सब चुपचाप देखता रहा। जब उससे नहीं रहा गया तो पूछ बैठा, "धाटी क्या हुआ? तू क्यों काम करताय?"

दुर्गा ने कोई उत्तर नहीं दिया, काम करती रही। माणिक के जी में आया सब काम छुड़ाकर दुर्गा को अपने अंक में भर ले, पर वैसा न कर सका। उसने आँखें मूँद लीं और दुर्गा के आने का इन्तजार करने लगा। इसी बीच में उसे झपकी आ गई। वह बहुत देर तक पड़ा रहा। थोड़ी देर बाद आँख खुलने पर उसे लगा कि सब ओर अंधेरा है। दुर्गा उसके पास नहीं है। बाहर की रोशनी से अच्छी तरह देखने पर उसने

जाना दुर्गा रसोई में सो रही है। जी में आया कि दुर्गा को उठाकर पास के बिस्तर पर सुला ले। वह उठा भी, पर फिर लेट गया। जैसे उसका आत्मदर्प, झुकने से झिझक रहा हो। वह सो गया। सवेरे आँख खुलते ही उसने पाया चाय का प्याला सामने रखा है। माणिक ने चाय पी और चुपचाप निपटने चला गया। लौटने पर दुर्गा बोली—

"मार्कीट जा। हम बारह बजे खाना लेकर आयेंगा।" इसके साथ ही दुर्गा ने पकौड़ी और एक प्याला चाय उसके सामने रख दिया।

"तू भी तो खा।"

दुर्गा ने कोई उत्तर नहीं दिया और कमरे में बुहारी लगाने लगी। माणिक खा-पीकर चला गया।

दुर्गा खाना लेकर ग्यारह बजे ही मार्कीट पहुँच गई। कोली बाड़े की दो कोलिनों की मछलियाँ भी उसके साथ थीं। माणिक ने चाहा वे मछलियाँ दुर्गा उसके मार्फत ही बेचे, पर दुर्गा टोकरे उठाकर सीधी उन आढ़तियों के पास ले गई जहाँ उनके टोकरे बेचे जाते थे।

माल बेचकर लौटती हुई दुर्गा ने माणिक को खाना खिलाया और तब तक खुद उसका काम करती रही। उसे देखकर कोली बाड़े की दो मछली वाली औरतें अपने टोकरे वहीं ले आईं और रखती हुई बोलीं—"दुर्गा, ये तेरा कौन ?"

"हमारा मालिक।"

"भोत बेईमान हे।"

दुर्गा ने माणिक की ओर देखा—तेज नजर से। वह तब तक खाना खा रहा था। उसके जवाब देने से पहले ही वह बोल उठा—

"गलती हो गयाय बाय, अब अइसा नईं होयेंगा। एक बार लाकर फिर खात्री करो न।"

उसने थोड़ी देर में अच्छे भाव से मछलियाँ बेचकर दोनों के दाम चुका दिये। माणिक आया तो कहने लगा—

"दोनों औरत भोत बेईमान हें।"

"हम जर ईमानदार हों तो कोई हमारा साथ दगा नईं करेंगा।"

माणिक चुप हो गया।

दुर्गा को देखकर कई कोलिनें अपनी मछलियाँ ले आईं। माल निकलने पर ठीक-ठीक दाम लेकर चली गईं। वह माल बेचने के लिए अच्छी मछली चुन-चुनकर ऊपर रखती। छोटी और खराब निकालकर थोड़े दामों में बेचती, जब कि माणिक यह सब-कुछ भी नहीं करता था। लौटते ट्रकों के साथ दुर्गा लौट गई।

पड़ौस की एक बूढ़ी औरत के यहाँ मछली चुनने वाला कोई नहीं था। दुर्गा उसके यहाँ जाकर चुनने लगी।

शाम को माणिक ने आकर देखा तो दुर्गा उसकी कमीज में बटन लगा रही थी। माणिक के लिए यह भी एक आश्चर्य था। इससे पहले या तो वह बिना बटन की कमीज पहनता था या फिर किसी दरजी से ठीक कराता था। उसने देखा घर आज पहले से ज्यादा साफ है। चटाई जिस पर बैठना था उसके किनारे लाल किनारे से सिले हुए हैं। स्टोव चमक रहा है। लालटेन की रोशनी बढ़ गई है। दो-तीन खूटियाँ नई लग गई हैं। झूला दरी तकिया और सफेद चादर से चमक रहा है। एक मराठी की किताब भी चटाई पर रखी है। माणिक ने कपड़े उतारे और खूँटी पर टाँगकर चटाई पर बैठ गया। इधर-उधर निगाह पड़ने पर उसने देखा राख झाड़ने की चीनी की प्याली रखी है। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने ऐश ट्रे सरकाकर बीड़ी की राख झाड़ी। दुर्गा रसोई में थी। वहीं से उसने कहा—

"भोजन तयार है।"

"हम अबी नई खायेंगा।"

दुर्गा ने मुड़कर उसकी ओर देखा और प्रश्नसूचक स्वर में आज्ञा के साथ पूछा—

"क्यों ?"

"आज वयोरे इतना खिला दिया। फिर शाम को चाय पिया, कुछ और भी खाया था कान्ति के साथ।"

"कान्ति क्यों आया ?" इसके साथ ही दुर्गा के शरीर में एक घृणा दौड़ गई।

"मिल गया था।"

"श्रो अच्छा आदमी नई हे।"

माणिक को लगा जैसे दुर्गा को उसने रात तंग किया होगा। यह अच्छा मौका है कि दुर्गा खुद उसकी बाबत बता दे।

"क्यों तेरा साथ उसने काय किया?" माणिक की बात में एक प्रकार की सन्देहमयी जिज्ञासा भरी थी।

"यह बी कोई बोलने का वात हे, आदमी आदमियत की तरह से रहे तो खराब नहीं लगता।"

माणिक को लगा सब-कुछ साफ हो जायगा।

"हम पूछताय तेरे साथ क्या किया, तेरा क्या बिगाड़ा उसने?"

उसी तेजी के साथ दुर्गा माणिक की तरफ मुँह फेरकर कलछी उठाए बोली—

"हमारा साथ क्या करता? मुजकू टेढ़ी नजर से देखता तो क्या ओ वचकर जाता? इदर मार न डालता उसकू? हमारा साथ क्या करता। पन जो तेरे में खराब आदत डाला, तुजकू शराब पिलाकर पागल बना दिया, घर में कलेश किया, मार्कीट का काम बिगाड़ा, ये क्या कोई चांगला काम हुआ? बीते पन्द्रह दिनों से तेरा दिमाग नहीं मिलताय, तू उखड़ा-उखड़ा नाराज रहता हे, जइसा जुआ खेल के सब कुच हारा होयें, ए क्या कम बाईट किया उसने? हर आदमी अपना घर देखताय। पन तेरे कू तो गुस्सा का पर लग गयाय। हम कोई नई रहा। बाजार ई साब हो गया। होटल ई साब हो गया। उदर खाना, उदर पीना। दिन-दिन वर मारा-मारा फिरना और दुख दूर करने का वास्ते मग शराब पीकर पागल वनना। अपनी औरत कू मारना, पीटना। ये आखा क्या अच्चा बात हे, तू ई सोच।"

माणिक दुर्गा की बातें सुन रहा था। उसे ताज्जुब हुआ कि जुए की बात इसे कैसे मालूम हो गई। वह कुछ भी समझ न सका। चुप रह-कर सुनता रहा। ये सब बातें उस पर गुजरी थीं। सचमुच वह मारा-मारा फिरता रहा—दीन, दुखी, अपाहिज, तिरस्कृत सा। जैसे कहीं भी उसका घर न हो; कोई भी उसकी देख-भाल करने वाला न हो। पर दुर्गा के ऊपर भी उसे कम आश्चर्य नहीं था। इतनी बातें उसने दुर्गा के

मुँह से कभी नहीं सुनी थीं। जैसे वह बोलना तो जानती ही नहीं थी। आज इतनी सही मन को चुभने वाली बातें उसने कहीं। क्या हुआ इसे, कहाँ से इतनी बातें जान गई?

चुपचाप दुर्गा मछलियों के काँटे निकालकर उन्हें छुरी से चीरती रही। माणिक अपने में खो गया। चूल्हे पर चढ़ा भात फड़क रहा था। दुर्गा ने आंच और तेज कर दी। और वह ढक्कन उतारकर चावल देखने लगी। पल्ले से उसने ढक्कन फिर रख दिया और मछली चीरने लगी। बेदर्दी से उसने पर साफ किये और आधी रोहू काटकर अलग रख दी। शेष के टुकड़े करने लगी। फिर उठकर बेसन निकालकर घोला और बाएँ हाथ से नमक-मिर्च-मसाला मिलाया। माणिक अभी तक अन्तस्थ हो बैठा सोचता रहा। वह झोंपड़ी के बाहर जाकर खड़ा हो गया और बच्चों के खेल देखता रहा।

"खाना तयार हे माणिक, खा ले। फिर देर होने से खाना ठीक तरह पचता नई हे," दुर्गा ने बाहर निकलकर कहा।

माणिक चुपचाप आकर खाने बैठ गया। दुर्गा ने आज कल से भी ज्यादा अच्छा खाना बनाया था। थोड़ी भूख के बावजूद भी उसने डट-कर खाया।

माणिक को दुर्गा का यह आज्ञाकारी रूप अच्छा लगा। उसके अहंकारी मन ने उसके सामने जैसे आत्म-समर्पण कर दिया। खाने के बाद दुर्गा ने पान दिया। माणिक ने देखा कि उसने पान का सारा सामान घर पर ही लाकर रख लिया है। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दुर्गा बिना बोले अपने काम में लग गई।

"माणिक, जा बापू बीमार हे देख।"

"क्या बीमार हैं?"

"कल से ताप हे।"

"मुजकू किसी ने बोला नई।"

"तू आपना में होता तो बोलता न।"

माणिक एक बार भड़का कि यह मुझ पर रौब गाँठने वाली कौन होती है। पर उसने कुछ नहीं कहा और ससुराल चला गया। एक-डेढ़

घण्टे बाद लौटकर देखा कि दुर्गा मराठी पढ़ रही है।

माणिक बिछे हुए बिस्तर पर लेट गया और दुर्गा की तरफ देखता रहा। उसने पाया जैसे दुर्गा बहुत बदल गई है। एक सप्ताह के भीतर ही वह नई हो गई है। उसके मराठी पढ़ते हुए चेहरे पर जहाँ जिज्ञासा का अटल संकेत है वहाँ वह एकदम गम्भीर हो गई है। यौवन, गम्भीरता, आत्म-निर्भरता और विश्वास से उसका मुख एक नवीन कान्ति, नई आभा से चमक उठा है। बिना बोले ही वह स्लेट पर अक्षर लिखती रही और माणिक उसे देखता रहा। एक पाठ पूरा करने के बाद उसने पूछा—

"क्या हाल है बापू का ?"

माणिक ने कोई उत्तर न दिया। लालटेन की रोशनी में दमकता दुर्गा का मुँह ताकता रहा। उसके प्रौढ़ यौवन में जैसे नये सौन्दर्य की आभा चमक रही हो। उस समय उसके मुख पर पावन आभा दीप्त हो रही थी। जिसमें सात्विकता की छाप स्पष्ट लक्षित हो रही थी। वह उत्सुकतावश देखता रहा—देखता ही रहा। कभी-कभी मनुष्य के चेहरे का कोण ऐसा बन जाता है जिससे असुन्दर भी सुन्दर लगने लगता है और लालटेन की प्रकाश-किरणें उसे और भी चमका देती हैं। ठीक यही दशा इस समय दुर्गा की थी। वह तन्मय होकर अभ्यास कर रही थी, जैसे अक्षरों से निकलने वाले स्थायी ज्ञान को वह पी जाना चाहती हो। माणिक को लगा दुर्गा में आज सब-कुछ नया है। नई जिज्ञासा, नई चेतना, जैसे उसमें स्फुरण करने लगी है। उसने दुर्गा के ऊपर से नजर हटा ली और आँख मींचकर उसको कल्पना-लोक में देखने लगा। उसके चित्रांकन में जैसे खो गया। आँख खोली तो दुर्गा वैसे ही बैठी लिख रही थी, उसी तन्मयता के साथ। माणिक का अव्यवस्थित मन बेचैन हो उठा। उसने दुर्गा को अपने पास खींच लेना चाहा। पर यह वैसा न कर सका। जैसे दुर्गा की पवित्रता और चेहरे के तेज ने उसे रोक दिया, डरा दिया हो।

"कइसा तब्बेत है बापू का ?"

"हम देख रहा हूँ तू जाने कइसा होता जाताय।"

दुर्गा ने बड़ी-बड़ी और भरी आँखें घुमाकर माणिक की ओर देखा और मुस्कराकर बोली—

"कइसा, कइसा होता जाताय माणिक ?"

"नई-नई, बोल नई सकता। न जाने आज तू कइसा लगताय ?"

"नया हो गया क्या ?"

"हा।" इतना कहकर आवेश से उसकी सुडौल बाँहों में हाथ फेरने लगा। थोड़ी देर बाद उसने दुर्गा को अपने पास खींच लिया। दुर्गा हाथ छुड़ाकर अलग होती बोली—

"अबी मेरे कू भोत काम करने काय, सो जा।"

वह उठकर रसोई में चली गई और माणिक के कपड़े धोने लगी। माणिक विवश पड़ा सोचता रहा। थोड़ी देर में सो गया।

इसी समय बाहर का दरवाजा भड़भड़ा उठा। दुर्गा ने बाहर आकर देखा तो पड़ोसिन को बेचैन पाकर पूछा—

"क्या सार्गा ?"

"पोपट कू हैजा दुर्गा, भोत बीमार हे।"

"चल देखेंगा।"

दुर्गा कमरे में जाकर लौट आई और दरवाजा भिड़ाकर चल दी। पोपट सचमुच बीमार था। उसे हैजा हो गया था। जगह-जगह कै, पाखाना पड़ा था। कमरे से दुर्गन्ध उठ रही थी। भीतर घुस सकना मुश्किल था। दुर्गा हिम्मत बाँधकर भीतर गई तो बोली—

"सब कुछ साफ कर बाय।"

बुढ़िया क्या करती ? शाम को एक वैद्य को बुलाकर दवा दी थी। पर उससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। लोगों से पता लगा कि डाक्टर को दिखाने पर हैजे के घर 'क्वारंटीन' भेजना पड़ेगा। वहाँ सौ में शायद एक ही कोई बच पाता हो। यही सोचकर वह वैद्य का इलाज करती रही। दुर्गा भी अनजान थी। वह सलाह भी क्या देती। फिर भी दुर्गा ने खुद बीमार के कपड़े ले जाकर समुद्र में धोये और बाहर लाकर सुखा दिये। बच्चे की हालत खराब होती जा रही थी। डर के मारे लोग अपने-अपने झोंपड़ों में पड़े सोते रहे। किसी ने बाहर आकर कोई मदद

नहीं की। कोई करता भी कैसे। यही बहुत था जो उन्होंने इस बीमारी की खबर नहीं की। सागी के यही एक बच्चा था, उसके लड़के का लड़का। माँ-बाप मर गए थे। पोपट एकमात्र सागी का सहारा था। वह भी अब जा रहा था। यह जानकर सागी के जैसे हाथ-पैर फूल गए। वह जड़ मूक बनी देखती रही। दुर्गा ने दवाई दी। पर बच्चा 'पानी-पानी' चिल्ला रहा था। सागी रोकर बोली—

"हमारा बच्चा प्यास से मरा जाताय, पानी वास्ते, दुर्गा !"

"नईं बाय, पानी देना टीक नईं होयेंगा।"

पोपट की आवाज़ पानी-पानी चिल्लाते बैठ रही थी। वह बराबर उलटियाँ और दस्त कर रहा था। जैसे-जैसे उसके दस्त-उलटियों की संख्या बढ़ रही थी वैसे ही वह ज्ञान-शून्य हो रहा था। आँखें उसकी धँस रही थीं। अन्त में दुर्गा ने कहा—

"अस्पताल भेज दें सागी मां ?"

"क्या बच जायेंगा ?"

"कदाच, हम बुलाताय माणिक कू।"

वह जाकर माणिक को बुला लाई। माणिक ने सुना तो पहले नींद में उसने टालना चाहा। फिर दुर्गा के आग्रह पर वह आया और अस्पताल में खबर देने चला गया। जब घंटे-डेढ़-घंटे बाद गाड़ी उसे लेने आई तो पोपट समाप्त हो चुका था। बुढ़िया आँखें फाड़े बच्चे को देख रही थी, जड़, मूक। दुर्गा पास बैठी सागी को समझा रही थी। पर वह तो जैसे स्वयं खो गई हो।

सवेरे बच्चे का क्रिया-कर्म हुआ। माणिक को इस काम में काफी देर लग गई। वह बाहर से आया और चाय पीकर मार्कीट चला गया। शाम तक काम करता रहा। कान्ति अचानक आ गया। दोनों में सैर-सपाटे का प्रोग्राम बन रहा था कि मांगा दौड़ा-दौड़ा आया।

"माणिक, माणिक ! चल घर चल।"

माणिक का जी जैसे काँप गया। आवाज़ किसी आशंका से बैठ गई। पूछने लगा—

"क्याय ?"

"दुर्गा कू हैजा हो गयाय। उसकू अस्पताल बेजने का। हम तो इस वास्ते नई भेजा के तेरे कू पूछें। किदर तू कुच न बोले। चल।"

माणिक बेसुध-सा दुकान समेटकर चल पड़ा। एक घण्टे बाद पहुँचने पर उसने देखा कि रात को लालटेन की रोशनी में चमकने वाले दुर्गा के चेहरे पर जैसे किसी ने कालिख पोत दी है। उसी समय वह डॉक्टर को बुला लाया और उसी की सहायता से दुर्गा को क्वारंटीन भेज दिया गया। वह बराबर गूगी के साथ क्वारंटीन के दरवाजे पर बैठा रहा। वह चौकीदारों-सिपाहियों से पूछता, नर्स के पास दौड़कर जाता पर दुर्गा की कोई खबर उसे नहीं मिल रही थी।

इसी समय नर्स ने आकर खबर दी, "हालत खराब है। इलाज कर रहे हैं। शायद बच जाय।"

गूगी ने सुना तो चिल्ला उठी और फफक-फफककर रोने लगी। माणिक का जी भर आया।

"हम उसे देखना मांगताय, नर्स।"

"तुम भीतर नहीं जा सकते।"

"गूगी तू जा। जा देख।"

"हाँ, ए जा सकता।"

गूगी को लेकर नर्स चली गई। माणिक बाहर खड़ा रहा। उसके सामने अनन्त चिन्ताएँ भयावह रूप में आकर खड़ी हो गई। अस्पताल में लोगों का आना-जाना, बातचीत, चिन्ता-व्याधि जैसे कुछ भी उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसकी आँखें बाहर देखती हुई भी केवल दूर किसी कमरे में पलंग पर पड़ी दुर्गा को देख रही थीं, मानों वह शरीर की पीड़ा से छटपटा रही हो और एक बार उसे, माणिक को, देखना चाहती हो। *क्या सोच रही होगी दुर्गा, क्या हो रहा होगा उसे, कैसी* होगी वह, क्या चाहती होगी, कैसा लग रहा होगा उसे—यही सब-कुछ अस्पष्ट रूप से उसके सामने आता रहा। उसकी चिन्ता-धारा बेचैनी से 'क्वारंटीन' के कमरे के आसपास चक्कर काटती रही। वह खोया सा खड़ा रहा, बहुत देर तक खड़ा रहा। इसी समय गूगी आई तो वह प्रश्नहीन दृष्टि से उसे देखने लगा। गूगी रोनी सूरत बनाये चुपचाप आकर

खड़ी हो गई। जो कुछ कहा उसका सार यह था—कुछ नहीं मालूम हुआ। चारों तरफ मुर्दों की तरह बीमार-ही-बीमार सफेद कपड़ों में लिपटे पड़े हैं। कोई पानी-पानी चिल्ला रहा है, कोई बेहोश है। कोई क़ै कर रहा है, कोई पाखाना। दुर्गा को मैंने दूर से देखा, वह भी चिल्ला रही है। न जाने कैसी है मेरी बेटी!'

इतना कहकर वह आँसू बहाने लगी। माणिक चुपचाप खड़ा रहा इसी समय मांगा भी आकर खड़ा हो गया।

"क्या हाल है?" उसने पूछा।

"कोई खबर नईं है," गूंगी ने रोते हुए कहा।

केवल नर्सें, डॉक्टर इधर-से-उधर दौड़ते दिखाई पड़ रहे थे। फाटक का जमादार खड़ा बीड़ी पी रहा था। कभी-कभी मूँछों पर ताव देता, आने-जाने वाले लोगों को रोकता, डाँट-डपट करता; पर एक इंच भी किसी को आगे नहीं बढ़ने देता। कुछ अस्पताल के लोग आते और बे-खटके भीतर चले जाते। ये तीनों सिमटे-ठिठके आँखें फाड़े खड़े थे। पास ही एक औरत चुपचाप खड़ी अपने पति की खबर के लिए बेचैन थी, गुमसुम। पास में एक बूढ़ा बार-बार अपने लड़के की खबर पाना चाहता था। कुछ वैसे ही आ-जा रहे थे। इसी समय दो-तीन रेड-क्रास की गाड़ियाँ आईं और भीतर चली गईं। भीतर से लोग दौड़ पड़े और स्ट्रेचर पर रखकर मरीजों को भीतर ले गए। माणिक अस्पताल के बाहर दूर खड़ा टुकुर-टुकुर देखता रहा। दूर से कभी-कभी चिल्लाने की आवाज़ आती। बाकी चुप। अस्पताल के चारों ओर बिजली की रोशनी जगमगा रही थी। उनमें भी कोई उत्साह नहीं दिखाई दे रहा था। वे जल भर रही थीं, रोशनी दिखा रही थीं।

माणिक पछता रहा था कि क्यों उसने दुर्गा को पोपट के घर जाने दिया। औरों की तरह वह भी चुप पड़ा रहता; न जाने देता दुर्गा को फिर क्यों यह नौबत आती! उसे ख्याल आया यदि दुर्गा चल बसी तो···? इसी के साथ शादी से लेकर अब तक की सब बातें उसकी आँखों के सामने घूम गईं। उसकी एक-एक बात लेकर वह सोचता खड़ा रहा। थोड़ी देर के लिए वह अतीत की दुनिया में घूमने लगा। पिछले दिनों के

प्रेम, विलास से उसका मन उभर आया। उसे वे दिन भी याद आए जब दुर्गी की गरम-गरम साँसों से उसने अपने प्राणों में गरमी भरी थी और तृप्ति अनुभव की थी। धीरे-धीरे लड़ाई-झगड़े की बातें, मार-पीट के दिन उसके सामने आये। वह भीतर की दुनिया में खोया जा रहा था कि इसी बीच मुर्दों को लिये हुए कुछ गाड़ियाँ निकलीं और बाहर खड़े लोग चिल्लाने लगे, "कौन है ? किसका है ?" बाहर आकर भंगी चिल्लाने लगे, "अपनी लाशों को देख लो, नहीं तो लावारिसी में वे फेंक दिए जायेंगे।"

माणिक के स्वप्न टूट गए। वह बढ़ा। गूगी, जो अब तक चुपचाप आँसू बहा रही थी, उठकर खड़ी हो गई।

एक आदमी चिट के मुताबिक लाशों के नाम पढ़ रहा था। भीड़ ऐसे टूट पड़ी जैसे भिखारी रोटी के लिए टूट रहे हों। गूगी और माणिक भी बढ़े और नाम सुनने लगे। जिन लोगों की लाशें थीं उन्होंने दहाड़ मारकर रोना शुरू कर दिया। लोगों ने थोड़ी देर बाद उन्हें हटा दिया।

सारा मैदान सुबकियों-दहाड़ों से भर गया। जहाँ थोड़ी देर पहले सुनसान था वहाँ लोगों के रोने से आकाश फटने लगा।

दुर्गी का नाम उसमें नहीं था। दोनों ने सान्त्वना की साँस छोड़ी और पीछे हट गए।

"न जाने कइसा है हमारा छोकरी !" गूगी बोली।

"न जाने।"

दोनों फिर पीछे अपनी जगह आकर खड़े हो गए। कुछ और लोग कुछ गाड़ियों में, कुछ टैक्सियों में लाये गए और दाखिल कर दिये गए। उनके साथी जहाँ माणिक और दूसरे लोग खड़े थे आकर खड़े हो गए। कुछ लौट गए।

रात-भर यही क्रम चलता रहा। कुछ लोग आते और मरने वालों का नाम सुनकर रोते हुए चले जाते। लाशें बहुत कम लोगों को दी जातीं। उस सारी रात किसी के भी अच्छे होने का समाचार नहीं सुना गया।

अस्पताल का सवेरा हो रहा था। लोगों की कतार ऊँघती, रोती,

बिसूरती, प्रतीक्षा करती, बेचैनी से घूमती अब भी चक्कर लगा रही थी : पहरा बदला। नर्सें हँसती हुई बाहर निकलीं। नई आ रही थीं—सफेद कपड़ों, फ्राकों से सजीं, गोरी-गोरी, कुछ काली। जैसे किसी का मरना उनके जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, वैसी ही असंपृक्त, निर्लेप।

जब कोई काम मनुष्य का व्यवसाय बन जाता है तब उसका आधार कर्त्तव्य हो जाता है। वहाँ दया माया के लिए कोई स्थान नहीं रहता। कर्त्तव्य, केवल कर्त्तव्य निभाना। लगाव नाम की कोई बात न तो उसमें होती है और न उसके लिए कोई स्थान ही रहता है। क्वारंटीन के लोगों का भी यही हिसाब है। जमादार से लेकर बड़े डॉक्टर तक सब उस काम को नौकरी समझकर करते हैं। वे न दूसरों के दुख से दुखी होते हैं, न सुख से सुखी। रोगी के अच्छे होने पर जो-कुछ लोग नर्स, जमादार या अन्य नौकरों को चुपके-चुपके दे देते हैं उसमें रुपये की प्राप्ति का भले कोई महत्त्व हो, ममता मोह का वहाँ नाम भी नहीं रहता।

माणिक ने देखा, एक अपटूडेट आदमी जो दरवाजे के पास बहुत देर से खड़ा था, एक नर्स के आने पर लपककर आगे बढ़ा और उसके हाथों में हाथ डालकर सीटी बजाता चल दिया। यही वह नर्स थी जो दुर्गा के उपचार में लगी थी। माणिक कुछ आगे बढ़कर पूछने को हुआ तो वह आगे बढ़ गई। माणिक के पूछने पर लापरवाही से उसने कुछ अंग्रेजी में कहा और दोस्त के साथ चल दी।

गाड़ी छूट जाने पर यात्री की तरह निराश माणिक फिर लौट आया और अपनी जगह आकर बैठ गया। बहुत देर से उसने बीड़ी नहीं पी थी। रात में उसने एकाध बार ही बीड़ी पी थी। उसने जेब में हाथ डालकर बीड़ी निकाली, पर दियासलाई न निकाली। उसने इधर-उधर देखा, फिर नये जमादार से दियासलाई माँगने लगा।

उसने डपटकर जवाब दिया—

"हमने क्या कोई दुकान खोल रखा है? जाओ, रास्ता नापो। शाला....।"

"न जाने हमारा माचिस क्या हुआ? ईसीसे..."

"अरे, इसी से क्या, तुजकू दीखता नई, फोकट में मिलता है क्या ?"

"नई जमादार साब, हम और लाकर दे देंगा।"

"दे देना है तो, दे दे। फिर माँगता क्यों है, शाला..."

"गाली क्यों निकालते हो ?"

"हम शाला गाली किसकू देता है। बोल, जान खाने आ गया शवेरे-शवेरे। जाओ काम करो।"

माणिक लौट आया। इस समय पास ही एक आदमी ने माचिस निकालकर देते हुए कहा—

"जानता नहीं जमादार है, अस्पताल का जमादार। तुम तो क्या तुम्हारा मांस भी नौंचकर खा ले। चार पैसा दो तो शाला मीठा बोलेगा, वैसा बात करो तो खाने दौड़ेगा।"

बीड़ी पीता-पीता जमादार की निगाह बचाकर माणिक आगे बढ़ा तो एक भंगी ने रोक दिया।

"ए, कहाँ जाता है। नौ बजे आना। नौ बजे।"

इसी समय दरवाजे के जमादार ने आकर माणिक की पीठ में मुक्का लगाते हुए कहा—

"चल निकल, बिना इजाजत। शाला चोर।"

गूगी सवेरा होते ही चली गई थी। मांगा भी। माणिक की बेचैनी कम थी, पर उसे अस्पताल का जीवन उबकाई देने वाला लगने लगा था। दूर से दवाओं से मिली हवा आ रही थी। माणिक नौ बजे की प्रतीक्षा में बाहर निकल गया।

लौटकर पता लगाया। दुर्गा बच जायगी। शाम को फिर आना। माणिक, गूगी और मांगा लौट पड़े। दिन-भर माणिक इधर-उधर घूमता रहा। दुकान नहीं गया। एक रेस्तराँ में उसने गाठिया खाया, चाय पी और बाजार की तरफ जाकर एक बेंच पर बैठ गया। जब वहाँ बैठे-बैठे उसे नींद-सी आने लगी तो बस पर बैठकर कोली वाड़े पहुँचा और अपनी झोंपड़ी में जाकर लेट गया। सो गया। चार बजे शाम को आँख खुली तो सिर भारी, नशे की खुमारी-सी चढ़ी थी। तमाम देह टूट-सी रही थी। वह बहुत देर तक पड़ा रहा। इसी समय द्वार पर खटके की आवाज

हुई। खोलने पर गूगी आई और बोली—

"सवेरे से चार बार आया है। खाना बी नई खाया।"

"हा, गाठिया चाय लिया।"

"तो चल खा ले, इदर ले आऊँ?"

"हम चहा पीयेंगा।"

"कुच खाकर चहा पीना, हम लाताय।"

गूगी थोड़ी देर में खाना लेकर आ गई। माणिक ने बासी भात मछली का शोरवा खाया। शायद एकाध रोटी भी थी। गूगी ने आग जलाकर चाय रख दी। माणिक दूध ले आया और दोनों ने चाय पी।

वहुत बोलने वाली गूगी आज चुप थी। इससे उसके चेहरे पर गम्भीरता उदासी से मिला भोलापन आ गया था। आज पहली बार माणिक ने उसे इतने पास से कई बार देखा। उसे लगा जैसे गूगी दूसरी दुर्गा है। बल्कि उससे प्रौढ़। वह माणिक को बुरी नहीं लग रही थी। गरदन के नीचे का खुला भाग सुता हुआ और कई तरह के हारों-कण्ठियों से सजा था। आँखें वैसे ही चमकदार, पानी वाली। नाक उठी, मरोड़ लिये। ओठ रस से भरे। चोली में कसे उसके स्तन काफी उभरे थे, जिनकी नोंकें चोली से चमक रही थीं। लापरवाही से जाँघ तक कपड़ा हट जाने पर उसने वह सब बैठे-बैठे देख लिया। चाय बनाते वह गूगी के पास जा बैठा और उसे देखने लगा। आधी बाँहों में कई तरह के गुदने गुदे थे। माथे पर टिकुली की जगह काली बिन्दी।

एकाएक माणिक की आँखों से बूँदें टपकने लगीं।

"क्यों रे माणिक, क्यों रोताय?"

माणिक चुप। गूगी ने चूल्हे के पास बैठे माणिक के आँसू पोंछे और उसे दिलासा देने लगी। माणिक फिर भी चुप न हुआ। गूगी ने चाय छोड़कर माणिक को थपकते हुए हिम्मत बँधाई।

माणिक गूगी के गले से चिपट गया और उसने अपना मुँह गूगी के स्तनों से लगा लिया। गूगी सान्त्वना देती हुई उसका सिर थपथपाने लगी। थोड़ी देर दोनों इसी अवस्था में रहे। फिर गूगी ने ही उसे हटाया।

माणिक ने डबडबाए स्वर में कहा—

"दुर्गा को कुच हो गया तो हम नई जीयेंगा।"

"नई-नई अइसा कायकू होयेंगा रे ?"

"नई-नई हम नई जीयेंगा।"

माणिक ने गूगी की कमर में हाथ डालकर फिर रोना शुरू कर दिया। नहीं कह सकते, यह उसके भीतर का कौनसा दुख था कि उसने गूगी को जकड़ लिया। गूगी ने न प्रतिरोध किया न हटी। वह वैसे ही माणिक के सिर पर हाथ फेरती रही। बहुत देर के बाद चाय तैयार होने पर दोनों ने चाय पी और दुर्गा की खबर लेने निकल गए।

पांचवें दिन दुर्गा को 'क्वारंटीन' से मुक्त किया गया। इस बीच में गूगी माणिक के लिए खाना लाती और काफी रात तक उसके पास बैठी रहती। माणिक गूगी की कमर में हाथ डाले उसकी जाँघों में मुँह छिपाकर पड़ा रहता। गूगी माणिक के सिर पीठ पर हाथ फेरती रहती। जब बहुत रात बीतने पर कोई बच्चा नींद में ऊँघता आकर आवाज लगाता तभी गूगी उठती। उस समय माणिक खुमारी-भरी आँखों से कहता, "तुमकू पाकर ना जाने कितना चैन मिलताय गूगी !" गूगी कहती, "हम काल आयेंगा।"

उस दिन दुर्गा बहुत कमजोर हालत में घर आई। सारी देह हड्डी-भर थी—पीला चेहरा, निस्तेज शरीर, बिलकुल मुर्दा। गूगी को देख-रेख के लिए माणिक के घर में बहुत देर तक रहना पड़ता। सारी पड़ौसिन दुर्गा के पास दिन-भर बैठी रहती। दवा और पथ्य से दुर्गा धीरे-धीरे ठीक हो रही थी। पहले वह कमजोरी की हालत में दिन-दिन-भर सोती रहती। रात को भी उठाकर उसे दवा पिलाई जाती। छः-सात दिनों में वह खाट पर बैठने लगी। फिर भी उसका काफी समय सोने में ही बीतता। माणिक अब अपने काम पर जाने लगा था। रात को वह काम से लौटता तो गूगी उसके लिए खाना तैयार करती। वह अपने घर का खाना बनाकर जल्दी से आ जाती। दुर्गा के लिए पथ्य तैयार करती। पर न जाने क्यों, न तो दुर्गा से उतना प्रेम रह गया था, न वह उसकी उतनी देखभाल करती। कभी-कभी वह भीतर खाट पर पड़ी चिल्लाती, मगर गूगी झोंपड़ी से बाहर पड़ौसी औरतों से बातें करती रहती। माणिक

के आने पर लगन से उसे खाना बनाकर खिलाती और उसके पास बैठी बातें करती। दुर्गा प्रायः शाम से ही अपना पथ्य लेकर सो जाती।

अचानक एक रात भाई के आवाज़ लगाने पर दुर्गा की जो आँख खुली तो देखा कि बिलकुल अंधेरा है और माँ दरवाजा खोलकर बाहर जा रही है। दुर्गा को लगा जैसे सारी छत उसके ऊपर आ गिरी है। थोड़ी देर बाद माणिक उठा। उसने दरवाजा बन्द कर दिया और सो गया।

दुर्गा को बहुत देर तक नींद नहीं आई। क्रोध और घृणा से उसकी छाती धड़कने लगी। उसे लगा, क्या यह सब देखने के लिए ही वह मरते-मरते बची है? उसे माणिक के ऊपर गुस्सा आया। क्या यह इतना नीच है, इतना पापी है? उसकी आँखों में आग-सी जलने लगी। पड़ी-पड़ी बेचैनी से छटपटाती रही। माँ को गालियाँ देने को जी चाहा। वह उठकर बैठ गई। अंधेरा था, सब ओर अंधेरा। जैसे उसका जीवन भी अंधेरा हो गया है। घोर अंधेरा। उसने अंधेरे में ही उठकर पास रखे बरतन से उबला हुआ पानी का घूँट पिया और बेचैनी से फिर बिस्तर पर आ लेटी। पास ही माणिक सो रहा था। उसके खुर्राटों की आवाज़ जैसे उसे कचोटने के लिए ही उठ रही थी। वह सोचकर भी कुछ नहीं सोच पा रही थी।

सवेरे उसे बुखार हो आया। माणिक ने पास आकर हाथ देखा तो झटककर हाथ खींच लिया और करवट बदल ली। सवेरे गूगी आई तो उससे भी उसने बात नहीं की। उसकी आँखों से अंगारे निकलते देखकर गूगी भीतर-ही-भीतर सिहर उठी। थोड़ी देर बाद वह पथ्य बनाकर लाई तो दुर्गा ने कहा—

"माँ, तू हमारा ई घर में आग लगाने आई है। जा चली जा। हम तेरा मुँह नहीं देखना मांगता।"

"हम तेरा क्या किया दुर्गा? घर का सारा काम चोड़कर तेरा सेवा करताय। ऊपर से तू नाराज होताय। मत बोल, हम नईं आयेंगा।" थोड़ी देर बाद फिर बोली, "समजा, जैसे हमने इसका मालिक कू हर लियाय! आखा दिन काम करता-करता कमर टूट जाताय तो रात कू

खिलाता-पिलाता जरा नींद आ गया तो इसने समजा हम बदमाश हो गयाय। दुनिया कितना खराब हे! हमारा छोकरी ई हमारा ऊपर शक करताय।" इतना कहकर गूगी फफक-फफककर रोने लगी।

दुर्गा आँखें फाड़े छत की ओर ताकती रही और माँ की बातें सुनती रही। यह बात उसकी समझ में नहीं आई थी। जैसे उसकी आँखें खुल गई। उसे अपने ऊपर ग्लानि हुई। उसे लगा, सचमुच उसने माँ के ऊपर ऐसा शक करके बड़ा अन्याय किया है। इसी बीच सागी आ गई तो गूगी उससे वही दुहराने लगी। तो सागी बोली—

"भला ऐसा बात बी किदर होताय गूगी? आसमान न फटे। धरती न पाताल जायेंगा? जैसा तू वैसा माणिक। चल चुप कर।"

"नई-नई, हम अब दुर्गा कू मुँह बी नईं दिखायेंगा। जो इस देहली पर पाँव बी रखें तो तू बोलना सागी।"

इतना कहकर गूगी उठी और चलने लगी। तो दुर्गा ने कहा—

"हम क्या बोला हे?"

"अउर तू क्या बोलताय छोकरी?"

दुर्गा चुप हो गई। सागी गूगी को समझाने लगी। उसी के कहने से दुर्गा ने दवा पी और उठकर गूगी की गोद में आ गिरी।

माँ-बेटी दोनों का मैल धुल गया।

इसी बीच नाली पूर्णिमा का दिन आ गया। सवेरे से ही बाड़े के लोग नारियलों में तरह-तरह के रंग-बिरंगे कागज के फूल लगाकर जलूस की तैयारी में लग गए। नंगे-धड़ंगे बच्चों में उत्साह की लहर दौड़ गई। स्त्रियों ने अपने मकान पोतकर आँगन में दरवाजों के बाहर तरह-तरह के चौक पूरे। बन्दनवारें बाँधी। कोली बाड़े के सब कोली मिलकर जलूस की तैयारी करने लगे। कीचड़ में गुलाब की तरह लोगों के चेहरे खिल उठे। लोग संबेल (छोटा बाजा), झाँगरी (मृदंग), शहनाई, और नफीरी लेकर इकट्ठे हो गए। जलूस चला। आगे-आगे पुरुष और पीछे-पीछे स्त्रियों का समूह गाता-बजाता चला। लोग गा रहे थे—

एरे भोला सर्वना वाला, वाला रे,
जाशी तू काशी का खंडाला, खंडाला,

माई पित्याची कावर खंडाला, खंडाला,
एरे भोला, सर्वना वाला—

दुर्गा जुलूस के साथ जा नहीं सकी तो द्वार पर खड़ी होकर देखती रही। उसका जी जुलूस के साथ उड़ा जा रहा था। नाली पूर्णिमा के दिन समुद्र-पूजन की बात सभी जानते हैं। माणिक न जाने कहाँ गया था! जुलूस उठते ही आ गया। मण्डली के साथ गाता चलने लगा। समुद्र के किनारे जाकर सबने नारियल चढ़ाए और खण्डाला देवता और समुद्र की पूजा की। तट की धूल माथे में लगाकर आँखों और शरीर पर पानी छिड़ककर कोलियों ने समुद्र-देव को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार रंग-बिरंगे नारियलों का प्रसाद चढ़ाया और गाते-बजाते लौट आए।

व्रत रखने वालों ने निरामिष भोजन किया, मन्दिरों में देवताओं के दर्शन किए और खुशी-खुशी दिन बिताया। दुर्गा कमजोर होने की वजह से व्रत न रख सकी। माणिक ने न रखने दिया। पर उसने दुर्गा के अच्छे होने की खुशी में खुद व्रत रखा। सागी ने खाना बनाया। वह इस समय तक अकेली होने के कारण माणिक के घर का काम करने लगी थी। माणिक का रहन-सहन सीधा होता जा रहा था। वह सवेरे उठकर मार्कीट जाता और जमकर काम करता। दोपहर के खाने का काम कुछ दिन सागी के सुपुर्द हुआ, पर एक दिन सागी भीड़ में गिर पड़ी। चोट लग गई। बेहोशी की हालत में लोगों ने उसे अस्पताल पहुँचा दिया। शाम को आकर जब दुर्गा ने सागी की बाबत पूछा तो माणिक बोला—

"सागी, सागी तो आज गया नई मार्कीट, हम नईं देखा।"

"तो किदर गया? ओ तो खाना लेकर इदर से गयाय। तब मे परता नई।"

"तूने उसकू बेजाई क्यों, बूढ़ा हे किदर दब गया होयेंगा साला तो माहिती बी नई होयेंगा।"

"इतना देर हो गयाय। आ तो जानाई पाहिजे।"

"दुर्गा सागी के लिए बेचैन हो उठी। उसे दुख हुआ कि उसे मैंने भेजा ही क्यों। सागी के न आने पर शाम की रसोई दुर्गा ने बनाई। वह

अब ठीक भी हो रही थी। उसका रंग निखर रहा था, पर कमजोरी थी। खाना खाने के बाद दुर्गा ने माणिक से फिर सागी के लिए कहा तो माणिक ने जवाब दिया—

"कहाँ ढूँढेंगा। बम्बई कोई छोटी जागा तो नई।"

"मग हम जायेंगा।"

"तू किदर जायेंगा? सो जा, सकाली देखेंगा।"

"हमकू नींद नई आयेंगा। माणिक, ओ बिचारा अनाथ बूढ़ा हे। हम उसका सहाराय। हमारा काम का वास्ते गयाय।"

माणिक थका हुआ था। उसने दुर्गा की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। सो गया। दुर्गा पहले बैठी सोचती रही। फिर जाकर अपनी मां से कहा। मां ने चुप्पी साध ली। 'कौन मरे किसी के लिए, जीती होगी तो आ जायगी।' वह बच्चों को दूध पिलाती सो गई। मांगा कहीं बाहर गप्प मार रहा था। निराश होकर उसने खुद ढूँढने का निश्चय किया। वह बाहर निकली। कोली बाड़ा जहाँ समाप्त होता है वहाँ पहुँचकर खड़ी हो गई। दाहिनी ओर लम्बी सड़क बम्बई को जाती थी। रात के समय भी सड़क पर बस, ट्राम, मोटर, टेक्सी दौड़ रही थीं। लोग किनारे-किनारे और सँभल-सँभलकर सड़क पार कर रहे थे। उसने चौक में खड़े एक सिपाही के पास जाकर पूछा। पर कुछ पता न लगा। एक-दो मील चलने पर दुर्गा को थकावट मालूम हुई। वह बैठ गई। फिर उठकर बौराई-सी चलने लगी। लोगों से पूछा, पर कोई जाने तब न। लोग हँसकर टाल देते और अपना रास्ता पकड़ते। अचानक बस के एक अड्डे पर उसने कान्ति को उतरते देखा। पहले डरी, कहीं कोई और न हो! वह उसके पास जाकर खड़ी हो गई। कान्ति ने देखा तो हैरान-सा खड़ा रह गया—

"तू किदर?"

दुर्गा ने सागी के खोने का सारा किस्सा सुना डाला।

"पछी?"

"सागी कू खोजना होयेंगा।"

"एम क्या! आ बम्बई हे। न जाने कहाँ होयेंगा? सकाली पुलिस

में पता लगायेंगा। तू जा। चाल तेरे कू घर छोड़ दूं।"

दुर्गा की आँखों में आँसू डबडबा आए। वह जमीन पर बैठ गई। लोग तमाशा जानकर इकट्ठे हो गए। लगे पूछने क्या बात है? कोई कहता—उड़ाकर लाया है साला। किसी ने व्यंग्य किया, मियां-बीबी की खट-पट है।

एक ने इसी बीच में कहा—

"साला इससे बदमाशी करना चाहता है और यह नहीं जाना चाहती।"

कान्तिलाल चुप था। किस-किसको जवाब देता! स्वयं दुर्गा को नहीं मालूम हुआ कि यह क्या हो रहा है, लोग क्या कह रहे हैं। वह उठी और कान्ति का हाथ पकड़कर चल दी। तभी एक ने आवाज कसी—"गुजराती छोकरा एक कोलिन कू भगाताय।"

यह सुनते ही लोग चिल्लाए और पुलिस आ गई। उसने ले जाकर पास के थाने में दोनों को बन्द कर दिया। पुलिस ने कान्ति और दुर्गा के बयानों पर भरोसा न करके उन्हें सवेरे तक के लिए थाने की कोठरी में डाल दिया।

दुर्गा को तो जैसे काठ मार गया। उसकी बोलती बन्द हो गई। वह सोच रही थी, माणिक सुनेगा तो क्या कहेगा। कान्तिलाल खुद परेशान था। क्या करे, क्या न करे। उसके पास फूलों का एक गजरा था। वह पुलिस ने छीन लिया और दोनों को अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिया।

रात को जब माणिक की आँख खुली तो उसने देखा दुर्गा नहीं है। उसने इधर-उधर देखा। कोठरी से बाहर निकला। ससुराल गया, पर वहाँ सब लोग सो रहे थे। कहीं-कहीं कुत्ते भौंकते थे, बाकी सब सुनसान था। जो एक आदमी इधर-उधर जाते मिले उनसे पूछने की माणिक को हिम्मत नहीं हुई। न जाने कोई क्या समझे! पर दुर्गा नहीं मिली। वह एक लेम्प के नीचे खड़ा होकर सोचने लगा। हैरान होकर वह लौट आया और बैठकर सोचने लगा। एकाएक उसे ध्यान आया कि वह कहीं सागी को ढूँढने बम्बई तो नहीं गई। पर कहाँ गई होगी। इसी उधेड़-बुन में

बैठा वह बीड़ी फूँकता रहा। फिर सो गया।

दूसरे दिन जब दुर्गा लौटी तो माणिक मार्केट जा रहा था। माणिक ने पूछना चाहते हुए भी कुछ नहीं पूछा। दुर्गा अपनी बीती कहना चाहती थी, पर माणिक ने पूछा नहीं तो वह क्या बताती। उसे मालूम था कि माणिक नाराज होगा, पर उसे रात को अपनी नासमझी से जो कष्ट हुआ, उसमें माणिक का हाथ न होते हुए भी जो सहानुभूति उसे माणिक से चाहिए थी वह उसे नहीं मिली। आखिर यह सब माणिक के कारण ही तो हुआ। न सागी माणिक के लिए खाना ले जाती न यह सब होता।

दुर्गा चुपचाप आकर चटाई पर बैठ गई। रात में उसे नींद भी नहीं आई। वह रात की बातें सोचती रही। अजनबी जगह, अचानक आ पड़ने वाली मुसीबत। पुलिस की जंगलेदार कोठरी, बाहर से ताला लगा हुआ। बाहर पुलिस का एक आदमी पहरा दे रहा था। क्या जाने, चाहता तो वह भीतर घुसकर उसे परेशान कर सकता था। न जाने कब घुस आवे? न जाने क्या हो? पुलिस का नाम सुनकर वह पहले ही डरती थी और आज तो उसे बिन-माँगे मुसीबत मिली। रह-रहकर उसका मन धड़क उठता। उसे अपने इस काम से ग्लानि भी कम न थी। वह अपने को धिक्कारती। अपनी मूर्खता को कोसती। फिर कान्तिलाल का उसे ध्यान आया। वह भी उसी के लिए मुसीबत में पड़ा। पर वहीं दूसरा आदमी भी कोठरी में था, साथ की कोठरी में। बातचीत सुनाई दे सकती थी। कान्ति थोड़ी देर बाद उस आदमी से बातें करने लगा। कुछ देर तक दुर्गा को आवाज सुनाई दी फिर दोनों चुप हो गए। शायद सो गए। पर दुर्गा को नींद नहीं आई। थाने के घण्टे-पर-घण्टे बज रहे थे। सामने वाला पहरेदार कभी बैठ जाता कभी घूमकर पहरा देने लगता। एक बार उसने दुर्गा की कोठरी के जंगले के पास खड़े होकर उसे देखा। देर तक खड़ा रहा। इससे दुर्गा और भी घबरा गई। उस समय उसे नींद का झोंका आ रहा था, लेकिन सामने मोटे-ताजे खूँख्वार पहरेदार को देखकर उसकी नींद उड़ गई। वह उठकर बैठ गई। पहरेदार ने धीमी आवाज में कहा—

"भाग रही थी इसके साथ, क्यों? औरत उसी समय भागती है जब······में खुजली उठती है। साला बदमाश।"

पहरेदार बहुत-कुछ बकता-झकता रहा और दुर्गा का खून सूखता जा रहा था। उसे रात ऐसी लगी जैसे इसका कभी अन्त ही नहीं होगा और शायद इससे बुरी जिन्दगी और कोई नहीं होगी। न जाने उसके कौन से पाप का फल है।

माणिक चला गया। सागी का कुछ भी पता न लगा। वह ऊबी-ऊबी बैठी रही और वहीं चटाई पर सो गई। बीच में गूगी ने आकर जगाया तो भी वह गुम-सुम बनी रही। पीला, फक रंग, फटी-फटी आँखें देखकर गूगी ने हिलाकर पूछा—

"काय रे दुर्गा, काय हुआ?"

दुर्गा फिर भी न बोली।

गूगी को लगा जैसे दुर्गा को होश नहीं है। उसने चाय बनाकर पिलाई और पास बैठकर सब समाचार पूछा।

होश में आने पर दुर्गा ने ब्योरेवार सब घटना सुना दी। इसके बाद बोली—

"न जाने माणिक क्या कहे?"

इसके साथ ही फफक-फफककर रो पड़ी। गूगी चुपचाप दुर्गा के सिर पर हाथ फेरती रही। दोनों दुखी थीं।

सागी का फिर भी कुछ पता न लगा। शाम को माणिक लौटा तो उसका चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। आते ही बीसियों गाली देते हुए बोला—

"मजा तो खूब आया होगा कान्ति के साथ। मुसरी, हरामजादी। जा काला मुँह कर। हम नई रखेंगा अब तुजे। सागी के बहाने मजा लूटने गई थी।"

इसके साथ ही उसने दुर्गा की लात-घूँसों से खूब मरम्मत की। दुर्गा चुपचाप पिटती रही, जैसे बड़ी कसूरबार हो।

"मैंने कान्ति के बच्चे को बी खूब माराय। याद करेंगा साला।" माणिक मार-पीटकर बाहर निकल गया।

रात के बारह बजे के करीब माणिक लौटा तो शराब में धुत्त। दर-वाजे के बाहर नाली के पास गिर गया। दुर्गा जो आँख फाड़े बैठी थी आहट पाकर बाहर आई तो देखा माणिक बेहोश पड़ा है।

वह उसे घसीट लाई और चटाई पर लिटा दिया। दूसरे दिन होश आने पर जब दुर्गा ने माणिक के सामने चाय का प्याला लाकर रखा तो उसने लात मारकर प्याला तोड़ते हुए कहा—

"बस, निकल जा हमारा घर से। मेरे कू तेरे से कोई वास्ता नई है।"

दुर्गा माणिक का मुँह देखती बोली—

"काय ?"

"तुमरी हरामजादी, कान्ति का पास रहकर हमसे बात करताय।"

तड़ककर दुर्गा ने उत्तर दिया—

"झूट है।"

"कान्ति खुद बोलताय।"

"ओ झूट बोलताय।"

"मग तू सच बोलताय, साला ?"

माणिक उठकर जाने लगा तो दुर्गा बोली—

"साब झूट है माणिक। हम सच बोलताय।"

"नई अब तुजकू कान्ति का पास जाकर रहने काय। जा।"

कहकर उसने दुर्गा को एक लात मारी। क्रोध से दुर्गा की आँखें जलने लगीं। वह सफाई देना चाहती थी, कुछ न कह सकी। केवल काँपती रही, जैसे सारा शरीर जल उठा हो।

"हम तेरे हाथ का पानी नई पीयेंगा।"

माणिक उठकर चला गया। दुर्गा देखती रही। उसने क्रोध में आकर धड़-धड़ करके कई बार अपना सिर जमीन से दे मारा।

यह दूसरा दिन था जब घर में कुछ नहीं बना। फूटा प्याला और चाय वैसी ही कमरे में बिखर रही थी। आग जलकर बुझ चुकी थी। बरतन इधर-उधर लुढ़के पड़े थे। रोते-रोते उसके आँसू सूख गए थे। वह मूक, जड़ की तरह चटाई पर बैठी थी। उसकी समझ में कुछ भी नहीं

आ रहा था, "क्या करे।"

कष्ट और दुख के मारे उसका कलेजा फटा जा रहा था। पर जैसे उपाय कोई नहीं था। कभी उसे कान्ति पर क्रोध आता, कभी अपने पर और कभी माणिक पर।

माणिक के बुरे होने पर भी वह उसे छोड़ना नहीं चाहती थी। जैसे माँ की यह बात उसे याद थी कि "माणिक धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा।" जहाँ माणिक का क्रोध उसे बुरा लगता था वहाँ उसका प्यार भी वह जानती थी। उसका भोलापन भी उसे प्रिय था। बिखरे बाल, उलझी लटें, मैली और पसीने-भरी चोली, मार खाने से इधर-उधर फटी धोती। मुँह, पीठ, हाथों में पिटाई के नीले दाग। माथे में धक्का खाकर जमीन से टकरा जाने पर एक गड्ढा। विवशता, बेचैनी से व्यस्त चेहरा। देखकर लगता था जैसे प्रेत-बाधा से पीड़ित कोई स्त्री हो। क्रोध-शोक से वह विह्वल हो गई। लांछना से जो धक्का लगा, वह पागल-सी हो गई। दिन-भर आँखें फाड़े पड़ी रही—गुम-सुम, चुपाचाप, असंज्ञ-सी। इसी समय माँ ने खबर दी, सागी अस्पताल में मर गई।

दुर्गा को एक और धक्का लगा। वह कुछ देर होश में आई। पर बोली कुछ भी नहीं। माँ की बात सुनकर उसे देखने लगी। देखती रही। न उसने कुछ पूछा, न जवाब ही दिया। गूगी एकदम चिल्लाकर बोली—

"हमारा छोकरी पागल हो गयाय। हाय, हम अबी क्या करेंगा। पागल हो गयाय, दुर्गा।"

थोड़ी देर में ही औरतों, बच्चों की भीड़ माणिक की झोंपड़ी में आ गई। गूगी रो रही थी। औरतें चुप दुर्गा को देखती रहीं। कुछ ने गूगी को तसल्ली दी। पर दुर्गा को जैसे कोई होश नहीं था। वह एक-सी फटी नजर से सबको देखती जसे देख कुछ भी नहीं रही हो। मांगा समुद्र में गया था। दो दिन से लौटा नहीं था। कोली वाड़े में स्त्रियों का झुण्ड माणिक के घर की तरफ टूट पड़ा। बच्चों को बाहर भगाया तो उनकी जगह भी स्त्रियों ने ले ली। कोई कुछ कहता। कोई कुछ। कोठरी में साँस लेना मुश्किल हो गया। पसीना दुर्गन्ध से सारा कमरा भर गया।

मगर दुर्गा चुप थी। किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था, क्या करे। एक बार गूगी के जी में आया माणिक को खबर दे, पर माणिक से वह नाराज थी, इसलिए चुप हो गई। चिल्लाती हुई गूगी बोली—

"अरे लड़ाओ किसी कू, हमारा छोकरी जाताय। बुलाओ, बुलाओ। हाय, हम क्या करेंगा, नाश हो इस माणिक का। राम करे हमारा छोकरी से पहले ए मर जाय।"

गूगी चिल्लाती रही। औरतें आतीं और देखकर चली जातीं।

पड़ोस के कोली ने सुना तो वह भीड़ को ठेलता दौड़ा आया और पास के एक वैद्य को बुला लाया।

वैद्य ने देखा तो बोला—

"मेरे बस की बीमारी नहीं है। किसी बड़े डाक्टर को बुलाकर दिखाओ, या अस्पताल ले जाओ।" जाते-जाते वैद्य बोला, "इसे हवा में लिटाओ। बहुत भीड़ न करो।"

पर भीड़ वैसी ही रही। शाम तक दुर्गा, जो अब तक बैठी थी, गिर पड़ी। स्त्रियाँ माणिक को कोसती चली गईं। केवल दो-तीन रह गईं। रात को कोली बाड़े में घुसते ही माणिक से किसी ने कहा कि उसकी औरत पागल हो गई है तो बोला—

"हो जाने दो साला को पागल। हम क्या परवा करता हूँ?"

"शराब पिये माणिक लड़खड़ाता गाली बकता चला आ रहा था। झोंपड़ी के दरवाजे पर डगमगाता खड़ा होकर कहने लगा—

"हमकू कोई परवा नई। हम साला किसी का परवा नई करताय। हटो हम देखूँगा कइसा पागल हो गयाय।" और धड़धड़ाता भीतर घुस आया। जोर-जोर से दुर्गा को गाली देने लगा। गूगी ने कुछ कहा तो उसका हाथ झटक दिया। वह पीछे हट गई। फिर गुमसुम होकर दुर्गा को देखने लगा। धीरे-धीरे जैसे नशा उतरा तो रोकर दुर्गा के ऊपर गिर पड़ा। फिर एकदम बाहर निकल गया।

डॉक्टर आया तो देखकर बोला—

"शॉक लगा है, ग्रेट शॉक। वेरी डेंजरस केस। बहुत देर हो गया। मैदान में लिटाओ। बचने का कोई उम्मीद नहीं है। दवा ले आओ।"

डॉक्टर अपनी फीस लेकर चला गया।

दूसरे दिन सवेरे के आठ बजे वह चल बसी। उसी दिन से दुर्गी मांगा ने माणिक से बोलना छोड़ दिया। माणिक बहुत दिन तक घूमता रहा। न उसे खाने की चिन्ता थी, न सोने की। पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त, ग्लानि से भरा उसका जीवन भार हो गया। वह दिन-भर समुद्र के किनारे बैठा रहता। वहीं सो जाता। बहुत दिनों तक उसने झोंपड़ी की शकल नहीं देखी।

कान्ति से फिर मेल होने पर उसे मालूम हुआ, दुर्गा निर्दोष थी। उसी ने कान्ति की बात को गलत समझा, पर अब क्या हो सकता था।

× × ×

उन्हीं दिनों उदासी दूर करने के लिए माणिक मछली मार जहाज पर नौकर होकर बाहर चला गया।

रत्ना और माणिक

जैसे-ही-जैसे रत्ना माणिक की तरफ खिचती जा रही थी वंशी का मन बैठा जा रहा था। वह एकान्त में बैठकर घण्टों सोचती, पर कुछ समझ में नहीं आता था। रत्ना को जो उसने पहले-पहल कुछ छूट दी तो वह बेकाबू हो गई। वंशी की बात सुनती तो बड़बड़ा उठती। खरी-खोटी सुनाकर रूठने का रूप भर लेती। उस दिन घर में काफी कलह हुआ। बातों-बातों में वंशी को गुस्सा आया तो उसने रत्ना के मुँह पर एक थप्पड़ जड़ दिया। यह पहला मौका था जब वंशी ने रत्ना को पीटा हो। बचपन में पीटा हो, पर इतनी बड़ी रत्ना को पीटने का फल विचित्र हुआ। रो-रोकर उसने घर उठा लिया। आँसू थमते ही न थे। कपड़े उसने फाड़ डाले। झूले पर कई बार सिर पटक-पटक दिया, जिससे माथे में गूमड़े पड़ गए। आँखें सूजकर लाल हो गई। कलाई की चूड़ियाँ तोड़ डालीं। माँ पहले तो चुप रही। गुस्से में उसने खयाल न किया। पर थोड़ी देर बाद जब उसे भूल मालूम हुई और बेटी के प्रति प्रेम उमड़ा तो उसे बड़ा दुख हुआ। फिर लड़की की हालत देखकर उसने रोते-रोते कई बार मनाया, पुचकारा, माफी माँगी। लेकिन रत्ना ने जो रूप रखा सो रखा। उसका रोना बन्द नहीं हुआ। हिचकियाँ बँध गईं। रत्ना जितनी रोती वंशी का हृदय उतना ही अधीर होता। वह मनाती। विट्ठल भी बीच में पड़ा। उसने मनाया, समझाया, पर कुछ फल न हुआ। इट्ठा कोने में बड़बड़ाती आँसू गिराती रही। उसने भी रत्ना की खुशामद की। पर रत्ना चुप न हुई। न उसने खाया, न पिया। इट्ठा चाय बनाकर लाई तो लात मारकर गिरा दी और खाने की थाली फोड़ दी।

दिन के बारह बजे, एक बजा, दो, तीन-चार का समय हुआ, उस समय भी रत्ना का अपरिग्रह बना रहा। शाम को माणिक आया तो बिट्ठल ने बाहर-ही-बाहर कह दिया—

"रत्ना आज बीमार है।"

वंशी ने दरवाजे में रोककर कहा—

"ए लगन नई होयेंगा माणिक, तुम जाओ। हम रत्ना की शादी नई करेंगा।"

माणिक कुछ सामान लेकर आया था जो उसने एक थैले में रख छोड़ा था। इतना सम्बन्ध बढ़ जाने पर उसे विश्वास हो गया था कि अब शादी अवश्य होगी। पर उसने बिट्ठल वंशी का यह रूप देखा तो चकित रह गया। जैसे पैरों के नीचे से स्वप्नों का महल ढह रहा हो। थोड़ी देर बाद उसने कड़े स्वर में पूछा—

"क्यों?"

"नईं शादी नई होयेंगा। रत्ना बम्बई नईं रहेंगा। जाओ।"

माणिक कुछ देर फिर खड़ा रहा। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसके भीतर विद्रोह उठा—"कह दे कि मैंने पचासों रुपये खर्च किये हैं। इतना समय उसको खुश करने में बरबाद किया है। अब कैसे यह शादी रुक सकती है।" पर गुस्सा पी गया। उसे मालूम था यह सब फिजूल है। कहूँगा तो वंशी उतना रुपया मेरे सामने फेंक देगी फिर वह क्या करेगा। थोड़ी देर बाद बोला—

"हम बइठ तो सकताय।"

बिट्ठल की जैसे जान-में-जान आई।

"हा हा, बईठ।"

बिट्ठल ने चटाई लाकर बिछा दी और माणिक बैठ गया। वंशी को यह पसन्द नहीं आया। उसने तत्काल कहा—

"बिट्ठल तू जा, जागला नाव से आया होयेंगा। मच्छी उठा ला।"

बिट्ठल वंशी की बात नहीं समझा। उसने तुरन्त जवाब दिया—

"अबी किदर से, ओ तो सदा रात गये आयेंगा।"

"नईं नईं ओ आगयाय, तू जा।"

विट्ठल फिर भी कुछ नहीं समझा। वह बैठा ही रहा। वंशी भीतर चली गई और विट्ठल को भीतर बुलाकर डाँटती हुई बोली—

"तू जाता क्यों नईं? किदर बी जा, पन इदर नईं रहेंगा।"

विट्ठल सीधा माणिक की तरफ देखता चला गया। माणिक फिर भी बैठा था। वंशी इसी बीच चाय का एक प्याला लाकर माणिक के पास बैठती हुई बोली—

"ये शादी नईं होयेंगा माणिक, हमने नक्की कियाय।"

"हम कोई कसूर कियाय क्या?"

माणिक को खयाल आया कि उसने रत्ना के साथ रहते हुए उसके कन्धे पर हाथ रख दिया था। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर चूम लिया था। शायद यह बुरा हुआ है। रत्ना ने वंशी से शिकायत की होगी।

वंशी ने गम्भीरता से हाथ मसलते और नाखूनों में लगे मैल को दूसरे हाथ के नाखून से खुरचते हुए कहा—

"हम बरसोवा में बसने वाला जमाई चाहताय। हमारा छोकरी बरसोवा नईं छोड़ेंगा। जिससे बी लगन होयेंगा ओ बरसोवा रहेंगा। हमारा मन का मरजी माफिक होकर रहेना होयेंगा। हम बरसोवा में ई ब्याह करेंगा।"

माणिक जो अब तक कुछ भी समझ नहीं पा रहा था बात का सूत्र पाकर बोल उठा—

"हमकू बी एक माँ की जरूरत हे, एक बाप का।"

"बरसोवा रहना होयेंगा। इदर मच्छीमार का काम करना होयेंगा। बम्बई...."

"हम मच्छी नईं मार सकेंगा। ए काम हमकू पसन्द नईं हे। हम होटल खोलेंगा। रुपया कमायेंगा। मोटर रखेंगा।"

"और एक कप?"

"नईं बस।"

"मेरे कू काम हे। हम बाहर जाताय।"

"पन क्या हम एक बार रत्ना से...."

"नई, अब ओ तेरे कू नई मिल सकेंगा।" वंशी ने उठते हुए कड़-कसे स्वर में उत्तर दिया और माणिक के जाने का इन्तजार करने लगी। माणिक फिर भी बैठा रहा। वंशी दरवाजे के ऊपर का किनारा पकड़-कर खड़ी रही। दोनों चुप थे। अन्त में माणिक ने कहा—

"वंशी माँ, ये पइले सोचने कू था। पन हम बरसोवा आया करेंगा। कौन मना करताय साला कि नईं आयेंगा। ओ दिन घूमते रत्ना कू ए साड़ी पसन्द आया तो हम खास दुकान जाकर ले आया हूँ। फोकट का माल नईं है। नकद दाम दिया है, पचास रुपया। बाकी तुमकू जो पसन्द पड़े ओ करो। लड़की तुमारा, हम क्या बोलूँ। इतना हम कह सकताय, लड़की कू तकलीफ नईं होयेंगा। मजा करेंगा, मजा।"

माणिक ने थैले में से साड़ी निकालकर वंशी के सामने रख दी। वंशी स्त्री-स्वभाव के अनुसार साड़ी देखने लगी। वह भूल गई कि अभी-अभी माणिक से क्या कहा था।

"पचास की ?"

"नकद, रद्दी माल नईं है। माल देखो। माल का दाम करो।"

वंशी को लगा जैसे माणिक साड़ी बेचना चाहता हो। उसने लपेट दी और बोली—

"दाम बहुत नईं है।"

"प्रेजंट है।"

"अबी नईं।"

"रखिये न अबी।"

उसी तरह दरवाजे के पास खड़ी होकर वंशी बोली—

"नईं।"

मुँह निपोरकर, ओठों पर जीभ फेरकर माणिक ने कहा—

"लगन हो जाय तो हम अपना काम देखूँ।"

"दो-एक दिन बाद जवाब देंगा," कहकर वंशी भीतर चली गई।

माणिक थोड़ी देर बैठा रहा। वह रत्ना को पाना चाहता था। उसने इधर-उधर ताका, फिर उठकर चला गया।

× × ×

आखिर एक दिन रत्ना का विवाह माणिक से हो गया। माणिक ने एक हजार नकद दिया। वंशी पच्चीस सौ माँगती थी। पर रत्ना का मन देखकर वह मान गई। वंशी इस बात पर राजी हो गई कि रत्ना सप्ताह में दो दिन बरसोवा रहा करेगी; जरूरत पड़ेगी तो ज्यादा दिन भी। साथ में माणिक भी आकर बरसोवा में अपना व्यापार करेगा। इन दिनों बरसोवा की मछली अलग मार्कीट में बिकने जाती थी। अब ने माणिक लोगों से सारी मछलियाँ लेकर इकट्ठी मछली बेचने मार्कीट जाया करेगा। व्याह बड़ी धूम-धाम से हुआ। बरसोवा के सभी लोगों को बुलाकर खाना खिलाया गया। अंग्रेजी बाजे बजे। मकान के बाहर के मैदान में शामियाना लगाकर दो दिन दावतों का दौर रहा। कढ़ी, पाला, पटनी, कोलवा, पोम्फ्रेट, राभास, हलवा, सभी तरह के पदार्थ बरातियों को दिये गए। माणिक के कोई था नहीं तो गूगी, मांगा तथा अन्य कोली बाड़े के लोगों की खुशामद करके वह उन्हें पकड़ लाया। काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। उन्हीं दिनों जब वंशी को मालूम हुआ कि गूगी की लड़की माणिक को व्याही थी तो उसने उससे एकान्त में ले जाकर पूछा तो गूगी ने सब सुनाते हुए कहा—

"अब टीक हो गया होयेंगा तो बोल नई सकता। पहले तो ए राक्षस था, राक्षस। इसी ने हमारा छोकरी कू मार डाला।"

वंशी का माथा ठनका। उसने विस्तार से सब पूछ लिया। थोड़ी देर चुप रहकर उसने विट्ठल से कहा तो वह बोला—

"अरे अब टीक हो गयाय। तू रत्ना से बोल तैयार रहे।"

"क्या ?"

"उसका ऊपर हकूमत करे और क्या। जैसे तू मेरे पर जादू कियाय वंशी।"

वंशी गम्भीरता में भरी हुई थी, मुस्करा दी और चली गई।

रत्ना कुछ दिनों के लिए पहली बार ससुराल आई। बम्बई पहुँचते ही उसे मालूम हुआ कि जिस मकान में माणिक रहता था वह यह मकान नहीं है। नीचे तल्ले की एक अन्धेरी कोठरी है जिसमें पचासों परिवार रहते हैं। न वहाँ कुरसी है न मेज, न झूला। मैला-सा एक

. गद्दा बिछा है जिस पर एक सफेद चादर बिछा दी गई है। कोठरी में दस-पांच एलमीनियम के बरतन, एक सिगड़ी, एक तरफ बोरी में कोयला जिसकी धूल गद्दे तक आती है। अलमारियों में मोमबत्ती की वन्दन-वार। दीवार में जहाँ-तहाँ चिपकी सिनेमा-स्टारों की तस्वीरें। लगता था, कोठरी बरसों से न पुती है, न सफाई हुई है। कोठरी में सड़क की ओर एक जंगला था जहाँ से प्रकाश आता था। रत्ना आई तो गूगी भी साथ आई, उसके बच्चे भी। मांगा भी आया। माणिक ने सबके लिए पास के होटल से चाय मँगाई। सब लोग थोड़ी देर बैठकर चले गए। रत्ना ने समझा शायद गूगी माणिक की कोई रिश्तेदार है, पर जब वह जाने लगी तो माणिक ने हाथ जोड़कर उसे भी विदा कर दिया। थोड़ी देर इधर-उधर की बातों के बाद बच्चे और औरतें भी चली गई। गूगी लौट आई और माणिक से चिल्लाकर बोली—

"दुर्गा कू तू माराय, अब इसकू प्यार से रखना, हा ?"

"कैसा बात बोलताय काकी ?"

"टीक बोलताय हम। वंशी से बोल दियाय।"

"बोला तो टीक किया, जा।"

माणिक दरवाजे तक आकर उसका जाना देखता रहा फिर बड़-बड़ाता गद्दे पर बैठी रत्ना के पास आ गया।

गूगी की बातचीत को माणिक रत्ना से बचाना चाहता था, पर उस दुष्टा ने रत्ना के सामने ही कह डाला। इससे माणिक जरा सकुचाया और सोचने लगा न जाने वंशी से इसने क्या कह दिया है और अब रत्ना के सामने भी कह डाला। यह बुरा हुआ। माणिक मानता था दुर्गा की मौत में उसका जरा भी हाथ नहीं था फिर भी गूगी ने यह सब उसके सिर थोपा तो वह चुप रहा। लेकिन अब भी यह चुड़ैल डंक मारने से बाज़ नहीं आई। इसका उसे थोड़ी देर तक दुख हुआ। पर अब तो शादी हो गई, यह सोचकर वह निश्चिन्त हो गया। वंशी अब कुछ भी नहीं कर सकती। उसके भोले मन में दुर्गा के प्रति जो स्नेह का बीज था वह सब अब रत्ना के ऊपर उंडेल देने को उसका मन उत्सुक हो उठा। इसके साथ ही उसने निश्चय किया, वह कभी रत्ना से नाराज न होगा।

सदा उसके मन की करेगा।

जब रत्ना के पास आकर बैठा तो सम्पूर्ण समर्पण का भाव उसके मन में जाग उठा। रत्ना नीची निगाह किये गद्दे की चादर पर नाखून फेर रही थी। उसकी आँखों में आँसू की बूँदें छलछला उठती थीं। वह सोच रही थी, क्या यह ठीक हुआ। क्या यही बम्बई है जिसका स्वप्न माणिक ने दिखाया था। उसे लगा इससे तो उसका बरसोवा का मकान कहीं अच्छा है। यह सब क्या है? क्या जिन्दगी-भर उसे इसी तरह रहना होगा—एक ही कोठरी में, जहाँ से न उसका प्यारा समुद्र ही दिखाई देता है न वैसी आकाश की घटाएँ, उमड़ते बादलों की रेशमी लहरें। नावों की जगह आदमियों की भीड़ चल रही है। यह कैसा मकान है, कैसी जगह है? उसे सचमुच धोखा हुआ। माणिक से ब्याह उसी के कहने से हुआ। वंशी ने तो उसे मना किया था। वही नहीं मानी। पर अब क्या हो सकता है? एक बार जी में आया कि सब छोड़कर बरसोवा चली जाय। अभी लौट जाय।

माणिक ने प्यार-भरी मुस्कराहट से रत्ना की ठोडी ऊँचे करते हुए पूछा—

"क्या सोचताय रत्ना?"

रत्ना ने कोई जवाब नहीं दिया। माणिक की ओर डबडबाई आँखों और फीकी निगाह से देखा और आँखें जमीन में गड़ा लीं, जैसे माणिक की इस बात का कोई उत्तर नहीं देना चाहती। उसने फिर एक बार बोलना चाहा, पर रत्ना चुप ही रही। माणिक उठा और बाहर जाकर लौट आया। थोड़ी देर में चाय आई तो गठरी में से कुछ मिठाई निकाल-कर रत्ना के सामने रखते हुए उसने कहा—

"लो रत्ना, चहा चलेंगा।"

और अपने हाथ से उसने चाय तैयार की। रत्ना ने अनमने भाव से चाय पी ली, पर मिठाई उसने छुई तक नहीं, हालांकि माणिक ने कई बार कहा। माणिक ने खुद चाय पी और मिठाई खाकर बोला—

"आज हम कितना खुश हूँ रत्ना। बड़े जतन से तुमकू पाया। बुरा मत मानना। सब टीक होगा, हा। सब ठीक हो जायेंगा। हम आज शाम

का शो देखेंगा। बम्बई की सैर करेंगा।....”

बातें करते हुए माणिक के होंठ खुल गए। पान की लाली और मैल से पीले दाँत बाहर चमकने लगे। तेल से चुपड़े मुँह का काला रंग कामुकता की लाली से और भी विचित्र हो उठा। उसकी हर चेष्टा में बच्चों की-सी चुलबुली हो गई। कभी वह रत्ना के हाथ की अंगूठियों को छेड़ता, कभी बातों-बातों में उसके पैरों पर हाथ फेरता। कमरे के सामने रास्ता होने के कारण चाल के लोग धम-धम करते उतरते-चढ़ते दीख रहे थे। कभी-कभी कोई उत्सुकतावश कमरे की ओर झांक लेता। माणिक आहट सुनकर चुप हो जाता। फिर अपने काम में लग जाता। जैसे ही उठकर सामने के किवाड़ बन्द करने चला तो रत्ना बोली—

“क्या करताय, दरवाजा मत बन्द करो।”

माणिक उठा और फिर बैठ गया। वह जंगले से बाहर झांकने लगा। छः-सात फुट की लम्बी-चौड़ी कोठरी में कभी वह टहलने लगता, कभी फिर गद्दे पर बैठकर रत्ना की ओर देखने लगता। रत्ना कुछ भी बोल नहीं रही थी। थोड़ी देर बाद फिर उठा और चाय का आर्डर दे आया। इस बार रत्ना ने चाय छुई तक नहीं। वह जड़ की तरह बैठी रही। माणिक ने चाय पीकर बिजली जला दी और कपड़े उतारकर बाल्टी पानी भरने चला गया। इसी बीच रत्ना ने कोठरी को चारों तरफ से देखा। कोठरी से सटा दो-तीन हाथ का बरामदा, जहाँ रसोई के लिए जगह थी। एक ओर कोयलों का ढेर पड़ा था। एक सिगड़ी जो नई खरीदी गई थी। उसके पास बुहारी थी। दो-तीन बर्तन इधर-उधर उलटे-सीधे विचरण कर रहे थे। कोठरी में एक ओर एक सन्दूक था। उसीके ऊपर रत्ना का एक सन्दूक, दो गठरियाँ और कोने में बरतनों की बोरी रखी थी जो वंशी ने दी थी। उसने रूमाल से मुँह पोंछा और किवाड़ भेड़कर लेट गई। कोई बीस मिनट बाद बड़बड़ाता माणिक लौटा—

“साला पानी बी तो नई मिलताय, गर्दी-का-गर्दी खड़ा रहताय। हम मकान छोड़ दूँगा।”

हाँफते हुए उसने लाकर बालटी बरामदे में रख दी। गद्दे पर पानी

की बूँदें उछलकर गिर पड़ीं। रत्ना उठकर बैठ गई। शाम होते-होते माणिक और रत्ना सिनेमा देखने चले गए।

तीन-चार दिन बाद विट्ठल आकर रत्ना को ले गया। सारे बरसोवा की कोलिनें रत्ना को देखने-मिलने आईं। पर रत्ना ने न प्रसन्नता दिखाई, न नाराजी। वह गुमसुम बनी बैठी रही। वंशी ने सबका स्वागत सत्कार करते हँसी-खुशी सबको विदा दी। रत्ना को जब समय मिलता वह अपने कमरे में आकर खिड़की के सहारे समुद्र की ओर ताका करती। कभी शाम के समय वंशी के साथ या अकेली तट पर चली जाती और वहाँ चुपचाप बैठी समुद्र की लहरें गिना करती। उसे लगता जैसे समुद्र उससे नाराज है। इसीसे वह समुद्र से हटकर बम्बई फेंक दी गई है। ब्याह के बाद इन पिछले चार-पाँच दिन तक उसे अगर किसी की याद ने अधिक सताया तो बरसोवा के समुद्र ने। लौटकर बरसोवा आते ही माँ ने ले जाकर जब उसे समुद्र को प्रणाम करवाया और उसकी पूजा की तो उसे लगा न जाने कितने युगों के बाद वह अपने देवता के दर्शन कर रही है। उसने आँखों में आँसू भरकर अपने हृदय के स्नेह की दो बूँदें खारे समुद्र में और मिला दीं।

रत्ना से सभी बड़े-बूढ़े परिचित मिले। केवल यशवन्त ही नहीं आया, न उसका बाप नाना, न माँ हीरा। बिट्ठल दो-एक बार नाना को मनाने भी गया पर न तो वह प्रेम से पहले की तरह मिला न उससे कोई खास बात ही कही। यशवन्त अब अधिकतर समुद्र में रहता। कभी-कभी दो-दो तीन-तीन दिन बाद बरसोवा लौटता। नाना और हीरा मछलियाँ लेकर मार्कीट जाते। पर अब वे बम्बई न जाकर अन्धेरी और कुर्ला के बीच वायव पुरी में अपनी मछलियाँ बेच आते। पिछले दिनों में वे बम्बई न जाकर कभी दादर और आसपास ही मच्छी बेचने लगे। वहीं आढ़ती आकर मछलियाँ इकट्ठी करके बड़े मार्कीट में बेचने को ले जाते।

बरसोवा में यशवन्त न किसी के पास बैठता न कहीं जाता। या तो वह घर पर पड़ा रहता या फिर समुद्र में मछली मारने निकल जाता। रत्ना की शादी के बाद न कभी किसी ने उसे हँसते देखा न बढ़-बढ़कर बातें करते। वह कभी-कभी मन बहलाने के लिए मड-टापू के किनारे

नाव बाँधकर बैठा रहता।

वंशी ने रत्ना को मौन गुमसुम देखकर कई बार माणिक के व्यवहार के सम्बन्ध में बात चलाई, कई बार उससे पूछा, पर रत्ना के मौन ने उसे किसी प्रकार का आभास नहीं दिया। फिर भी उसे लगा कि लड़की खुश नहीं है। उसकी बेचैनी बढ़ रही थी। बिट्ठल से पूछने पर उसने वंशी को बताया, "चाल में छोटी कोठरी है। मेरा मन भी एक ही घण्टे में ऊब गया। लगता था कि ज्यादा दिन रहने पर मैं बीमार हो जाऊँगा।"

अब दो-तीन दिन बाद माणिक आया तो वंशी ने उससे यही बात कही तो वह बोला—

"हम मार्कीट के पास घर ले रहा हूँ। दो कमरा होयेंगा।"

"तू इदर काय नईं रैता ?"

"जास्ती दूर हे। पन काम तो वम्बई करना होता हे न।"

"आखा लोक तो हर रोज बम्बई जाताय, तू बी जाना।"

माणिक थोड़ी देर सोचकर बोला, "नईं बम्बई हम नईं छोड़ सकेंगा। बरसोवा हमकू पसन्द बी नई हे। होटल कैसे खोलेंगा ? हम जल्दी ही होटल खोलने वाला हूँ।"

"होटल तो इदर बी खोला जा सकेंगा—अँधेरी, खार, माहिम, किदर बी।"

"देख माणिक भाई, हमारा छोकरी बम्बई में खुश नई हे। हम उसकू बम्बई नईं बेजेंगा।"

माणिक जब रत्ना से मिला तो उसने कोई बात नहीं की। माणिक ने बताया—

"होटल खोलने का बात हे। एक पार्टनर मिलाय। आधा रुपया ओ लगायेंगा, आधा हम।"

रत्ना ने कोई उत्तर नहीं दिया। माणिक ने एक दिन पहले के खरीदे गजरे रूमाल से निकालकर रत्ना के गले में डाल दिए, वेणी के फूल उसके जूड़े में खोंस दिये। रत्ना ने न मना किया न खुशी जाहिर की। माणिक ने और भी बहुत-सी बातें कीं, पर रत्ना ने कोई रस नहीं

लिया। हाँ, ना करके उत्तर देती रही।

"आखिर हम क्या कसूर किया रत्ना ? क्यों नई बोलताय खुलकर। हम इतना दूर से आया हूँ।"

"हम कुच बी बोलना नईं मांगताय।"

"क्या हो गयाय। बोले न !"

"नहीं जानताय।"

"बम्बई चलेंगा ?"

"चला चलेंगा," रत्ना अनमने भाव से बोली।

"इदर रहने का हो तो इदर रहो कुच दिन।"

"इदर बी।"

इसी बीच में वंशी आ गई। तो माणिक ने कहा—

"हम नया मकान ले रहा हूँ, तभी हम रत्ना कू ले जायेंगा।"

"तो यहाँ रह। ए बी तो तेरा ही घर हे।"

"ससुराल में रहना टीक नईं होता। फिर हवाखोरी का जागा नईं हे।"

"हवाखोरी क्या ?" वंशी हवाखोरी का मतलब नहीं समझ सकी। रत्ना मुस्करा दी।

माणिक अपनी धुन में बोलता जा रहा था। वह उन लोगों में था जो वैभव के छोटे रूप को अपनाकर खुश होते हैं। चटक-मटक को ही वास्तविकता समझते हैं। उसीसे वह अपने को बड़ा मानते हैं। बस में ठसक से बैठकर मोटर वाले लोगों से होड़ करते हैं। अल्प-ज्ञान-मंडित माणिक अपने को किसी से कम नहीं मानता था। सिनेमा जिसके आनन्द-वैभव की चरम सीमा है, साधारण धुले कपड़े पहन और गले में गजरा और सिर में तिली का तेल लगाकर ब्रिलियेण्टाइन से होड़ करते हैं।

"हमारा रत्ना भोत लाड़ की छोकरी हे, माणिक।" वंशी ने कहा और उठकर चाय बनाने चली गई।

माणिक चाय पीकर चला गया। बातों-ही-बातों में रत्ना ने जो-कुछ कहा था उसका सार यह है—

"मकान बदलकर अच्छे ढंग से रहेगा तभी उसके साथ जाऊँगी।" होटल खोलने पर उसने जोर दिया। वंशी ने भी रत्ना की बात का समर्थन किया। उसने तो यहाँ तक कह डाला, "जो कुछ उसके पास है वह सब रत्ना का है। रत्ना का अगर माणिक के घर जी न लगे तो उसे कोई भी बरसोवा में रहने और माणिक को छोड़ देने से नहीं रोक सकेगा।"

माणिक ने सुना तो झल्ला उठा। पर उसने उन दोनों की बातों का न जवाब दिया न कुछ बोला। वह चुपचाप बैठा रहा और फिर चला गया। माणिक एक हफ्ता तक बरसोवा नहीं आया तो वंशी को चिन्ता हुई। रत्ना को भी कुछ अजीब-सा लगा। वह सोचने लगी, न जाने माणिक नाराज हो गया हो। पिछले तीन-चार दिन तक उसके पास रहकर जो देखा था वही उसकी आँखों के सामने आकर घूम गया। उसने पाया कि माणिक उसके लिए कितना-कुछ करता रहा। उसकी एक मुस्कराहट पाने और एक बार उसके निगाह भरकर देखने के लिए उसने कितनी कोशिश की है। रात को सोते वक्त बदलने के लिए अपने-आप उसने सन्दूक से कपड़े निकाले। सिनेमा से लौटते समय वह गजरे लेना न भूला। अपना प्रेम उड़ेलने के लिए हर समय छटपटाता रहा। यही बातें थीं जिनकी वजह से उस अंधेरी और भिखारिन कोठरी में उसने विद्रोह नहीं किया। माणिक से कुछ कहा नहीं और चुपचाप अपने गर्व को दबा लिया। यह ठीक है जो सपना वह देखना चाहती थी वह नहीं देख सकी। माणिक के रूप ने उसे लुभाया नहीं बल्कि पीले और मैले दाँतों में चमकती पान की लाली के साथ उसके मुँह से जो बदबू की फुहार छूटती थी उससे उसका जी ग्लानि और विरक्ति से भर उठा था। जिस पुष्ट अंग को वह अंक में भर लेना चाहती थी उसकी जगह निर्बल और साँसों से बोझिल हड्डियों का ढाँचा उसे मिला। उस समय यशवन्त की याद हो आई। यौवन के स्वप्नों में आलिंगन के लिए उन्मादी मन को जरा भी प्रेरणा नहीं मिली। जितना वह भरपूर चाहती है उतना उसे नहीं मिल पा रहा है। एक अतृप्ति, एक अभाव जैसे सुहाग की रात में उसके चारों ओर चक्कर काटता रहा। वह नहीं समझ पाई कि ऐसा क्यों है? क्यों वह माणिक से उतना नहीं पा रही जितना उसका बौराया मन

चाहता था। चार दिन में ही उसने पाया कि माणिक में झिझक बढ़ रही है। एक संकोच उभर रहा है और उसके शरीर का ढाँचा जैसे सिहरने लगा है। इधर उसके शरीर में अदम्य ज्वार उठने लगा। सुरति के बाद माणिक करवट बदलकर निर्जीव-सा हो जाता। उसे नींद नहीं आती। वह सोचती यह क्या है? क्या यही है जिसके लिए बाजे बजाकर नारी को लाया जाता है?

बहुत-सी बातें इसी तरह की वह उन रातों के बारे में सोचती रही है। गम्भीरता के आवरण में उसके वे क्षण न कहने लायक बन गए हैं। माणिक को न वह पूरी तरह चाह सकी है, न छोड़ ही सकती है। उसे लगा बाहर की दुनिया से उसके भीतर की दुनिया बहुत प्रबल है, जिसमें उसका सारा अन्तरंग झूम उठ रहा है। स्पष्ट न होते हुए भी उसे लगा, यह खूब है। जिस माँ से अब तक कुछ भी नहीं छिपाया उससे भी छिपाना पड़ रहा है। कुछ बातों को जानने का अधिकार केवल माणिक को है। कुछ का उसकी माँ को। कुछ का केवल उसे ही। यह क्यों? क्या आज से उसे मन के कई कोने में रह-रहकर उभरने वाली उमंगों को बाँटकर अलग कर देना होगा? कभी-कभी यशवन्त उचककर उसके मन में झाँकने लगता। जो इन पिछले दिनों में कभी एक बार आया था वही अब बार-बार आता। यह बात न वह माणिक से कह सकती है न वंशी से, न खुद यशवन्त से। एक दिन यही सोचते-सोचते उसे अँधेरी रात में माणिक के पास लेटे-लेटे ख़याल आया और वह मुस्करा दी। अँधेरे में भी उसे दिखाई दिया जैसे न चाहने पर भी वह आ धमकता है। पर अब वह माणिक की है। वह पास ही तो सो रहा है। उसने आँखें बन्द कर लीं और सोना चाहने पर भी नींद की बजाय वही आ जाता।

इसी समय वंशी ने आकर कहा—

"काय सोचताय रत्ना। माणिक कू आने का है न।"

माँ की आँखों-से-आँखें मिलाकर रत्ना उसे देखती रही। बोली कुछ भी नहीं।

"क्या बोलताय?"

"आ जायेंगा।"

"आज देखताय नईं तो सकाली बिट्ठल कू बेजेंगा। तेरे कू ए क्या हो गयाय ? दिवस बर घर में गपचुप पड़ा रहताय। हँसने-खेलने का नईं क्या ? नईं हो, सारिका के इदर जा।"

"ओ बम्बई रहने कू गयाय।"

"तो बम्बई जा। घूम-फिर आ। चिन्ता करने कू तो हम लोक हे रत्ना। तुमकू किस बात का फिकर हे। जा उठ। चहा पियेंगा ?"

वंशी दौड़ी गई और एक कटोरे में दो लड्डू ले आई। रत्ना ने वंशी की बातों से स्फूर्ति अनुभव की और लड्डू खाते-खाते बोली—

"हम बम्बई जायेंगा, सारिका से मिलेंगा माँ।"

"हा, जा न।"

वह सारिका के यहाँ जा पहुँची। सारिका प्यार से मिली। बातचीत में पता लगा परिवार के लोग छुट्टी लेकर एक शादी में गाँव गये हैं। वही छुट्टी न मिलने से अकेली रह गई है। उसने देखा—बड़ी-बड़ी मोटी अंग्रेजी-हिन्दी की किताबें चटाई पर उसके चारों ओर बिखरी हैं। पास ही चाय का प्याला, स्टोव रखा है। सारिका तकिये के सहारे टिकी पैर फैलाए पढ़ रही थी। सामने आदम-कद शीशे में उसका सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। सफेद रेशमी धोती और वैसा ही ब्लाउज, गोरे रंग में सारिका का चित्र बड़ा भव्य हो उठा था। रत्ना ने देखा तो मुग्ध हो गई। सारिका ने रत्ना को वहीं गद्दे पर बिठाया और एक तकिया सहारे के लिए देकर बोली—

"ले अच्छी तरह बैठ। मुझे अफसोस है, तेरे ब्याह में न आ सकी।"

"तू क्यों आती ! हम नीचे जो ठहरे।"

"पगली, सब लोग जा रहे थे। गाँव और कॉलेज में परीक्षाएँ थीं। पर्चों का ढेर। माफी चाहती हूँ।"

रत्ना ने बनावटी क्रोध दिखाते हुए कहा—

"माफ मैं तुझे कभी नहीं करूँगी। यही तो मेरा काम था। तुम बड़े लोग…"

"बड़े-छोटे का सवाल नहीं है रत्ना, मजबूरी थी।" इतना कहकर

सारिका ने रत्ना का हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया और उसके पास सटती हुई बोली—

"कह, कैसा रहा ?"

"ठीक है," ऊपरी मन से उसने उत्तर दिया।

"यानी ! लगता है जैसे तू खुश नहीं है।"

"सारिका, यह अपने हाथ की बात थोड़े ही है।"

"क्यों ? चाहने पर ही तो तेरा ब्याह माणिक से हुआ है।"

"न चाहने पर क्या न होता ?"

उत्सुकता से रत्ना के कन्धे से सटी सारिका उसके मुख के उतार-चढ़ाव देखती रही। रत्ना उसकी आँखों में झाँकने लगी।

"क्या पढ़ा करती है आजकल ? बड़ी किताबें फैला रखी हैं।"

"यों ही।"

"कोई इम्तिहान की तैयारी है क्या ?" हर एक किताब उठाकर नाम पढ़ती हुई बोली, "बड़ी मोटी-मोटी हैं। तू किसी दिन हेड मिस्ट्रेस बनकर रहेगी।"

"यह तो कोई बड़ा बनना नहीं है।"

"तो ?" रत्ना बैठकर उसकी आँखों में झाँकने लगी। सारिका उसके हाथ की चूड़ियाँ खनखनाती रही।

"एक बात बता, सच-सच कहना।"

"क्या, मैं नहीं कहूँगी। मैं जानती हूँ तू क्या पूछेगी।"

"मैं तेरी सहेली हूँ न ?"

"फिर भी नहीं, तेरा-मेरा रास्ता अब अलग हो गया है।"

"चाहने पर कोई भी उस मार्ग पर चल सकता है। बता, कैसा लगा तुझे ?"

"कोई खास नहीं।"

और सटकर बैठती हुई सारिका ने रत्ना के गले में हाथ डाल दिये और बोली—

"गदरा रही है।"

"क्या ?"

"सभी कुछ उभर रहा है।"

"उँह," कहकर रत्ना मुस्करा दी।

"तू बता, क्या ऐसी ही रहेगी ?"

"रहना ही होगा," कहकर सारिका ने एक लम्बी साँस भरी।

"हमारे यहाँ लड़कों के दिमाग खराब होते हैं, रत्ना। लड़के जितना माँगते हैं उतना माँ-बाप दे नहीं पाते, शादी नहीं हो सकती। सारे महाराष्ट्र में यह बीमारी है। इसी से हम मध्यवर्ग की लड़कियाँ प्राय: नौकरी कर लेती हैं। मैंने भी वही किया है।"

"हमारे यहाँ तो लड़के वाला लड़की के घर वाले को रुपया देता है," रत्ना ने कहा।

"कितना ?"

"जितना भी पट जाय, हजार, दो हजार।"

"तेरे बाप को कितना मिला ?"

"एक हजार। और भी मिलता मैंने ही रोक दिया," रत्ना बोली।

"इसलिए कि तुम लोगों में लड़की कमाती है। बाजार जाती है। मच्छी बेचती है। रुपया लाती है।"

"हाँ, पर स्वावलम्बी होना बुरा नहीं।"

"जबरदस्ती का स्वावलम्बन है। मैं इसे बुरा नहीं मानती।"

"शायद वह दिन कभी नहीं आएगा जब नर-नारी में एक-दूसरे के प्रति आसक्ति नहीं होगी।"

"जब तक नर नर है और नारी-नारी है, तब तक तो नहीं," रत्ना ने कहा।

"यह मैं एक किताब पढ़ रही थी," सारिका ने पैर से दूर पड़ी किताब को खींचकर उठाते हुए कहा, "यह एक इंग्लिशमैन की लिखी हुई है। इसमें उसने सिद्ध किया है कि नर और नारी एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों में एक कमी रहती है। प्रकृति ने दोनों को अभावग्रस्त उत्पन्न किया है। दोनों के मिलने पर ही जीवन पूर्ण होता है। जीवन का दूसरा नाम है सृष्टि। सृष्टि अपने में पूर्ण है। उस पूर्णता से जो दो अंग यानी नर और नारी उत्पन्न होते हैं वे फिर अभावग्रस्त हो जाते

हैं। उनकी पूर्ति दोनों के सम्मिलन से ही होती है। यही क्रम है।"

"तू तो बहुत बड़ी बातें जान गई!" रत्ना ने हँसकर सारिका के गालों पर हाथ फेरते हुए कहा, "भड़कती आग को थपकती रह सारिका, पर आग तभी बुझेगी जब पानी मिलेगा।"

"तुझे तो पानी मिल गया।"

"चल हट।"

"तूने बताया नहीं।"

"क्या बताऊँ, कोई खास बात नहीं हुई।"

"सन्तुष्ट तो है?"

"मैं कुछ भी नहीं कह सकती।"

"मसल है कि पूत के पैर पलने में दीख जाते हैं।"

"मेरे पूत के अभी पैर ही नहीं निकले," रत्ना जोर से हँस दी। सारिका ने भी उसमें योग दिया तो कमरा गूँज उठा।

"ठहर मैं भी कैसी पागल हूँ। चाय बनाती हूँ। ब्याह के बाद पहले-पहल आई है।" सारिका उठी और स्टोव पर पानी चढ़ा दिया। दूसरे कमरे से कुछ नमकीन ले आई। दोनों ने चाय पी और भुनी सुपारी के टुकड़े खाने के बाद रत्ना बोली—

"सारिका, मुझे तेरा काम पसन्द है।"

सारिका चाय का सामान यथास्थान रखने के बाद कह बैठी—

"और मुझे तेरा।"

"आ बदलें फिर," रत्ना ने हँसकर जवाब दिया, "पर क्या मैं तेरा काम कर सकूँगी? इन्टर तक तो पढ़ी हूँ। सचमुच गलती हुई। चाहती तो मैं बी० ए० कर सकती थी। अब क्या हो सकता है?"

"क्यों, हो क्यों नहीं सकता? पर तुझे जरूरत ही क्या है?"

सारिका ने सब फैली हुई किताबें तरकीब से अलमारी में सजा दीं और हाथ से गद्दे को साफ करते हुए कहा, "आज की नारी के लिए इतना जानना जरूरी है जिससे जरूरत पड़ने पर वह पराधीन न रहे और दुख न भोगे।"

"तू ठीक कहती है सारिका। मुझे भी यही लगता है।"

"क्या ?"

"अभी कुछ भी साफ नहीं है। फिर भी लगता है शायद यह ज्यादा दिन तक पसन्द नहीं कर सकूँगी।"

"सरेन्डर करने पर कोई रुकावट नहीं पड़ेगी।"

"मेरा मन विद्रोही है। मैं शादी के बाद से यही सोच रही हूँ कि कहीं नौकरी कर लूँ।"

"तुम्हारे घर में तो इतना काम है कि भूखे मरने की नौबत ही नहीं आ सकती।"

"वह काम मुझे तनिक भी पसन्द नहीं है।"

"बस, यहीं तू गलती करती है।"

"चाहे जो कुछ भी हो," रत्ना ने उत्तर दिया, "मुझे यह काम बिल्कुल नहीं रुचता।"

"यह हमारी शिक्षा का दोष है कि वह हमें अपने काम से हटा देती है और मामूली नौकरी करने पर मजबूर करती है। किसान का लड़का पढ़कर किसनई नहीं करना चाहता, बल्कि पचास रुपये का क्लर्क बनना चाहता है।"

"तू नहीं जानती सारिका, मेरे भीतर कितनी उमंग भरी है। मैं चाहती हूँ कि मेरे भी एक कोठी हो, मोटर, नौकर-चाकर हों।"

"बस ?"

"फिर मेरी भी समाज में प्रतिष्ठा हो। मैं बड़ी बन सकूँ।"

"यानी ?"

"यानी यह कि मेरा भी नाम हो। जब मैं सभा-सोसाइटी में किसी औरत को बोलते सुनती हूँ तो जी चाहता है मैं भी ऐसी होती !"

"तू क्या समझती है, वे लोग खुश हैं ?"

"लगता तो ऐसा ही है," रत्ना कहकर सोचने लगी। उसका ध्यान आलमारी में सजी बड़ी-बड़ी किताबों की ओर गया।

"कोई अच्छी-सी किताब दे न मुझे।"

"जो चाहे ले जा। पर लायब्रेरी की है, लौटाना होगा। क्या पढ़ेगी बोल, उपन्यास, कहानी, नाटक ?"

"मैं कुछ नहीं जानती क्या पढ़ना चाहिए।"

"तो तेरा पढ़ना बड़े बनने के लिए है, पढ़ने के लिए नहीं।"

"अब तू जैसा समझे। जो मैं समझ सकूँ वह किताब दे।"

सारिका ने पेंगविन सीरीज का एक उपन्यास निकालकर उसे देते हुए कहा—

"ले, पहले इसे पढ़।"

रत्ना ने एक पृष्ठ खोलकर देखते हुए कहा—

"मुश्किल तो नहीं है? मेरा ज्ञान तो तू जानती है।"

"नहीं। जो शब्द समझ में न आवें तो कोश देखना।" सारिका ने दो उपन्यास दिये। रत्ना लौटाने की बात करके उठकर चल दी।

× × ×

रत्ना ने वे दोनों उपन्यास दिन-रात एक करके पढ़ डाले। उन्हें लौटाकर वह और ले आई। माणिक दो-तीन बार उसे लेने आया, पर वह टालती रही। अन्त में एक बार चली गई। महालक्ष्मी के इलाके में माणिक का रेस्टोरेन्ट खुल गया। पास ही बर्ली में एक छोटा-सा कमरा भी उसने ले लिया। रत्ना पहले-पहल उसी मकान में गई। मकान में छोटा कमरा, एक स्टोर, रसोई और सम्मिलित बाथ रूम, टट्टी। छोटा होते हुए भी वह खुला और हवादार था। सारिका का मकान वहाँ से दूर नहीं था। वह काडबेल रोड के पास रहती थी। रत्ना को किताबें पढ़ने का चस्का लग चुका था। वह खाली समय में गद्दे पर पड़ी किताबें पढ़ती रहती। सुबह-शाम खाना बना लेती। माणिक हर शाम रेस्टोरेन्ट से कई तरह की चीजें ले आता। कभी-कभी खाना न भी बनता तो रेस्टोरेन्ट से आ जाता।

माणिक दिन-भर दुकान में रहता, रत्ना घर में। कभी-कभी सारिका के साथ वह नगर में होने वाली सभाओं और उत्सवों में भी चली जाती; परन्तु सबसे अधिक वह सिनेमा देखना पसन्द करती, नृत्य, संगीत के आयोजनों में जाती। उसे लगा वास्तव में यही दुनिया है। यही जीवन है। उसका प्यासा मन और भी प्यासा हो उठा। अँग्रेजी उपन्यासों के पात्र उसकी आँखों में वासना की धार बरसाने लगे। अविकसित मन

की ग्रन्थियों में उत्तेजना उठने लगी। नये सपनों से उसका हृदय भर उठा। दिन में कई बार कपड़े बदलती। पफ, पाउडर से रंग साफ करती और उपन्यासों के पात्र अपने आसपास खोजने की चेष्टा करती। कभी-कभी उसे अपने रूप पर दुख होता तो प्रयोगवादी कविता की तरह अनघड़, असाध्य साधनों से अपने को सँवारती। वह शीशे के सामने खड़ी होकर कभी-कभी कहती—

"यौवन तो बिना माँगे मिला, पर रूप तो माँगने पर भी नहीं मिलता। काश, मैं भी सारिका की तरह होती।"

एक दिन सारिका आई तो वह शीशे के सामने खड़ी थी। सारिका ने परदा उठाकर देखते ही कहा—

"क्या अब भी सन्तोष नहीं है रत्ना ?" वह पास जाकर उसके साथ ही शीशे के सामने खड़ी हो गई। फिर बोली, "कितना भरा चेहरा है रत्ना तेरा। मैं तो तेरे सामने पिद्दी लगती हूँ।"

"रूप की परी है तू तो सारिका। मुझे लगता है मैं तेरी नौकरानी हूँ।" भीतर-ही-भीतर खिन्न और बाहर से जबरदस्ती मुस्कराहट बिखेरती रत्ना ने सारिका का हाथ मसलते हुए कहा, "आखिर मैं कोलिन जो ठहरी। रूप तो तुम लोगों को भगवान् ने बाँटा है।"

"पगली, तू भी बुरी नहीं है। जरा अपने को पहचान।" सारिका रत्ना का हाथ पकड़कर अपने दोनों हाथों से सहलाती गद्दे पर बैठ गई। फिर तकिये का सहारा लगाकर दोनों आमने-सामने लेट गईं।

"आज मैं बहुत थक गई हूँ रत्ना। सारा दिन स्कूल में खड़े-खड़े बीता है। हेड मिस्ट्रेस से झाँय-झाँय हो गई। कहती थी—'किंडर गार्टन के बच्चों को घुमाने ले जाओ।' मैंने कहा—'मेरी तबियत ठीक नहीं है। किसी और को भेज दीजिए।' तो उसे बुरा लगा। अँग्रेजी में बोली—"यू मस्ट ओबे माई आर्डर।' काली-कलूटी हर वक्त रौब गाँठती रहती है।"

"तो चली जाती," रत्ना ने कहा।

"अब तुझसे क्या छिपाव है, आज शाम को शो देखने के लिए एक निमन्त्रण था।"

"ओ, तो यों कह। किसके साथ ?"

"भाटकेकर के साथ।"

"यह कौन है ?"

"भूल गई ? वह, बहुत दिन हुए जिसे तूने हमारे घर देखा था। मेरे भाई का मित्र। बहुत दिन से कह रहा था।"

"समझी, वह मनचला लड़का।"

"लड़का नहीं, जवान है।"

"लड़कों को जवान बनते देर नहीं लगती। शायद........"

"शायद, क्या ?"

"शायद तू...."

"वह मेरे ऊपर रीझ उठा है।"

"और तू ? जैसे सब उसी का काम है," कहकर रत्ना ने सारिका के गाल पर चपत जमा दी और बोली—

"तू तो बड़ी सीधी है न !"

"तू भी चल।"

"माणिक से पूछना पड़ेगा। वह होटल से लौटेगा तब न।"

"चलकर पूछ ले।"

"मैं नहीं जाऊँगी। लेकिन तुम दोनों क्यों नहीं जाते ? रात को बारह बजे तक विहार करो," कहकर रत्ना ने लम्बी साँस भरी।

"क्या बात है ?"

अनमनी होकर रत्ना ने उत्तर दिया, "कुछ नहीं।" और छत की तरफ आँखें जमाए देखने लगी।

"बोल, क्या मुझसे भी नहीं कहेगी ?"

"कुछ समझ में आवे तो कहूँ।"

"फिर भी ?"

"जी नहीं लग रहा है सारिका। मन में एक तरह की ऐंठन होती रहती है। एक ज्वार-सा उठता रहता है। न जाने क्या है ? हाँ, लूइस सिक्लेयर का 'मैनस्ट्रीट' मुझे पसन्द आया। न जाने इन किताबों से मन में एक भूख जग गई है। चाहती हूँ, मेरी दुनिया भी ऐसी होती। मुझे

भी कोई…"

"ओ: तो यों कह, प्यार की भूख जगी है। माणिक जो है।"

"उसे पैसे के सिवा कुछ नहीं सूझता। आया, खाना खाया और लगा खुर्राटे लेने। न बात न चीत। यही तो सब-कुछ नहीं है।"

थोड़ी देर चुप रहकर वह फिर बोली—

"धोखा हुआ, सारिका !"

सारिका का हृदय जिज्ञासा से भर उठा। वह उठकर बैठ गई और रत्ना की छाती पर हाथ रखकर बोली—

"कैसा धोखा ! साफ-साफ कह न !"

"नहीं, मैं नहीं कहूँगी। वैसे कोई बात भी नहीं है। चाय पियेगी ?"

"हाँ, बता न, क्या बात है ?"

"कोई बात नहीं। मैं अभी तक खुद नहीं समझ पा रही हूँ। कुछ समझ में आवे तो कहूँ।"

"नहीं, सचमुच कह डाल। शायद मैं कोई मदद कर सकूँ।"

"बताऊँगी, पर अभी नहीं।"

सारिका जितना आग्रह करती रत्ना उतना ही छिपाने की कोशिश करती। एकाध बार उसने सोचा भी कि कह डाले, पर कह नहीं सकी; उठकर चाय बनाने लगी।

सारिका कमरे का सामान तस्वीरें देखने लगी। जो तस्वीरें दीवार में लगी थीं उनमें एक उसकी और माणिक की थी; सिनेमा तारिकाओं की थीं। एक तस्वीर समुद्र में मछली पकड़ने वाले मछुए की थी। एक तरफ कुछ कपड़े टँगे थे। सारिका ने मन में सोचा, 'रत्ना पढ़ी-लिखी होने पर भी विकसित नहीं है। यह चाहती है बड़ी बनना। पर भीतर न उतनी शक्ति है न सामर्थ्य। ऊँची उमंगों ने इसे निराश कर दिया है। और क्या बात हो सकती है ? हम मध्यवर्ग के लोग जो संघर्ष करते हैं, अपनी शक्ति से ही लड़ते हैं। रत्ना में संस्कारों का अभाव है। इसके और हमारे बीच में कुछ सीढ़ियाँ हैं। और माणिक में यह बात है नहीं जिसका सहारा लेकर यह ऊपर उठ सके। वह गिनती के रुपयों के सहारे आगे बढ़ना चाहता है। पर रुपये के साथ और भी तो चाहिए, आदि

आदि ।' फिर वह भाटकेकर के सम्बन्ध में सोचने लगी—

'भाटकेकर उसे चाहता है। क्या वह उससे शादी कर ले तो सुखी हो सकती है ?' उसने कलाई में बँधी घड़ी देखी तो रत्ना से कहा—

"मैं चली रत्ना, देर हो रही है।"

"अभी लाई बस, जरा सी देर है। आज न जाने इस स्टोव को क्या हो गया है !"

थोड़ी देर बाद रत्ना प्यालों में चाय ले आई। दोनों ने बैठकर पी। कुछ देर बाद सारिका चली गई।

माणिक सुबह से शाम तक रेस्टोरेन्ट में ही रहता। रत्ना दिन-भर घर में पड़ी रहती। किताब पढ़ती या इधर-उधर की बातें करती। पड़ौस के परिवारों में जो लोग थे उनमें से अधिकांश ड्राइवर, गाड़ी हाँकने वाले, खोमचा बेचने वाले या प्रेस में कम्पोजीटर, मजदूर या दुकानदार थे। उनकी स्त्रियाँ बात-बात में लड़तीं या घर के कामों में लगी रहतीं। रत्ना को छोड़कर प्रायः सभी के बच्चे थे जो खेलते और लड़ते रहते। उन्हीं के पीछे औरतों में भी लड़ाइयाँ होतीं। रत्ना के बिलकुल साथ सीधी तरफ जो परिवार था उसका मालिक गाड़ी हाँकता था। उसके सात बच्चे थे। बड़ी लड़कियाँ काम करतीं और माँ बैठी बच्चों और पड़ौसियों को गाली दिया करती। वह आठवें की तैयारी में थी।

बाईं ओर भी इसी तरह एक मोटी भदभद औरत थी जिसके तीन बच्चे थे—तीनों लड़के—वे आवारागर्द टल्लेनवीसी करते रहते। बड़े लड़के का कहीं काम लग गया था। मँझला एक बार चोरी करते पकड़ा गया तो चार महीने की जेल काटकर आया। सबसे छोटा पढ़ने को जाता, पर किस स्कूल में वह पढ़ता यह किसी ने नहीं जाना। लड़कों का बाप कहीं प्रेस में कम्पोज़ीटर था। उस चाल के अधिकतर लोग मिलों में काम करते थे, जो सवेरा होते ही दड़बों में से कबूतरों की तरह निकल जाते थे। दिन-भर स्त्रियों का राज्य रहता। बच्चों की किल-पिल हा-हा-हू-हू से सारी चाल थर्रा उठती।

उन्हीं दिनों एक घटना हो गई। नीचे की मंजिल में एक परिवार में एक क्वारी लड़की के गर्भ रह गया। लड़की की माँ पहले बात को दबाकर

इधर-उधर गर्भ गिरवाने का प्रयत्न करती रही। पर रुपये के अभाव में वह सफल न हो सकी। एक दिन माँ ने लड़की को बन्द कमरे में पीटा। उसकी चिल्लाहट सुनकर पास-पड़ोस की स्त्रियाँ बचाने, बातें जानने और अपने भीतर की उत्सुकता को सन्तुष्ट करने जा पहुँचीं। माँ लड़की को पीटती हुई पूछ रही थी—

"बोल किसका है? कहाँ से ले आई? राँड़ अब मैं मुँह दिखाने लायक भी नहीं रही। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?"

लड़की बिना जवाब दिये चिल्ला रही थी। आवाज सुनकर पड़ौसिनों को शक हुआ तो इकट्ठी होकर बाहर से सुनने लगीं। फिर कमरे के दरवाजे पीटने लगीं। बात-की-बात में झुण्ड-का-झुण्ड इकट्ठा हो गया। कोई बरतन माँजती, मिट्टी सने हाथों आई, कोई कपड़े धोती डण्डा लिये चल दी। किसी के हाथ बुहारी थी, कोई कमरा झाड़ती झाड़न लिए चल पड़ी। कोई बाल काढ़ रही थी तो बाल खोले कंघी हाथ में दबाये आ पहुँची। बच्चे शोर करते हुए इकट्ठे हो गए। एक-दो बूढ़े भी शोर सुनकर आ गए। नतीजा यह हुआ कि उस छोटे-से कमरे के चारों ओर हजूम जमा हो गया और सब लगे चिल्लाने। तब दरवाजा खोलकर चम्पा गरजती हुई बोली—

"क्या है, क्यों गर्दी किया है? जाओ, छोकरी हमारा है। हम चाहे इसकू मारें जो कुछ करें।"

"तो भी क्यों मार रही है, चम्पा बाई?" भीड़ में से एक औरत बोली।

हाथ मटकाती चम्पा ने आँखें तरेरकर कहा, "जाओ, धन्धा देखो। मेरे बीच में बोलने का कोई काम नहीं है। जाओ, चली जाओ सब।"

उसने फिर दरवाजा बन्द कर लिया, पर बाहर की भीड़ कम नहीं हुई। कोई कुछ कहता तो कोई कुछ। कमरे में बन्द उस लड़की के अलावा बच्चे भी रो रहे थे, तो एक बूढ़े ने चिल्लाकर कहा—

"यह लड़की को मार डालेगी। मैं पुलिस को बुलाता हूँ।"

पुलिस का नाम सुनते ही सारी भीड़ चिल्ला उठी, "हाँ पुलिस को बुलाओ।" पुलिस का नाम सुनते ही चम्पा ठण्डी पड़ गई। उसने दरवाजा

खोल दिया। लड़की एक कोने में पड़ी सुबुक रही थी। पेट नंगा था। उसके शरीर पर मार के दाग उभर रहे थे। दो-एक औरतें भीतर घुस गईं और चिल्लाकर बोलीं—

"हाय छोकरी कू पेट हे। पेट से हे, कमला।"

चम्पा ने बहुत प्रतिवाद किया, पर बात जो फैली तो चाल-भर में गूँज गई।

रात को चम्पा के पति ने आकर चम्पा को मारा तो वह भी लगी चिल्लाने। परिणाम यह हुआ कि दबी हुई और अनिश्चित बात फिर फूट पड़ी और चारों ओर चर्चा होने लगी। दूसरे दिन चाल वालों ने देखा कि ताला बन्द है और सारा परिवार कहीं बाहर चला गया है। फिर भी चर्चा चाल में कई दिन तक गूँजती रही।

चाल में प्रायः कुछ-न-कुछ गुल खिलते रहते। किसी ने किसी स्त्री को छेड़ा तो किसी स्त्री ने किसी आदमी को गाली दी। कहीं बच्चे आपस में लड़ पड़े तो उनके माँ-बाप कमर कसकर लड़ने आ गए और हाथा-पाई हो गई। कभी कूड़ा फेंकने पर लड़ाई होती तो कभी कपड़े सुखाने पर। फिर मेल भी हो जाता। रत्ना सुनकर बाहर आती और चुपचाप अपने कमरे में जा लेटती। कभी-कभी वह भी बातचीत में रस लेती। कभी पड़ोस की औरतें उसके पास आकर बैठ जातीं।

एक रात को माणिक बहुत देर से आया तो रत्ना पड़ोस की एक बीमार स्त्री को देखने गई थी। अभी ब्याह हुआ था और यह दम्पती बहुत दिन से इस चाल में रहते थे; औरत बदशकल और पति सुन्दर। थोड़े ही दिन के बाद पति ने स्त्री का तिरस्कार और मार-पीट शुरू कर दी। पति हर रात नशे में धुत स्त्री को आकर मारता। दो-एक बार उसने उसे घर से भी निकाल दिया। पर पत्नी बहुत ही सीधी और निर्दोष थी। वह हर तरह पति की सेवा करती। मालदार घर होने के कारण शंकर के बाप ने रुपया लेकर लड़का ब्याह दिया था। इधर शंकर का एक स्त्री से भी सम्बन्ध था। शादी के बाद उसीने शंकर को वरगलाना शुरू कर दिया। उसके मन से पत्नी को उतारने में वह सदा तैयार रहती। उसीकी बातों में आकर शंकर ने पीटना शुरू कर दिया।

वह चाहती थी, यह मर जाय तो शंकर उसका हो जाय। उस दिन शंकर ने कबली बाई को न जाने किस बात पर जो धड़ाधड़ धुनना शुरू किया तो निरीह युवती सिर के बल फर्श पर गिर पड़ी। उसके सिर से खून की धार बह निकली।

शंकर इस चाल में सबसे मशहूर गुण्डा भी था। कौन उससे वैर मोल ले? डर के मारे कोई भी उसकी स्त्री की सहायता या उसे समझाने नहीं गया। रत्ना से यह सब नहीं देखा गया तो अन्य औरतों के मना करने पर भी वह चली गई। शंकर मार-पीट करके बाहर निकल गया था। रत्ना ने जाकर फर्स्ट एड द्वारा उसके सिर को धोया और दवा लाकर पट्टी कर दी। पास की एक-दो स्त्रियाँ भी उसकी सहायता को आ गईं। कबली को जब होश आया तो उसने कांखते, कराहते और रोते हुए कहा—

"मेरा दोस है कि मैं बदसूरत हूँ—काली, भेड़। पर मैं कहाँ जाऊँ? माँ-बाप ब्याह करके ऐसे भूल गए जैसे मैं उनके लिए मर गई। मेरी माँ सौतेली है न। मैं क्या करूँ, बहन? कैसे उन्हें खुश करूँ? कोई उपाय हो तो बताओ। कहते हैं तू मर जा। कैसे मर जाऊँ बिना मौत! हाय, इस किस्मत में यही बदा था।"

कबली फूट-फूटकर रोती रही। रत्ना भरसक चुप कराती रही। उसकी दुर्दशा देखकर सबकी आँखों में आँसू भर रहे थे।

एक अधेड़ औरत ने ताना मारते कहा, "तू ही बकरी है कबली। दो-चार तू भी मार देती तो ठीक हो जाता। गला न दबाकर छाती पर बैठ जाती।"

दूसरी ने साथ दिया, "हाँ री हाँ, इन मुर्दे जलों का यही उपा है। हिम्मत कर।"

कबली ने कहा, "कैसे हिम्मत करूँ बहन, हाय सिर फटा जा रहा है।"

"गुण्डा है, पूरा गुण्डा," रत्ना बोली।

माणिक ने जब ताला बन्द देखा तो पास के एक बूढ़े से, जो सीढ़ियों के पास खड़ा खाँस रहा था, रत्ना की बाबत पूछा। बूढ़ा बड़ी गम्भीरता से बोला—

"देख माणिक, औरत को दबाकर रख, हाँ। यह शंकर मशूर दादा है साला।"

"शंकर ?" उसने चौंकते हुए कहा—"ओ गुण्डा ?"

फटी-फटी आँखों से उसने हामी भरी और खाँसने लगा।

माणिक दूसरे माला में ऊपर गया तो देखा शंकर के कमरे का दरवाजा बन्द है। उसने खटखटाया तो रत्ना ने चुपचाप निकलकर माणिक को देखा और दरवाजा भिड़ाकर चल दी। उसने घर पर आकर ताला खोला। माणिक ने पत्तों में लिपटे गजरे एक ओर गद्दी पर फेंक दिए। कमरे में कपड़े उतारकर मुँह फेरकर बैठ गया।

"बड़ी देर से आया माणिक !"

माणिक ने कुछ नहीं कहा।

"जीमेगा ?"

माणिक ने तीखी नजर फेंकी और लेट गया।

"हम पूछताय खायेंगा ? लाएँ ?"

भरा तो बैठा ही था बोला, "इतना लोकर क्यों आ गया ? रात उसके सात रहने का न। मजा लेता, मजा। व्हाइटलेन में जाकर बैठने का न। बदमाश साला।"

रत्ना माणिक की ओर देखती रही, बोली कुछ भी नहीं। इससे उसका सन्देह पुष्ट होने लगा।

"भात-मछली हे।"

वह उठकर एकदम गरजकर बोला—

"कितना करेंगा बोल ?" उसका गुस्से के मारे गला रुक गया।

"क्या हे, क्यों बूम मारताय।"

लेटा-लेटा बैठकर बोला—

"शंकर के उदर, रात में गुण्डे के उदर।" इसके साथ ही उसने कई भयंकर गालियाँ दे डालीं। रत्ना ने परिस्थिति को समझा। वह स्वयं माणिक के देर से आने पर नाराज थी। उसने कोई सफाई नहीं दी। चुप बैठी रही।

बाहर वह बूढ़ा खाँस रहा था। वहीं से बोल उठा—

"बुरा जमाना है माणिक, बुरा जमाना। औरत जात ही खराब होती है।"

"बोल क्या सलाह हे तेरा ? क्या मांगताय बोल ? कितना····पाहिजे ?"

"पागल," रत्ना ने चीखकर कहा ।

"तो क्यों गया बोल ?"

"गया था ।" रत्ना ने दृढ़ता से जवाब दिया ।

माणिक गुस्से के मारे बेदम होकर काँपने लगा । उसे अपनी कमजोरी महसूस होने लगी । रत्ना को मार बैठना उसके लिए मामूली था । पर न जाने क्यों वह पिछले दिनों से अपने को रत्ना के सामने असमर्थ पा रहा था । हर रात रत्ना के सहवास में उसे अपनी कमजोरी मालूम होती और जैसे उसके शरीर की सामर्थ्य, रति-उत्तेजना में उसके सामने हीन है । शब्द उसके पास नहीं थे । पर अपने कार्य का परिणाम वह नित्य देखता । अपने को हीन पाने की भावना ने जैसे उसे विवश कर दिया था । कुछ दिनों से तो वह रत्ना से भागने लगा था । सवेरा होते ही वह होटल चला जाता और देर से लौटता । कभी-कभी रत्ना सो जाती तो वह भी उसी बिस्तर (गद्दे) पर दूसरी ओर करवट बदलकर सो जाता । खाना वह शाम को मँगाकर ही खा लेता ।

थोड़ी देर बाद माणिक ने कहा, "रत्ना, तू मुजकू माफ कर दे ।"

"गाली खल्लास हुआ क्या ?"

"नई हम माफी चाता हे ।"

वह रत्ना के पास सरक गया और उसके पैरों पर हाथ फेरने लगा । जैसे वह कह रहा हो कि सब कमजोरियों के साथ भी मैं तेरा हूँ । या कि मेरी लाज तेरे हाथ है । तुझे ही केवल प्यार करता हूँ । मेरे इस समर्पण में शरीर ही नहीं, मेरी आत्मा, मेरा सब-कुछ तेरे लिए है । रत्ना ने पैर हटा लिये और बोली—

"हम बदमाश हे ?"

"नहीं रत्ना, माफ करेंगा ।"

"माफी कैसा ! गुण्डा शंकर के पास जाने वाला क्या नीट हो सकेंगा । हम बदमाश हे । हमकू जाने देयेंगा ।"

"हम जानताय तू नेक हे रत्ना ।"

माणिक ने आगे बढ़कर रत्ना के गले में हाथ डाल दिये और उसे

अपनी ओर खींचने लगा। रत्ना की आँखों में क्रोध के मारे आँसू आ गए तो कहने लगी—

"शंकर ने अपनी औरत को मारा, उसका सिर फट गया। मैंने जाकर पट्टी की, उसकी सेवा की, जब कोई भी उसकी देखभाल को न था। तो एक बेचारी अबला की सेवा करना, व्यभिचार है, बदमाशी है, तो मैं बदमाशी करूँगी माणिक, रोज बदमाशी करूँगी।"

रत्ना और भी कुछ बोलती रही। माणिक चुपचाप सुनता रहा। वह क्या सुनता-समझता रहा, यह रत्ना भी न जान सकी। क्योंकि रत्ना के बराबर बोलने पर भी माणिक ने कोई जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर बाद रत्ना ने देखा, माणिक सो गया है।

क्रोध में भरी वह बहुत देर छत की ओर ताकती रही। सवेरा होने पर भी रत्ना बिस्तर पर पड़ी रही। न तो उसने चाय बनाई और न वह उठी। माणिक ने उठकर चाय चढ़ाई और बीड़ी पीने लगा। केतली में उबाल की तरह उसके भीतर भी कई तरह के विचार उठ रहे थे। वह सोचने लगा रत्ना के साथ शादी करके उसने गलती की। ऐसे ही रहकर वह जिन्दगी बिता सकता था। इसी ध्यान में उसने रत्ना की ओर एक नजर डाली। वह सो रही थी। उसकी भरी हुई गोल जाँघें अनावृत थीं। चोली में से स्तन फटे पड़ रहे थे। मजबूत और सुदृढ़ दायाँ हाथ छाती पर था। बायाँ हाथ गद्दे पर निरीह-सा फ़ैल रहा था। कभी-कभी बायें हाथ की उँगलियों में एक कम्पन होता, मानो वह हिलकर कोई चीज़ लेना चाहती थी। थोड़ी देर बाद माणिक ने बीड़ी फेंककर चाय प्याले में भरी और पीते हुए रत्ना की ओर नजर डाली। तो पाया जैसे रत्ना अनजाने में अपने स्तन को अपने ही हाथ से दबा रही है। माणिक के जी में आया वह चाय पीना छोड़कर रत्ना को अपनी भुजाओं में कस ले और चिकने पसीने से चमकते उसके मुख का एक चुम्बन ले ले। किन्तु उसके भीतर साहस नहीं था। वह पत्नी की ओर देखता चाय पीने लगा। इसी बीच रत्ना ने आँखें खोलीं और माणिक को चाय पीते देखकर करवट बदल ली। बीड़ी पीते हुए जाने को तैयार माणिक ने कहा—

"हम होटल जाताय, दरवाजा बन्द कर ले।"

माणिक रत्ना की ओर गहरी निगाह फेंककर कमरे से बाहर हो गया। रत्ना किवाड़ बन्द करके फिर लेट गई। वह पड़ी-पड़ी सोचती रही। कभी उसे अपने पर ग्लानि होती, कभी माणिक पर क्रोध आता। वह उठकर बैठ गई, बाल ठीक किये और सामने अलमारी के शीशे में देखने लगी। अब वह पूर्ण यौवना थी। दोनों हाथ उठाकर जूड़े को कसते हुए उसकी छाती और भी उभर आई। वह देर तक जूड़ा ठीक करती हुई भी उनके उभार को देखती रही। इसके बाद तकिया शीशे की तरफ रख-कर मुँह देखती उलटी लेट गई। उसने देखा नितम्बों का उठान पहले से बढ़ गया है। बहुत देर तक तकिये से छाती को दबाये वह शीशे में अपना मुँह देखती रही और अत्यन्त निराशा से अपने भीतर के ज्वार को पीने लगी।

माणिक चाय उसके लिए भी छोड़ गया था। उसने उठकर केतली से चाय ढाली और उठते धुएँ को देखने लगी, जैसे वह कह रही हो क्या इस चाय के प्याले के लिए उसने माणिक से शादी की है, या कपड़ों के लिए, रोटी के लिए! तो क्या यह सब उसे माँ के पास नहीं मिल सकता था? वंशी क्या उसे अपने पास से दूर करती? यह सब क्या है? क्या है इस माणिक के पास जिसके लिए उसे आना पड़ा। रोटी, कपड़ा, गहना, भूख! वह मानसिक भूख के लिए बेचैन हो उठी। उसके जी में आया माणिक को छोड़कर चली जाय। पर कहाँ? किस जगह? यही सब वह निरन्तर सोचती रहती। उसके अन्तरंग में यशवन्त शंकर के चेहरे घूमने लगे।

इसी तरह कई दिन बीत गए। एक दिन दोपहर के समय बैठी वह कोई कपड़ा सी रही थी—अपने ध्यान में मस्त, कि उसने देखा सामने शंकर खड़ा मुस्करा रहा है। भरपूर शरीर, गोरा रंग, तनी हुई मूँछें, बनियाइन में कसी हुई भुजाओं की मछलियाँ उभर रही हैं। विशाल और चौड़ी छाती से उसके भीतर का अदम्य उत्साह झाँक रहा है। रत्ना ने निगाह उठाते ही यह सब देखा और नीची निगाह करके साड़ी ठीक करने लगी।

"जा रहा था तो सोचा अपने मेहरबान को देख लूँ," शंकर बोला।

सकपकाकर रत्ना ने पूछा—

"वैन कहाँ है ?"

"गाँव भेज दिया।"

रत्ना चुप रही। उसे शंकर का आना अच्छा नहीं लगा। डर भी था। चाल का कोई भी व्यक्ति शंकर को वहाँ खड़ा देख ले तो क्या कहेगा ? शंकर खड़ा ही रहा। फिर बोला—

"माणिक गया ?"

"तेरे कू एक औरत के पास आना अच्छा नहीं है।" इसके साथ ही तेजी से उठकर शंकर की ओर देखते हुए फटाक से दरवाजा बन्द कर लिया।

उसे सुनाई दिया, "यह भरपूर जवानी यों ही खोने के लिए नहीं है मेरी जान !"

शंकर चला गया।

गुस्से से उसकी आँखें जल उठीं। उसे डर भी लगा। न जाने यह गुण्डा क्या कर बैठे ! किस वक्त आ जाय, तंग करे। तो मैं क्या कर लूँगी ? सारी चाल के लोग इससे डरते हैं। स्वयं चाल का मालिक इसकी खुशामद करता रहता है। उसका मन बेचैन हो उठा। बिस्तर पर पड़े-पड़े सोचा की। उसके मन में गूँजने लगा, "यह भरपूर जवानी यों ही खोने के लिए नहीं है, मेरी जान।"

"तो क्या मैं इतनी सुन्दर हूँ कि कोई मुझे चाहे। क्या सचमुच ? कितना जवान है यह शंकर, कितना भरा पूरा चेहरा ! मस्ती से चढ़ी आँखें ! गठा हुआ शरीर, सुन्दर !"

उसके उपचेतन मन की बेचैनी जाग उठी। माणिक से जो उसे निराशा-ही-निराशा मिलती थी, उसके मन का अदम्य वेग, जो अबुझ होकर जागता रहता था, भड़क उठा। सामने शीशे में उसने अपना मुख देखा, तो लगा सचमुच वह सुन्दर है, सारिका से भी सुन्दर। आखिर सुन्दरता का कोई माप-दण्ड तो है नहीं। भरपूर जवानी सबसे बड़ा सौन्दर्य है। उसकी आँखों में मद छलकने लगा। चेहरे की बनावट ने उसे गर्वोन्नित बना दिया। वह उठी और कपड़े उतारकर शीशे के सामने

खड़ी हो गई। शंकर का चेहरा और उसके वाक्यों की छाया आँखों में उतर आई। इसी समय दरवाजे पर दस्तक पड़ी। घबराकर कपड़े पहने और दरवाजा खोल दिया। बाहर माणिक खड़ा था।

"क्या करता था ?"

"सोता था।"

"अबी तलक ?"

"और क्या करने का ?"

माणिक उसके पास ही बिस्तर पर बैठ गया।

"पार्टनर एक पार्टी देता है। उसका बीबी तुमारे कू आने कू बोलताय।"

"तो उसकू बुलाने आने का न।"

"हमकू बोला तो हम बोला हमीं बुला लेयेंगा। तैयार हो जा न।"

"कब ?"

"आज चार बजे। दो बजे यहाँ से चलेंगा।"

"किदर जाने का ?"

"बाहर। बहुत अच्छा आदमी है। तेरी तारीफ करताय।"

रत्ना ने प्रश्न-भरी आँखों से देखा। जब माणिक ने कुछ भी नहीं समझा और जेब से निकालकर बीड़ी पीने लगा तो बोली—

"हम आज वरसोवा जायेंगा।"

"आज ई ?"

"हा।"

"क्या है ?"

गरजकर रत्ना ने कहा—

"एक बार कह दिया, जायेंगा।"

"तो जा न बाबा, कौन कू रोकने का ? पर···पार्टनर बोलताय तेरे कू पार्टी में आने कू।"

"पार्टनर, के उसका बीबी ?" तड़कती निगाह में प्रश्न भरकर रत्ना ने माणिक की ओर देखा।

"उसका बीबी। चल न, मन बहलेंगा। एक बार देखने का तो।"

रत्ना पार्टनर की बीबी को देखने के लिए उत्सुक हो गई। यथा-समय माणिक आकर उसे ले गया। लक्ष्मण (उसका पार्टनर), उसका दोस्त काशीनाथ, रत्ना और सीता बाई—चारों आदमी एक मोटर में बैठकर गये। माणिक को साथ न जाता देखकर रत्ना ने प्रतिरोध किया तो लक्ष्मण ने कहा—

"चार की जगह है। माणिक बस से आवेगा।"

माणिक के कहने पर रत्ना चली गई। घाट कोपर के पास एक मकान में शाम के पाँच बजे टैक्सी जाकर रुकी।

रास्ते-भर रत्ना को लगा लक्ष्मण अच्छा आदमी नहीं है। वह बार-बार रत्ना को घूरता। काशीनाथ एकदम बदमाश-सा था। सीता अधेड़ उम्र की चटक-मटक वाली औरत थी। झुर्रियों से भरे शरीर पर गहने लाद रखे थे। माणिक अभी नहीं आया था। वह सीता से बार-बार माणिक की बाबत पूछती। दरवाजे पर जाकर उसे देखती। शाम हुई, रात हुई। पर माणिक का कोई पता न था।

× × ×

रात को चार बजे के लगभग रत्ना ने बड़े जोर से चाल का दरवाजा खटखटाया। बहुत देर बाद नींद खुलने पर माणिक ने रत्ना का जो रूप देखा तो उनींदी आँखों से जैसे नशा उड़ गया। वह एकदम सहम उठा। उसे लगा, रत्ना मानो उसे मार ही डालेगी। उसकी आँखों से आग निकल रही थी। बिखरे बाल,फटे कपड़े, धूल से लथपथ पैर, माणिक ने देखा तो भीतर-ही-भीतर काँप गया। रत्ना ने कोयला कूटने का लोहे का डण्डा उठाकर तड़ातड़ माणिक को मारना शुरू कर दिया। माणिक चिल्ला रहा था। रत्ना क्रोध से पागल उसे पीट रही थी। आसपास के सब लोग जाग गए। कुछ आकर दरवाजे के पास खड़े भी हो गए, पर कमरा बन्द करके रत्ना का माणिक को पीटना जारी था। माणिक ने दो-एक बार उसका डण्डा पकड़कर मुकाबिला किया, पर क्रोध में भरी रत्ना के सामने जैसे वह स्वयं कमजोर हो गया। वह कह रही थी—
"तेरे जैसे का यही इलाज है। बदमाश, ले और ले। मजा चख।"

माणिक, 'मार डाला, हमकू मार डाला। हाय रे!' कहता पिट रहा

था। क्रोध से भरी रत्ना बिना कुछ कहे जब अपना सामान इकट्ठा करने लगी तो वह बोला—

"जा जा, जहाँ तेरे कू जागा हो जा।"

"औरत बेचने वाले के घर रहने से तो भीख माँगना अच्छा।"

"हम, हम औरत बेचने वाला?" क्रोध में कमजोरी छिपाकर माणिक ने कहा।

"हाँ, तू, तू। अपनी औरत को बदमाश के साथ भेजने से तो डूब मरना अच्छा। मेरे कू भेजा। तूने! तूने!"

अब माणिक की बारी थी—

"तुम साला औरत जात हमारा ऊपर हात चलाया। कुच बी किया नई हम। हम साला काये कू पार्टनर के साथ भेजता। वह हमारा मनी का पार्टनर है, औरत का तो नई। फिर भी हमकू साला मारा। हम बी मारता, हाथ चलाता तो साला क्या होता? पन हम सोचा, चलो अपना ई, मार लेने दो, सो पिटा। कोली में औरत का राज है साला। सो हम कुच बी नई बोला।"

इसके साथ बकता-झकता माणिक बीड़ी जेब से निकालकर पीने लगा—"हमकू मारा, हसबेन्ड कू।" हाथ की उंगलियों को सीना के पास तक ले जाकर उसने बात करते हुए झटक-झटककर बातें कीं।

"लोकर लोकर किया। हम बोला, हम बी जायेंगा। पन साला सवारी नई मिला। मग होटल में गाहक आ गया। क्या करता? रे गया साला।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, ओ बी याद रखेंगा," रत्ना ने कहा।

"हम देखेंगा पार्टनर कू। साला हमारा औरत कू कैसा बोलता। हम देखेंगा। चिन्ता मत कर, हम देखेंगा। क्या करेंगा धन्धा में ऐसा आदमी लोक मिलाय साला। माफ करने का न रत्ना।"

रत्ना बोली—

"ओ बी क्या याद करेंगा, कोई औरत मिला। दारू पीकर हमकू पकड़ने लगा। हम तीनों कू मारा। मालूम हो गया होयेंगा कि कोई मिला। एक का तो आँख बी फूट गया होयेंगा," रत्ना ने कहा।

"हमकू बी चकमा दिया साला। हम देखेंगा रत्ना। खून पी लेंगा साला का। हम अब्बी जाताय। देखताय।"

माणिक उठने की हिम्मत करके भी अपनी चोट सहलाता रहा। जब रत्ना कपड़े इकट्ठे कर चुकी तो उसने घड़े में से पानी पिया और बोली—

"हम जाताय। तेरा-हमारा नाता गया।" सामान उसने सिर पर रख लिया।

माणिक ने उठकर रत्ना के पैर पकड़ लिये और बोला, "माफ कर दे रत्ना !"

रत्ना घाट कोपर से पैदल आई थी। थक भी गई थी। इधर पानी पीकर उसका गुस्सा भी शान्त हो गया था। सामान लिये बोली—

"छोड़ दे हमारा पैर, हम तेरा साथ नईं रे सकेंगा। तेरा रास्ता अलग, हमारा अलग।"

"माफ कर दे रत्ना। हम साला कू देखेंगा। गलती हो गया। हम नईं जानता था कि तू इती कमजोर हे।"

"हम कमजोर हे, माफी माँगताय।"

माणिक ने रत्ना के पैरों पर सिर रख दिया। रत्ना को माणिक की दीनता देखकर दया हो आई। उसे लगा, घाट कोपर भेजने में माणिक का दोष नहीं है। पार्टनर ने ही इसे चकमा दिया। फिर माणिक को बेरहमी से पीटने पर उसे दया भी आ गई। सिर पर रखा सन्दूक उसने उतार दिया और बोली—

"माफ करताय जा। अपना होटल का हिसाब चुकता करके अलग हो जा। और फिसके हीला-हवाला करे तो हम देखेंगा साला कू। कहना, रत्ना को देखा हे ?"

सन्दूक कोने में सरकाकर रत्ना आग जलाकर चाय बनाने लगी। माणिक ने रत्ना का यह रूप देखा तो उसका मन कई तरह की उलझनों में पड़ गया। उसी दिन दोपहर माणिक रत्ना को साथ लेकर गया। पार्टनर के हाथ-पैरों में पट्टी बँधी थी। माणिक को देखते ही बोला—

"माणिक, तेरा औरत बदमाश हे। हमकू बेबात मारा। हमारा रास्ता अलग, तेरा अलग। हम कोई और धन्धा करेंगा।"

रत्ना ने आँखों में अंगार भरकर कहा—

"हम कोलिन हे। कोलिन को नईं देखाय? गनीमत जान हमने ओई जागा तेरा खून नईं पिया।"

"अरे जाओ हमने भोत औरत देखा है। हमीं चुप हो गया साला," फिसके ने अकड़कर कहा। फिर रत्ना की ओर देखते हुए डरकर काउण्टर से उठा और गाहक के पास चला गया। वहीं खड़ा बोलता रहा। रत्ना उसकी तरफ बढ़ी तो वह बोला—

"माणिक, अपना औरत कू रोक। खून हो जायगा साला।"

"हिसाब कर दे पार्टनर," माणिक ने कहा।

रत्ना ने बीच में पड़कर फिसके को खूब दबाया। कोर्ट की बात चलते ही रत्ना ने डाँटा कि ठीक हिसाब नहीं किया तो रात तक मैं खून कर दूँगी। मुझे फाँसी की परवा नहीं है। हम वरसोवा की कोलिन हैं।

"तो बाबा हम कौन मना करता हे?" फिसके ने एक गाहक के लिए चाय का आर्डर देते हुए कहा।

रत्ना के डर से फिसके ने माणिक के लिए होटल छोड़ दिया। रत्ना ने घर से लाकर उसका हिसाब चुका दिया। अब रत्ना खुद आकर कभी-कभी होटल के काउण्टर पर बैठती और माणिक ऊपर का काम करता। रत्ना की सुव्यवस्था और उसकी उपस्थिति को देखकर ग्राहकों की संख्या बढ़ गई, पर माणिक को रत्ना के बजाय रुपये का ध्यान था। गाहक उसे देखकर कनखियों में हँसते और बैरे के बजाय खुद बिल चुकाने उसके पास खड़े हो जाते। रत्ना भी मुस्कराकर लेन-देन करती। कोई-कोई मजाक भी कर बैठते। कुछ लोगों ने अधिक-से-अधिक समय तक बैठना शुरू कर दिया। वे चुपचाप चाय पीते रत्ना को ताकते रहते। उसे भी अच्छा लगता। उसका असन्तोषी मन इस बहाने एक प्रकार की तृप्ति ढूँढ़ता। किसी-किसी गाहक को देखकर वह भी ललचा उठती। पर स्त्री का शस्त्र संयम बड़ा निगूढ़ होता है। उसीसे वह अपने को बचाती।

एक बार रात का समय था—लगभग नौ बजे। चाय पीकर दो नौजवान छोकरे रत्ना के पास बिल चुकाने आए।

एक ने पूछा—

"कितना लेयेंगा ?"

रत्ना ने बॉय से पूछकर उत्तर दिया, "नौ आना।"

लड़के ने कहा—

"बस, मैं पाँच दे सकता हूँ।"

रत्ना ने ध्यान न देकर कहा—

"नौ आने दो।"

युवक ने पाँच का नोट निकाला और मुस्कराते हुए कहा, "सब ले लो।" रत्ना ने नौ आने काटकर बाकी उसे लौटा दिया।

"मैं तो पाँच तुम्हारे लिए लाया था।"

रत्ना की आँखें चढ़ गई। जोर से चिल्लाकर बोली—

"क्या ऽ ऽ ऽ ! क्या बकता है ?"

दोनों युवकों ने इधर-उधर देखा तो धीरे-से कहते हुए चले—

"होटल वाली सती है। चलो फिर देखेंगे।"

रत्ना घूरती रही। दूसरे दिन शंकर आकर उसके सामने टेबल पर डट गया और उसे घूरता रहा। दो आदमी उसके साथ थे। तीनों घूरते और चाय पीते जाते। चलते समय शंकर पास आकर बोला—

"कैसा चलता तेरा होटल, मजे का न ?"

रत्ना ने चुपचाप दाम ले लिये तो वह फिर बोला—

"धन्धा अच्छा है !"

"मजेदार औरत है," दूसरे ने व्यंग्य किया।

"पैसा माँगता है," तीसरे ने कहा और रत्ना को घूरते चले गए।

जाते-जाते शंकर ने कहा—

"छोड़ूँगा नहीं।"

रत्ना को लगा, इस जगह बैठना सुरक्षित नहीं है। एकान्त में उसने माणिक से कहा तो वह बोला—

"यह होटल है रत्ना, लेकिन मैं अकेला नहीं चला सकता।"

"तो बन्द कर दे, दूसरा धन्धा देख।"

"और धन्धा कहाँ है ? तेरी वजह से चलताय।"

रत्ना माणिक की ओर देखती रही। बोली, "तो जइसा लोक बोलताय हमकू बी वइसा करने का क्या ?"

माणिक रत्ना की ओर देखकर मुस्करा दिया। रत्ना का भीतर काँप उठा। जैसे यह कह रहा है क्या बुराई है। रुपया कमाने का यह भी एक धन्धा है।

रत्ना का मन विरक्ति और घृणा से भर गया। उसे लगा, यह माणिक क्या इतना नीच है ? दूसरे दिन सवेरे माणिक बोला—

"हम होटल का वास्ते कालबा देवी से सामान लाता हूँ। जा, जाकर बैठ जा।"

"हम नई जायेंगा।"

"सामान लाने का हे न। अभी जा, रात को मत बैठना।"

रत्ना मन मारकर होटल चली गई और माणिक बाजार। माणिक को खुशी थी कि होटल खूब चल रहा है। रुपया आ रहा है। वह रुपये के सामने और किसी चीज़ को महत्त्व नहीं देता था। वह सोचता जा रहा था, अगर रत्ना होटल में बैठे तो थोड़े दिन में वह खूब रुपया कमा लेगा।

अचानक दूसरे दिन वंशी आ गई। पहले वह घर गई थी। फिर होटल आई। गाहकों की भीड़ रत्ना को घेरे खड़ी थी। कुछ लोग मज़ाक कर रहे थे, कुछ मुस्कराकर बिल चुका रहे थे। वंशी चुपचाप यह देखती रही। रत्ना को मालूम भी नहीं हुआ कि वंशी आई है। भीड़ छटने पर रत्ना ने निगाह उठाकर देखा तो हँसकर बोली—

"वाय, तुम ?"

वंशी ने क्रोध दबाकर उत्तर दिया—

"हा, रत्ना। सोचा देखें। भोत दिन हो गया। पन ए क्या। यह क्या तेरे कू करने का काम हे ?"

"माणिक से होटल नई चलताय। पार्टनर हटा दियाय।"

"पन ए तो टीक नई। अपने इदर औरत होटल नई चलाताय।

सारा गाँव में हमारी बदनामी है।"

रत्ना माणिक को गद्दी पर बैठाकर माँ को चाय पिलाने के लिए मेज़ पर आ बैठी। बिट्ठल माणिक से बातें करता रहा।

बिट्ठल ने वंशी से घर लौटते हुए कहा—

"माणिक कू रत्ना का होटल में बैठना पसन्द नईं हे, पन जैसे ओ मजबूर हे।"

"कोली औरत कू डरना ई नईं पाहिजे। क्यों रत्ना, कभी माणिक कू मारा नईं?"

रत्ना चुप हो गई। वंशी ने बरसोवा की बातें करते हुए बताया कि इट्ठा बीमार है।

रत्ना ने एकदम पूछा, "क्या बीमार हे?"

"न जाने क्या हे।"

रत्ना चुप हो गई।

माणिक का लालची मन रुपये की ओर दौड़ रहा था। उसे मन में रत्ना के प्रति विरक्ति थी। जिस रात रत्ना ने माणिक को पीटा था तभी से उसे भीतर-ही-भीतर जहाँ रत्ना से डर लगता था वहाँ उसके बहाने रुपया कमाना भी उसका उद्देश्य हो गया था। वह मौका मिलते ही गूगी के पास जाने लगा। बिक्री का रुपया रत्ना अपने पास रखती। कभी-कभी माणिक निगाह बचाकर कुछ रुपये उड़ा लेता। पर माणिक को यह पसन्द नहीं था कि रुपया रत्ना के पास रहे। वह किसी-न-किसी बहाने रत्ना से रुपया माँगता और तर्क करने पर चुप रह जाता। रात में होटल बन्द होने पर भी वह इधर-उधर निकल जाता और आधी रात गये लौटता। कभी सवेरा भी हो जाता। रत्ना चुपचाप होटल से लौटकर चाल में आ जाती।

एक रात जैसे ही रत्ना चाल में लौटी तो चाल का मालिक आकर बोला—

"कमरा खाली कर दो। यह चाल बाजारू औरत का वास्ते नहीं है।"

"क्या बकता है?" रत्ना ने बाहर आकर कहा।

"बकता नईं, सच हे। हम ऐसा बदमाश औरत कू चाल में नईं रख

सकता।"

चारों ओर से औरतें घिर आई और उन्होंने भी चाल के मालिक का समर्थन किया।

एक ने कहा, "होटल चलाता है।"

दूसरी बोली, "धन्धा करताय। बदमाशी करताय। निकालो इसकू।"

लगभग घण्टे-भर तक तरह-तरह की बातें होती रहीं। रत्ना किस-किस का जवाब देती। चुप हो गई। मालिक चेतावनी देकर चला गया।

आधी रात गये जब माणिक लौटा तो रत्ना ने पूछा, "किदर गया था? हर रात चला जाताय।"

माणिक नशे में चूर अनाप-शनाप बकने लगा और थोड़ी देर बाद सो गया। रत्ना को रात-भर नींद नहीं आई।

सवेरा होते ही सारिका ने आकर खबर दी—

"आज मेरी शादी होने वाली है।"

रत्ना की सूरत देखते ही वह पूछ बैठी—

"क्या बात है, बीमार है क्या?"

"नहीं तो," हँसकर रत्ना ने जवाब दिया।

"मैं जल्दी में हूँ। दोपहर को आ जाना, भूलना नहीं।" कहते-कहते सारिका जल्दी में बाहर निकल गई।

रत्ना उस दिन होटल न जाकर सारिका के घर चली गई। रात की बात वह माणिक से कहना चाहकर भी न कह सकी।

यशवन्त

रत्ना के व्याह के बाद से यशवन्त में कई विचित्र परिवर्तन हुए। व्याह के समय वह हिंसा से पागल हो गया। उसने माणिक को मार देने के कई उपाय सोचे। एक बार कमर में छुरी खोंसकर रात के समय बारात ठहरने की जगह चला भी। पर घर से निकलते ही बाहर से आता नाना मिल गया जो बाउला के घर से लौट रहा था। बिट्ठल से उसकी दोस्ती टूट चुकी थी। बिट्ठल का दुश्मन बाउला उसका दोस्त हो गया था। वहीं बैठकर वह बिट्ठल, वंशी और रत्ना की बुराई करता रहा। घर लौटते ही उसने देखा, रात के बारह बजे यशवन्त तैयार होकर कहीं जा रहा है। उसे मालूम था यशवन्त को दुख है। घर से रात के बारह बजे यशवन्त को निकलते देखकर उसे शक हुआ और पूछने पर यशवन्त पहले हिच-किचाया, फिर बार-बार पूछने पर उसका सन्देह और भी बढ़ा। उसने यशवन्त को रोक लिया। वह नहीं चाहता था यशवन्त कोई ऐसा-वैसा काम कर बैठे और फँस जाय, हालाँकि वह बिट्ठल का पूरा अहित चाहता था। इसके अलावा बर्लीकर की लड़ाई की बात भी उसे मालूम हो गई थी। घर ले जाकर उसने यशवन्त के पास अपनी खाट डाल ली। पर यशवन्त का खूँखार मन रात-भर करवटें बदलता रहा। उसका पहला प्रयत्न निष्फल गया। कई दिन तक वह सोचता रहा। उसे रत्ना से घृणा हो गई थी। वह रत्ना को भी मार देना चाहता था, पर वैसा न हो सका। उसके इसी मानस-द्वन्द्व में बारात विदा होकर चली गई। यश-वन्त कुछ न कर सका। धीरे-धीरे वह अन्तर्मुख हो गया। विवाद और दुख के अतिरेक से उसे अपने पर ही ग्लानि हो उठी। वह किसी बहाने 'मड'

पर रत्ना के बैठने की जगह जा पहुँचता और रत्ना के साथ बीती बातें या करता रहता। कभी स्वयं प्रश्न-उत्तर करता, हँसता, मुस्कराता, वीरत की बातें करता। फिर भी सन्तोष न होता तो नाव लेकर समुद्र में निरु द्देश्य घूमने लगता, लहरों से बातें करता, समुद्र से प्रार्थना करता औ अपने को कोसता। एक साँझ जागला ने उसे इस प्रकार नाव पर निरु द्देश्य घूमते देखकर पूछा, "कौन, यशवन्त है क्या?"

"हा।"

"समुद्र में चलताय तो चल।"

"नई तू जा। हमारे कू अब्बी नई जाने का।"

"चल न धारकऊँ चलेंगा।"

"नई जागल्या।"

"अइसा क्या?"

जागला नाव खेते-खेते उसके निकट आ गया। उसने देखा, यशवन्त बहुत उदास है। उसने नाव सटाकर यशवन्त की नाव से मिला दी और बीड़ी निकालता हुआ बोला—

"ले बीड़ी पी यशवन्त।"

पर यशवन्त कुछ न बोला। उसने जागला की दी बीड़ी नहीं ली। वह डूबते सूरज की तरफ देखने लगा।

"क्या बात है यशवन्त, नाराज है?"

"कुच नई अइसा ई।"

"ताप है क्या रे?"

एकदम मुस्कराकर यशवन्त ने जागला की ओर देखा तो बोला—"ला बीड़ी पिला।"

इसके साथ ही जागला से बीड़ी लेकर यशवन्त पीने लगा।

"हम धारकऊँ जाताय यशवन्त। सोचता था कोई साथी होता। गजानन उंजिर करके आयेंगा पटनीकर का साथ।" फिर थोड़ी देर बाद बोला, "रत्ना का लगन हो गया, तेरे कू नई देखा।"

यशवन्त चुप रहा।

"हा बाई, तेरे साथ लगन जो नई हुआ। हम चाता था, वंशी चाता

था तेरे साथ ई रत्ना का लगन होता। विट्ठल बी करना मांगता ता।"

"मग ?" उत्सुकता से गरदन मोड़कर उसने जागला को देखा।

"क्या बोलेंगा, नईं होने का था सो नई हुआ।"

यशवन्त जागला की ओर देखता रहा।

"आखा घर का लोक दुखी हे," जागला ने बीड़ी फूँकते कहा, "रत्ना नईं चाता होगा और क्या ?"

"अइसा, तब्बी नईं किया।"

"टीक-टीक नईं जानता। माणिक वेशी मालदार आदमी हे। होटल चलाताय। छोकरी का जमानाय यशवन्त।"

यशवन्त चुप रहकर सोचने लगा।

"क्या सोचताय, चल, धारकऊँ चलें। सुना आजकाल उदर वेशी मच्छी मिलताय।"

"हमारे पास डोल नईं हे।"

"साथ-साथ मारेंगा।"

"नईं, हम नईं जायेंगा। तेरे कू जाने का, तू जा !"

दोनों की बीड़ियाँ खतम हो चुकी थीं। जागला उठा और अपनी नाव पर गुनगुनाता जा बैठा। फिर दूर से बोल उठा—

"रत्ना माणिक से नाराज होयेंगा तो...." वाक्य पूरा किये बिना जागला चला गया।

"मग क्या होयेंगा जागला ? अब हम नईं करेंगा।" यशवन्त नाव पर से उठकर जागला की तरफ मुड़कर बोल उठा। वह निरन्तर जागला की ओर देखता रहा।

इस समय सूरज डूब चुका था। कहीं-कहीं पश्चिम में लाल मटमैली पीली रेखाएँ उभर रही थीं। उन पर अँधेरे की परछाईं पड़ रही थी। विशाल जलराशि बिना आर-पार के काले अँधेरे के समुद्र में डूब रही थी। लहरों की छप-छप गरजन-तरजन में यशवन्त का मुरझाया मन खो गया। वह निरुद्देश्य समुद्र की छाती पर लहरों से अठखेली करती अपनी डोंगी फेरता रहा। कभी-कभी हिचकोले लेती नाव के साथ अपने मन की उमंग को छोड़ देता। उस अँधेरे में दूर प्रकाश-स्तम्भ की रोशनी

फैलकर उछलती लहरों पर एक लम्बी रेखा बनाती और मिट जाती। यशवन्त बहुत देर तक वही देखता रहा। उसकी पीठ पीछे बम्बई की रोशनी कई कतारों में बँटी प्रकाश बिखेर रही थी। पर उसके पास था केवल अँधेरा, अँधेरे का अथाह सागर। आज उसका मन और भी दुखी था; और भी खिन्न। वह आकाश की ओर मुँह करके नाव पर चित लेट गया और तारों को देखने लगा।

इसके साथ ही वह रत्ना के सम्बन्ध में सोचने लगा। बचपन से उसके साथ की अब तक की स्मृति पन्नों में अलग-अलग आने लगी। खेल-खेल में उसने एक बार उसे पीट दिया था और किस तरह तीन-चार दिन तक वंशी और उसकी माँ में इसी बात को लेकर वाक्-युद्ध हुआ था। नाना ने यशवन्त को पीटा तो विट्ठल ने उसे बचाया और सात-आठ दिन के बाद रत्ना स्वयं उसके साथ खेलने को दरवाजे पर आ खड़ी हुई। देखते-देखते दोनों फिर खेलने लगे। किस तरह वह रत्ना को अपनी पीठ पर चढ़ाकर समुद्र में गोते लगाता। जब रत्ना तैरने लगती तो छिपकर नीचे से उसकी टाँग पकड़कर खींच लेता और गहरे समुद्र में ले जाता। इस पर भी नाना ने उसे मारा तो रत्ना ने धमकी देते हुए उससे कहा था—

"और तंग करेगा यशवन्त ! और मार पड़ेगा।"

यशवन्त ने क्रोध में भरकर उसकी पीठ में एक घूँसा मारा और भाग गया। रोती हुई रत्ना जब घर गई तो वंशी ने रत्ना को पीटा।

फिर रत्ना स्कूल जाने लगी। नाना चाहता था उसका लड़का भी स्कूल जाय, पर वही नहीं गया और गया तो भाग आया। पढ़ने में उसका कभी मन नहीं लगा।

एक-एक करके सभी दिन जिनका रत्ना से सम्बन्ध था यशवन्त की आँखों में घूम गए। वह उन्हीं स्मृतियों में खो रहा था कि एक बड़ी मछली ने नाव के ऊपर अपनी पूँछ फेंकी। दो-तीन बार उसने नाव को टक्कर दी। जब तक यशवन्त उठे तब तक वह पानी में कहीं चली गई। यशवन्त ने पूँछ से अन्दाज लगाया, मछली निश्चय ही बड़ी होगी।

पर न तो उसके पास जाल था और न सामान। उसकी इच्छा भी मछली पकड़ने की नहीं थी।

उसने अनुमान किया रत्ना को दूसरे की होने देने में उसकी ग़लती है। यदि वह भी पढ़-लिख जाता तो क्यों रत्ना जाती? उसी की न होती? तो क्या वह पढ़ सकता है? अब इस उम्र में? उसके भीतर अपने प्रति एक वितृष्णा हुई। उसने निश्चय किया वह अब पढ़ेगा। वह उठा और रात के गहरे अन्धकार में नाव चलाने लगा। उस समय उसमें एक प्रकार का उत्साह था।

दूसरे दिन से लोगों ने देखा कि यशवन्त के गले की एक थैली में स्लेट, पैन्सिल और एक किताब पड़ी है। मछलीमार सहकार समिति के एक मुन्शी ने उसे पढ़ाना स्वीकार कर लिया था।

समय मिलते ही वह थैला खोलकर बैठ जाता। एक दिन दोपहर को भात और मछली परोसते हुए हीरा ने कहा—

"हम एक छोकरी तेरे वास्ते नक्की करना मांगताय यशवन्त।"

यशवन्त ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप मछली का रस भात में मिलाकर खाता रहा। हीरा और भी पास सरक आई और बोली—

"क्या बोलताय यशवन्त?"

"हम शादी नईं करेंगा।"

"क्यों?"

"बस एक बार बोला जो।"

"काय कू अइसा बोलताय? भोत सुन्दर छोकरी हे।"

"भात और दे।"

हीरा ने भात परोस दिया।

"छोकरी रत्ना से वेशी अच्छाय।"

"हमारे कू शादी नईं करने का। तू फिकर काय कू करता? हम तेरा सेवा करेंगा।"

"तो अइसा क्यों? शादी काय नईं करेंगा यशवन्त? हम कोई रोगी हे। रोगी का सेवा होताय बेटा।" हीरा की आँखें डबडबा आईं। उसने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा—

"अइसा कहीं होताय यशवन्त ? नक्की तो मग करने का बेटा।"

यशवन्त खाकर चुपचाप बाहर आ गया और दरवाजे पर सुखाने के लिए बँधी मछली की बन्दनवार पर हाथ फेरकर बोला—

"मच्छी जास्ती सूख गयाय माँ !"

उसने उतारकर मछली टोकरी में भर दीं और ताजी टोकरी की मछलियाँ दरवाजे के पास धूप में फैला दी। पास ही एक खाट पर लेट-कर बीड़ी पीने लगा। नाना जब बाहर से आया तो यशवन्त सो रहा था। उसके पास ही स्लेट, पेंसिल और किताब पड़ी थी।

नाना ने हीरा से पूछा—

"तुम यशवन्त से बोला ?"

"ओ शादी नई करना माँगता।"

"क्यों ?"

"ओ ब्याह नई करेंगा।"

"क्यों ?"

"न जाने।"

इतना कहती हुई हीरा रोने लगी। नाना चुपचाप खाना खाने लगा। नाना और हीरा दोनों छल-छिद्र से रहित निष्कपट व्यक्ति थे। न किसी के बुरे में, न व्यर्थ की निन्दा-स्तुति में। प्रशंसा करना भी उन्हें नहीं आता था। बिट्ठल से नाना की दोस्ती थी, पर जब उसीने उसे धोखा दिया तो उसका मन चूर-चूर हो गया। बोलचाल बन्द होने पर वह बिट्ठल से मिलने को आकुल-सा रहता। बिट्ठल ने रत्ना के ब्याह के बाद उसे मनाया, पर उसके भोले मन को जो पीड़ा पहुँची, उसे जो दुःख हुआ वह सब नाना ने बिना किसी संकोच के जो जी में आया, सुनाया। बिट्ठल चुपचाप सुनता रहा। क्रोध उतरने के बाद नाना पछताने लगा, पर अब कोई उपाय नहीं था। बिट्ठल ने आना छोड़ दिया, लेकिन नाना कैसे जाय। हीरा बुलाने पर रत्ना के ब्याह में गई और गीत भी गा आई। तब पड़ौस की स्त्रियों ने उसे भड़काया—

"तू भोत मूरख हीरा, जो अपना अच्छा-बुरा बी नई जानता।"

"वंशी ने बुलाया तो जाने कू था न।"

"जाके समुद्र में डूब मर और क्या करेगी ? तेरे सामने वंशी ने अपनी लड़की की शादी और से कर दी, तुझे घाव नहीं हुआ ? शर्म नहीं आई ?"

हीरा को लगा जैसे सचमुच उसने बड़ी गलती की। मन में कुछ न होने पर भी बाहर से वह वंशी से रूठ गई, जैसे रूठना उसे सीखना पड़ा।

हीरा और नाना ने बहुत प्रयत्न किया कि यशवन्त शादी कर ले। एक दिन बिट्ठल अपनी दोस्ती नई करने के बहाने शिवड़ी के मछलीमार को लेकर नाना के घर आया। नाना टोकरी में मछलियाँ भर रहा था। हीरा मछली बीन-बीनकर अलग कर रही थी कि बिट्ठल ने बाहर से आवाज दी। हीरा ने पहले ही देख लिया था तो बोली—

"बिट्ठल दीखताय नाना, एक और मानस पन।"

नाना ने बाहर निकलकर चुपचाप चटाई बिछा दी और बोला—

"बइठ बिट्ठल !"

दोनों बैठ गए तो बिट्ठल बोला—

"गजानन यशवन्त का वास्ते आयाय। बात करने का। छोकरी चांगलाय।"

"तो हमकू क्या करने का बिट्ठल ? यशवन्त नईं मानताय।"

"क्यों, क्या शादी नईं करेंगा ?"

"क्या जाने !"

"मालदार आदमी हे। एक बोडी (नाव) एक मकान भी।"

हीरा भी पास आकर खड़ी हो गई। बिट्ठल ने गजानन की लड़की की तारीफ की। नाना चुप सुनता रहा।

"तू माने तो यशवन्त कू हम समझायेंगा। ओ तेरा माफिक हमारा बेटा बी हे।"

"तो तेरे कू बोलने का," नाना ने कहा।

हीरा बोली—

"नाना ने भोत बोला बिट्ठल !"

"ए आजकाल का छोकरा बोलना नईं मानताय कोई का," गजानन बोला।

इसी समय बाहर से थैला गले में लटकाये यशवन्त आ गया। राम-

राम करके भीतर जाने लगा तो बिट्ठल ने कहा—

"बइठेंगा यशवन्त ! अरे, किती दुर्बल हो गयाय छोकरा !"

गजानन का जी यशवन्त को देखकर खुश हो गया। यशवन्त जमीन पर बैठ गया।

"ए गजानन तेरा वास्ते आयाय यशवन्त ! हम बोला बरसोवा में यशवन्त से कोई छोकरा अच्छा नईं हे। ए थैला कइसाय ?"

हीरा ने कहा, "यशवन्त कू पढ़ने-लिखने का हे ना। एक चोपड़ी बाचताय।"

"चांगला, चांगला।"

"रत्ना का माफिक स्कूल में जाता तो ना जाने कितना पड़ेला-लिखेला होता इदर पर ?" बिट्ठल बीड़ी निकालकर गजानन और नाना को देने लगा तो हीरा दौड़कर नाना की बीड़ी का बंडल ले आई। नाना ने अपनी बीड़ी देते हुए कहा—

"तेरे कू हमारा बीड़ी पीने का न बिट्ठल, ले पी।"

हँसकर बिट्ठल ने जवाब दिया—

"ये किसी और का क्या ?"

"पइले तो नईं था मग अब्बी और का हो गयाय, बिट्ठल ले पी।"

बिट्ठल को एक धक्का-सा लगा। उसने चुपचाप नाना की बीड़ी ले ली और तीनों पीने लगे। गजानन ने यशवन्त से पूछा तो उसने मना कर दिया।

"क्या बीड़ी बी नईं पीता ?"

बिट्ठल ने उसी क्षण कहा—

"बाप का सामने कइसा पियेगा छोकरा ! यशवन्त छोटा छोकरा नईं हे गजानन। बरसोवा में अपना कोली में एक हे पन...." कहकर बिट्ठल ने एक आह भरी। गजानन ने फैसले की गरज से पूछा—

"मग ?"

बिट्ठल जैसे अपने में खो गया। नाना ने देखा, बिट्ठल भीतर से दुखी है। उसका मन पिघल उठा, बोला वह कुछ भी नहीं। हीरा ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा—

"न जाने काय हो गया इस यशवन्त कू ! लगताय किसी ने कोई जादू कियाय। नईं तो कौन छोकरा जो शादी नईं करेंगा ! तो हमारा जीवन दुखी होयेंगा। हमारा दुख करने का बिट्ठल भाय।"

"तेरे कू जास्ती फिकर हे माँ ! ब्याह करेंगा तो हम करेंगा। तेरे कू तो नईं, करने का तो हम," यशवन्त ने टोका।

"तो कर ले न बेटा, हमारा चिन्ता दूर होय, नईं तो एक दिवस घुल-घुल मर जायेंगा। मग क्या करेंगा।"

तीनों एकदम यशवन्त को समझाने लगे, "हा हा, माँ का बात मानने काय यशवन्त !"

नाना बोला, "घर होय तो हमारा जान-में-जान आयेंगा बिट्ठल। ब्याह होता तो अब्बी तलक छोकरा होता। हमारा जी कू दुख लगताय। हम बूढ़ा हुआ बिट्ठल।"

हीरा ने अपने मन की कही—

"ब्याह होयेंगा तो हात बँटाने कू मिलेंगा। कुच अवकाश मिलेंगा। आखा घेर का काम, बाहेर का काम हम अकेला कइसा करेंगा ?" कहकर हीरा भीतर चली गई।

बिट्ठल ने समझदार की तरह पूछा—

"पन ब्याह तो करना ई हे, मग कर ले न यशवन्त ! गजानन का घर बड़ा अच्चा हे। छोकरी आखा काम करेंगा। कुच पड़ेला बी हे। क्यों गजानन ?"

"हम कोली लोक में पड़ने का नईं, पन पड़ेला-लिखेला का कान काटताय। जास्ती समझ रखताय, कपड़ा सींताय और मच्छी का उसकू बेशी पइचान हे। हमारा साथ अनेक बार समुद्र में गयाय। मार्कीट जाताय, मच्छी बेचताय। कोली का छोकरी कू और क्या पाहिजे ?"

"हा, ओ तो पाहिजे ई। इतना तो पाहिजे ई नाना ! अपने कू और काय पाहिजे ? बोलता काय नईं ?"

नाना ने 'हा' भरी और चुप होकर यशवन्त की ओर देखने लगा। गजानन ने एक बीड़ी और पी। इसी बीच हीरा चाय ले आई। कुछ नमकीन भी उसने ला रखा। सब लोग चाय पीने लगे।

"मुजकू काम है काका !" कहकर यशवन्त उठने लगा तो बिट्ठल ने कहा—

"पन नक्की तो करने का यशवन्त ! जाने कू तो है। अपने कू बी जाने का। कौन कू नई जाने का," उसने 'है' पर जोर देकर पूछा।

गजानन बोला, "हम लोकर (जल्दी) लगन देयेंगा। छोकरी जास्ती बड़ाय।"

"हम ब्याह नईं करेंगा," नीची निगाह किये जमीन पर सीधा हाथ टेककर बायें से जमीन पर उँगलियों से लिखते यशवन्त ने हुए कहा।

यशवन्त उठने लगा तो बिट्ठल ने कहा—

"बेटा यशवन्त, अरी हीरा, इसकू बी चहा दे न ? बइठ चहा पी।"

हीरा बोली, "यशवन्त चहा किदर पीताय बिट्ठल ! रत्ना का शादी से ई इसने चाय लेना त्यागाय।"

बिट्ठल सकपकाया, गजानन सतर्क हुआ तो पूछ बैठा—

"रत्ना का शादी ?"

हीरा ने जवाब नहीं दिया। नाना गुमसुम हो गया। बिट्ठल को एक ठेस लगी, पर किसी ने कुछ न कहा। चाय पीकर बिट्ठल उठता हुआ गजानन से बोला—

"गजानन, हम यशवन्त कू लेकर गाँव आयेंगा तब नक्की करेंगा, हा। तू जा।"

सब उठकर चल दिये। नाना दरवाजे तक पहुँचाने गया तो बिट्ठल नाना का हाथ पकड़कर बोला—

"तू चल गजानन, हम तेरा गाँवड़ा कू आयेंगा। अबी नक्की न करना हा।"

गजानन चला गया। नाना बिट्ठल के साथ नहीं जाना चाहता था। पर बिट्ठल उसका हाथ पकड़े बाजार के एक कोने में खड़ा बातें करने लगा। इसके बाद वह पास के एक होटल में जा बैठा तो होटल वाला बोला—

"हा आज बिट्ठल, नाना ! आखा वरसोवा में खबर है कि नाना-बिट्ठल का लड़ाई हो गया, हम बोला कब्बी नईं होयेंगा। आज साला

देखे हमारा बात क्या झूट हे। क्या लाऊँ, बोलो, गाठिया, भजिया ताजा हे।" और उसके साथ ही उनके जवाब देने के पहले बॉय को पुकारा, "दो प्लेट गाठिया, दो भजिया, दो चाय।" फिर सीटी बजाता हुआ बोला—

"हम सुना, माणिक होटल खल्लास करताय, होटल चलाने का आसान नईं साला, जान मार देताय।"

विट्ठल ने निषेध करते हुए कहा—

"अइसा क्या, हम तो उदर गयाय नईं। रत्ना का आने पर पूछेंगा।"

"भोत बदमाश हे गाहक लोक उदर का।"

नाना पूछ बैठा, "क्या हुआ?"

होटल में और लोग बैठे थे, उनको देखकर वह बिट्ठल की कुरसी के पास खड़ा होकर कहने लगा—

"रत्ना का बाबत कुच घसड़ा हुआ, तुम सुना काका?"

बिट्ठल ने होटल वाले का हाथ दबा दिया। वह बात बदलकर बोला—

"बड़ा बदमाश साला कस्टमर लोक उदर का।" इतना कहकर वह दूसरे ग्राहकों से पैसे लेने काउंटर की ओर चला गया।

नाना और बिट्ठल गाठिया-भजिया खाने लगे। बिट्ठल बोला—

"नाना, हम जानताय तुम गुस्सा कियाय, पन हमारा क्या बस? तू जानताय हम पसन्द करता यशवन्त कू।"

नाना ने रुखाई से जवाब दिया, "हमारा तो घर उजड़ गया। हम जानताय यशवन्त शादी नईं करने का। हम और हीरा बोल-बोलकर हार गया। तुजकू क्या मालूम बिट्ठल, हम दोनों कू न खाना चांगला लगताय नईं कोई काम।"

वह नीची निगाह किये एक-एक टुकड़ा खाने लगा। उसके बाद उसने सब छोड़कर चाय पी ली। बिट्ठल चुप हो गया। क्या जवाब देता! दोनों बहुत देर तक बैठे रहे। होटल वाले ने देखकर कहा—

"छोड़ा क्यों, अच्छा नईं हे, मिर्ची बहुत डाला होयेंगा साला। कोई बात नईं, हम पइसा नईं लेयेंगा।"

नाना ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया। बिट्ठल ने नाना की प्लेट साफ कर दी। नाना उठते हुए बोला, "जाताय बिट्ठल !"

बिट्ठल ने एक बार नाना की ओर देखा। उसका चेहरा अब और भी उदास हो गया था। उसे खुश करने की गरज से बिट्ठल बोला—

"सिमगासन आताय नाना, मजा रहेंगा।"

"हमारा जी ठीक नई' है," कहकर नाना नीची निगाह किये लौट गया।

बिट्ठल कुछ देर बैठकर घर की ओर चल दिया। वंशी दोनों पैर फैलाये सूप में चावल बीन रही थी। पास ही आँगन में इट्ठा मछलियाँ फैला रही थी। इट्ठा के पैर भारी थे, उससे बैठा नहीं जा रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर में बैठक बदलती बोली—

"रत्ना कब आयेंगा बाय ? जास्ती दिवस हुआ। सिमगासन का कितना दिन हे बला ? पइला होली हे रत्ना का शादी कू—औरत लोक बोलताय एइ बार वंशी बाय दावत देयेंगा। हम बोला, होयेंगा किदर से, रत्ना कू नई' तड़ाया। सच, रत्ना का बिगेर चांगला नई' लगताय वंशी बाय।"

चावल बीनकर बरतन में डालती वंशी बोली—

"बिट्ठल कू आज जाने का हे न। ना जाने किदर गया ? आयेंगा तो बोलेंगा मच्छी धागा में बाँधकर लटका दे।"

वंशी चावल भरकर बुहारी लगाने लगी। इट्ठा धीरे-धीरे काम करती रही। वंशी की तरफ देखकर बोली—

"तुमारे कू ई नाम रखने का वंशी बाय।"

वंशी भीतर से हँसती और बाहर से नाराज-सी होकर बोली—

"आने का होने से पइले क्या नाम रखेंगा ?"

इट्ठा कुछ शरमाई, फिर बोली—

"जागला बोलता हे, छोकरा होयेंगा।"

"तेरे कू क्या पसन्द हे ?"

"हम क्या बोलेंगा। जो बी हो वंशी बाय, दिखता जो नई'।"

"मग ?"

"जागला की बात सही होने से...."

वंशी बुहारी लगाकर चटाई पर बैठ गई और इट्ठा की तरफ देखने लगी।

"लोकर आग जला, भात चड़ा। बिट्ठल जायेंगा खाकर।"

इट्ठा ने मछलियाँ टोकरी में भर दीं और सुखाने के लिए सूत में बाँधकर लटकाती हुई बोली—

"हमकू दिखताय उशिर नईं हे। दरद होताय कव्वी-कव्वी।"

इट्ठा का पेट बहुत भारी हो रहा था। वंशी उसे देखती रही। इसी समय बिट्ठल आया, उदास। चुपचाप आकर चटाई के एक कोने में घुटनों पर दोनों हाय फैलाए उकड़ूँ बैठ गया। उसका तमाम बदन नंगा था और कमर में रूमाल बँधा था; इससे छाती की हड्डियाँ उभर रही थीं। दाढ़ी के बाल बढ़े हुए, कुछ-कुछ गंजा सिर, उस समय लग रहा था, बिट्ठल बूढ़ा हो रहा है। वंशी बोली—

"किदर गया था बिट्ठल ?"

बिट्ठल चुप रहा।

"क्या हुआ रे ?"

"गजानन कू लेकर नाना के घर गया था, यशवन्त का वास्ते।"

वंशी ने ताने से पूछा—

"दोस्ती कियाय क्या ?"

"अपना ई कसूर हे वंशी !"

"हमारा क्या कसूर हे रे ? रत्ना जिसकू पसन्द किया, शादी करने का था न उसीसे ?"

"रत्ना क्या सुखी हे ?"

"दुखी हे क्या ?"

बिट्ठल अपनी बात से नाना का पक्ष पुष्ट न कर सका तो सीधे बोला—

"यशवन्त ब्याह नईं करेंगा।"

"नईं करेंगा तो नईं करे। अपने कू क्या ?" वंशी ने तड़ाक से उत्तर दिया, पर उसके भीतर की उत्सुकता बढ़ी। बिट्ठल को चुप देख-

कर बोली—

"और कोई नया बात हुआ क्या ?"

"उसने चाय पन त्यागाय रत्ना का शादी का बाद से ।"

वंशी पास सरक आई । इट्टा जाते-जाते रुक गई । बिट्ठल ने उच-टती नजर से इट्ठा के पेट की ओर देखा । वह एकदम धोती के बाँध से बाहर निकल रहा था । बिट्ठल ने निगाह उठाकर कहना शुरू किया—

"यशवन्त रत्ना कू भोत चाताय वंशी ! ओ और शादी नई करेगा ।" फिर थोड़ी देर बाद बोला—

"न जाने रत्ना कइसाय ? खुश होयेंगा क्या ? होटल वाला बोलता था के रत्ना कू लेकर होटल में कुच घसड़ा हुआ ।"

"क्या ?" वंशी ने चौंककर पूछा ।

"सो तो हम नई जानताय । हमने ई उसकू मना किया । नाना बी था न उदर ।"

"तो तू भात खा और रत्ना कू बुला ला । हमारा मन बी न जाने कइसा होताय । भोत दिवस हो गया ।"

इट्ठा रसोई में जाकर चूल्हा जलाने लगी तो वंशी बोली—

"छोकरी आँख का ओभल हो गयाय । होली बी आताय । छोकरी का व्याह का पइला सिमगासन हे । कुच करेंगा ई ।"

"क्या ?"

"जइसा तेरे कू कुच बी जानने का नई, क्या करना होयेंगा," वंशी ने चटाई का तिनका तोड़ते हुए गम्भीर होकर कहा । "ताड़ी का वास्ते हम पचा से बोलाय । दो घट आ जायेंगा ।"

मुस्कराकर बिट्ठल ने वंशी की ओर देखा । वंशी भीतर-ही-भीतर कुसमुसाई, जैसे उसे होली के पिछले दिन याद आ गए हों ।

"अब क्याय बिट्ठल, बूढ़ा हुआ ?"

"हम अब्बी बूढ़ा नई हुआ हे ।"

"मग, तेरे कू एक और शादी करने का न ।"

"हारेंगा नई वंशी !" बिट्ठल ने गर्व से कहा ।

"ऊमर का बात है, तू तो इट्ठा से बी जीत नईं सकेंगा।"

इट्ठा ने नाम सुना तो बाहर आ गई। बिट्ठल ने उसके पेट पर एक बार फिर दृष्टि डाली। वह पेट के अलावा शरीर से दुबला रही थी। मुँह पीला पड़ गया था, हाथ-पैर पतले हो गए थे। इट्ठा को बिट्ठल के सामने कुछ लाज लगी। उसने धोती के छोर से पेट ढक लिया। चावल उठाकर भीतर चली गई।

"पूरा दिन है ?"

"हा," वंशी ने उत्तर दिया।

"होली कर सकेंगा ?"

"होने बी सकेंगा, नईं बी। वइसा चांगला दिखताय इट्ठा। रंग साफ है।"

"हा," बिट्ठल कह उठा।

"मन होताय क्या ?" वंशी ने मुस्कराकर ताना मारते पूछा।

खाना खाकर बिट्ठल रत्ना को लेने चला गया।

× × ×

होली के दिनों में बरसोवा के कोलियों में नया जीवन आ गया। छोटे-बड़े का भेद-भाव भूलकर सब लोगों के चेहरे, शरीर, कपड़े रंग, गुलाल, स्याही से पुत गए। हफ्तों पहले जगह-जगह नाचने-गाने का आयोजन हुआ। समुद्र के किनारे, मैदान में, घर के बाहर, चाँदनी रात में स्त्री-पुरुष गिरोह-के-गिरोह नाचने के लिए इकट्ठे होने लगे। वंशी ने अपनी ओर से तैयारी की। घर के सामने मैदान में दरियाँ बिछवाईं। पहले आने वाले लोगों को एक गिलास शराब, भजिया बाँटी गई। घर के पीछे खाना तैयार हो रहा था। पाला, पटनी, पोम्फ्रेट, कोलवा आदि बीसियों चीजें बनीं। चूल्हे पर कढ़ी बन रही थी। वंशी खाने की तैयारी में रही, रत्ना स्त्रियों के स्वागत में। बिट्ठल जागला आदमियों की तरफ थे। भोज हुआ। शराब से धुत्त कोली स्त्री-पुरुष झांगरी लिये गोल बाँधकर नाचने लगे। कुछ लोग संबेल बजाने लगे। आदमी औरतों पर गुलाल उड़ाते, रंग फेंकते और औरतें आदमियों पर। औरतों ने गाना शुरू किया—

हाय हाय होली खेला तू जायगो
हाय हाय होली डरातू जायगो।

आदमियों ने आवाज लगाई—

वालाचा काल केट फेडनी जाये
बारा महिन्यांची माझी हौलू बाई
खेलत जाइ और डरत जाई।

नाना को बिट्ठल और हीरा को वंशी चुपचाप बुलाने गये। यशवन्त नाव लेकर रात को ही समुद्र में चला गया था। यशवन्त के न होने पर न नाना गया न हीरा। वह अपने घर के दरवाजे पर चुपचाप बैठा रहा। बिट्ठल ने चाहा जागला को भेजकर यशवन्त को बुला ले, पर न जाने क्यों कोई भी न गया। सिवा नाना के सारा गाँव उत्सव, नाच-गाने, शराब पीने में मस्त था। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी कोली आये, पर अगर कोई नहीं आया तो नाना, हीरा, यशवन्त। बाहर के लोगों द्वारा नाच-रंग होते हुए भी बिट्ठल का जी खुश नहीं था। वह एक बार फिर नाना को बुलाने गया तो नाना ने कहा, "बिना यशवन्त के हम न जा सकेंगा।"

स्त्री-पुरुष मस्त होकर नाच रहे थे। धीरे-धीरे नाच-ही-नाच में बाउला ने पार्वती पर एक फबती कस दी।

पार्वती ने आगे बढ़कर बाउला को एक थप्पड़ मारा। इस पर सारी महफिल में हुल्लड़ मच गया। कुछ लोग पार्वती, कुछ बाउला के पक्ष में हो गए। बिट्ठल खुद शराब पिये था, फिर भी वह जितना लोगों को समझाता लोग उतना ही भड़कते।

वंशी ने पार्वती को समझाया, पर सोमा बाउला की औरत जोर-जोर से वंशी को भी गालियाँ देने लगी। कुछ समझदार आगे बढ़े और वे बाउला को उठाकर ले गए। सोमा भी बड़बड़ाती चली गई, पर सोमा वंशी की पक्की दुश्मन बन गई। लोगों ने फिर रंग जमाया, पर समा न बँधा। रत्ना स्वयं शराब पीकर पहले नाची, फिर वहीं एक कोने में लेट गई। चार बजे तक राग-रंग जमा और धीरे-धीरे लोग अपने घर चले गए। रत्ना की नींद खुली तो वह हीरा के घर चुपचाप चल दी। बाहर एक खाट पर नाना पड़ा था। वह भीतर चली गई। कोठरी में

जमीन पर हीरा जाग रही थी। रत्ना ने जाकर हीरा के पैर छुए तो हीरा गद्‌गद होकर बोली—

"आया रत्ना, बइठ, ले इदर बैठने का।"

कुछ-कुछ अँधेरा था तो रत्ना ने कहा—

"तुम नईं आया काकी !"

"अच्चा नईं लगताय रत्ना, इसी से…"

"हा कइसा आता, यशवन्त तो समुद्र में हे। कब आयेंगा काकी ?"

"न जाने, बपोरे आने कू बोलताता।"

हीरा झपटकर चाय बना लाई। नाना ने आकर देखा, हैरान रह गया। रत्ना नाना से मामा कहती थी। बोली—

"मामा, हमसे अइसा क्या कसूर हुआ ?" इतना कहकर वह आँख में आँसू भरे नाना से जा लिपटी। नाना चुप। रत्ना को रोते देखकर नाना का हृदय पसीज उठा। उसने रत्ना के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—

"रत्ना, रोताय कायकू ? हमारा भाग ई खराब हे," वह उसके कन्धे थपथपाता रहा। रत्ना के जैसे आँसू फूट पड़े। वह रोती रही। हीरा ने देखा तो वह भी रोने लगी।

रोती-रोती रत्ना ने कहा—

"मामा छोकरी हे। हम तुमारा छोकरी हे। हमारा ऊपर कृपा करने का।"

"ओ तो सई, ओ तो सई रत्ना !"

"तुमकू हमारा बात मानने का।"

"तो ओई होयेंगा।"

"तुम तीनों कू मेरा उदर खाना खाने काय आज।"

नाना बड़े धर्म-संकट में पड़ा। अन्त में उसने 'हाँ' भरते हुए कहा—

"यशवन्त कू तू बोलना। ओ आयेंगा तो मग हम आयेंगा।"

जैसे ही रत्ना बाहर निकलने लगी तो कन्धे पर जाल रखे यशवन्त आता दिखाई पड़ा। नाना चिल्लाकर बोला—

"ए यशवन्त आ गया रत्ना !"

रत्ना ने देखा, यशवन्त अब पहले जैसा यशवन्त नहीं है। शरीर

सूखकर पीला पड़ गया है, आँखें भीतर धँस गई हैं। चेहरे पर न पहले जैसी रौनक है, न मुस्कराहट।

रत्ना ने यशवन्त को देखा तो हाथ जोड़ दिए। बोली—

"चांगलाय यशवन्त ?"

"हा, टीक हे," भरी हुई आवाज में रत्ना की तरफ से निगाह फेरकर सामान कोने में रखते हुए उसने कहा।

"गुस्साय ?"

यशवन्त ने रत्ना की ओर निगाह की तो आँखें मिल गईं। रत्ना ने यशवन्त की उदासी देखी तो भीतर-ही-भीतर सिहरकर मोह से भर गई। वह उसके और भी निकट आ गई।

"आज तुम सबकू मेरे घर खाने काय यशवन्त !"

"क्या हे आज ?"

"कुच होने सेई खाना खाने का होतायरे।"

"और दिवस कब्बी नईं हुआ ?"

रत्ना ने अधिकार के ढंग में कहा—

"तेरे कू आज मेरे उदर आने का, जान ले, बोल। काकी मामा पन आयेंगा।"

यशवन्त दिल पर पत्थर रखकर अपनी कोठरी की तरफ चला तो बोला—

"आ, बइठ न रत्ना !"

रत्ना यशवन्त की कोठरी में गई तो देखा मेज पर एक तरफ रत्ना की तस्वीर फ्रेम में लगी सामने रखी है। उसके नीचे लिखा है 'रत्ना'।

रत्ना वहीं जा खड़ी हुई। यशवन्त ने झपटकर तस्वीर हटानी चाही, पर वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुआ।

रत्ना ने देखा तो बोली—

"ए नाम कौन लिका यशवन्त ?"

"एक ने अइसे ई लिका।"

"कौन ने ?"

"हमारा घर कुरसी तो हे नईं रत्ना जो तेरे कू बइठने कू बोलूँ।

नीचे ई बइठने का।"

"कौन ने लिका हे हमारा नाम ?"

यशवन्त थूक सटककर बोला कुछ भी नहीं। केवल उसे देखता रहा

"तू लिका ?" खिलखिलाकर अट्टहास करती हुई रत्ना बोली—"किताब बी हे ? अच्चा ऽऽ। तो ए बोल, पड़ना-लिखना बी सीक लिया हे।"

रत्ना किताबें देखने उठी तो पाया मराठी की कहानी-पुस्तकों के साथ अंग्रेजी की किताब भी है। उसने उलट-पुलटकर देखा सब में यशवन्त का नाम लिखा है।

यशवन्त मन्त्र-मुग्ध-सा रत्ना के फूलों से गुथे जूड़े और बाँडिस से कसी विशाल पुष्ट बाँहों तथा यौवन से गदराये उसके मुख पर निगाहें फेरता रहा। रत्ना कभी एक निगाह भरके यशवन्त को देखती और फिर कभी किताबें देखने लगती। हीरा आई।

यशवन्त ने तस्वीर उठाकर दराज में रख दी और बोला—

"रत्ना हमारा परीक्षा लेताय माँ।"

"यशवन्त बड़ा चोर हे काकी। गपचुप इतना पड़ गयाय।"

"हम क्या जानेंगा बेटी। अब तू इससे बोल शादी कर ले।"

रत्ना किताब छोड़कर हीरा को देखने लगी। एक तरफ कोने में यशवन्त खड़ा था। उसका अन्तरमन जैसे उस परिस्थिति में अभिभूत हो रहा था। एक तरफ यशवन्त के प्रति कुछ आश्चर्यमय आकर्षण दूसरे उस परिस्थिति के प्रति दया। थोड़ी देर के लिए वह खामोश रह गई। उसने निगाह उठाकर देखा तो पाया यशवन्त जैसे सम्पूर्ण शरीर की आँखों से सतृष्ण उसी की ओर निहार रहा है। उसके भीतर अपने प्रति एक ग्लानि का भाव भर गया। मानो भीतर-भीतर पछता रही हो।

हीरा ने रत्ना के कन्धे पर हाथ रखकर गिड़गिड़ाते हुए अपनी बात दुहराई। रत्ना किस मुँह से यशवन्त से कहे। फिर भी उसने हीरा से बचने के लिए कहा—

"हा यशवन्त काकी टीक बोलताय।"

"जो बोलता ओ हम जास्ती बार सुना।"

उसने काकी के हाथ अपने हाथ में लेकर अपनी बात पर फिर जोर दिया तो यशवन्त बोला—

"नया कुच नई। हम भोत सुना रत्ना। तुम क्या बोलताय ?"

यशवन्त के इस वाक्य में जो संकेत था उसने रत्ना को झंझोड़ दिया। बोली—

"तो काकी, यशवन्त भी आयेंगा। हम जाताय क्यों यशवन्त ! आने का न जरूर।" प्रार्थना-भरे आँखों के प्रणय-नर्तन से यशवन्त भीग गया। बोला—

"अच्चा।"

रत्ना चली गई। विट्ठल और वंशी रत्ना को ढूँढ़ रहे थे। पाकर बोले—

"किदर गया था ?"

"माँ, आज मामा हीरा और यशवन्त कू अपने घर खाने का हे।"

विट्ठल प्रसन्न हो उठा। बोला—

"अइसा क्या ? हा, वंशी नाना भोत दुखी हे।"

"तुम भोत अच्चा किया रत्ना। छोकरी हमारा दोस्ती बड़ाया। दुश्मनी कांया बिट्ठल," वंशी ने प्रसन्न होकर कहा।

इट्ठा सौवर में थी। चार बजे रात को उसके लड़का हो गया। जागला इट्ठा की देख-भाल में था और बाहर का काम भी कर रहा था।

"तेरे कू ई बनाने का सब-कुच रत्ना, हम कुच नई कर सकेंगा। जा, हम मदद करेंगा।"

तो रत्ना बोली—

"हा, हम बनायेंगा। हमी बनायेंगा।"

दोपहर को जब यशवन्त, नाना, हीरा आए तो माणिक भी आ पहुँचा। वह रात को नहीं आ सका था। वंशी ने खाना परोसा। आज बिट्ठल बहुत खुश था कि नाना से फिर मित्रता हुई। इन पिछले दिनों नाना के बिना वह बहुत बेचैन था। कहाँ जाता, किससे मिलता, नाना के सिवा उसके सुख-दुख का साथी और कोई न था। नाना को भी दुःख कम न था, पर यशवन्त की परिस्थिति और लोगों के कहने से वह नाराज

हो गया था। हीरा रसोई में रत्ना की मदद कर रही थी। रत्ना की इच्छा थी कि यशवन्त को वह खुद खाना खिलाए, पर माणिक बीच में आ गया इसलिए वंशी ने खाना खिलाया। रत्ना एक बार आकर सबके खाने की व्यवस्था देख गई। फिर खास तौर से बाजार से मँगाई मिठाइयाँ परोसने वह खुद आई और नाना व यशवन्त के मना करने पर भी भरपूर मिठाई परोस गई। माणिक को उसने उतनी दी जितनी उसने माँगी। माणिक न यशवन्त से बोला न यशवन्त ही उससे। खाने के बाद यशवन्त ने एक साड़ी रत्ना को दी। नाना और विट्ठल एक-दूसरे से गले मिले। रंग डाला। रत्ना ने यशवन्त को रंग से भिगोकर गुलाल से उसका मुँह भर दिया। यशवन्त ने भी रत्ना के माथे पर गुलाल का टीका कर दिया। पान दिये गए।

खाना खिलाने के बाद उदास रत्ना अपने कमरे में खिड़की के बाहर झाँकने लगी। उसकी आँखों में आँसू थे। इसी समय विदाई लेने के लिए ढूँढ़ता हुआ यशवन्त वहाँ आकर खड़ा हो गया, पर रत्ना को देखकर चुप हो गया। रत्ना ने यशवन्त को देखा। उसकी आँखों से आँसू झर रहे थे। दोनों चुप। यशवन्त ने रत्ना के कन्धे पर हाथ रख दिया। "अब मेरे कू कोई दुख नई रत्ना, तुम दोनों खुश रहेंगा ए हम चाता।"

रत्ना उसकी छाती पर सिर रखकर झर-झर रोने लगी।

यशवन्त, और रत्ना दोनों कुछ देर मूक खड़े रहे। आहट पाकर रत्ना अलग हुई और यशवन्त को पकड़कर कहा—

"यशवन्त, हमारा वचन मानने का। तेरे कू व्याह करने का। वचन दे।"

"न करने पर बी काम चलेंगा, रत्ना। हम गँवार आदमी हे।"

"मेरे कू खोजने का क्या?"

"नई हम शादी नईं करेंगा।"

"क्यों?"

वह चुप रहा। दोनों के मन घुट-घुट रहे थे। अन्त में रत्ना ने कहा—

"हम जानताय काय शादी नईं करता।"

"हम भोत खुश हे।"

"···हम बी···" कहकर रत्ना चुप हो गई।

रत्ना को लगा यशवन्त के सामने न माणिक में कोई गुण है न कोई और बात। न जाने क्यों उसने माणिक को चुन लिया। उसके अन्तर की पीड़ा जाग उठी। कमजोर, जिद्दी, जल्दी नाराज़ होने वाले माणिक के साथ का अतीत सम्बन्ध उसकी आँखों में नाचने लगा। यशवन्त अब भी चुप था।

रत्ना भीतर की व्यथा दबाकर मुस्कराती बोली—

"यशवन्त, हमारा प्रार्थनाय तू शादी कर ले, तब्बी हम खुश रेयेंगा।"

यशवन्त ने कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बाद चुपचाप हाथ जोड़कर चला गया। रत्ना खड़ी सोचती रही।

उन्हीं दिनों शिवली से वंशी का भाई होली मनाने आया था। उसके साथ उसका मित्र रंगनाथ भी था। रंगनाथ खूब लम्बा-तड़ंगा, ढलती उमर का आदमी था। उसके शरीर पर जगह-जगह मछलियों के काटने के दाग थे। रंगनाथ काला पर साहसी। खूब हँसता, खूब बोलता। समुद्र में उसने बड़ी-बड़ी दूर चक्कर लगाए थे। होली के दिनों में कई प्रदेशों के गीत गाकर लोगों को काफी रिझाया। किस्से-कहानियों का तो जैसे उस्ताद हो। रोज रात को लोग उसकी कहानियाँ सुनते। जब उसने एक बार वेरावल से मचवा लेकर बम्बई आने की बात सुनाई तो बिट्ठल पूछ बैठा—

"काय रंगनाथ माणिक तांडेल कू जानताय ?"

"माणिक तांडेल, माणिक तांडेल कब्बी नईं था। ओ तो हमारा माहीगीर मचवा पर काम करता था। ओ बदमाश, साला चोर।"

"ओ हमारा माणिक तांडेल मग और होयेंगा," बिट्ठल ने अपनी बात का समर्थन किया।

"हमारा पास ओ माहीम का छोकरा था।"

"हा हमारा बी माहीम काय।"

"हम खूब जानताय। ओ साला चोर। ओ हमारा ताड़ी चुराया, मच्छी चुराया, हमारा दाम चुराया। ओ मग हमारा साथ वेरावल से

चला था। ओ ई तो तोफान में शीड खोलता समुद्र में गिरा। मर गया होयेंगा के किदर डूब गया होयेंगा।"

बिट्ठल ने वंशी की ओर देखा। पर सब चुप रहे। इसी बीच अचानक माणिक भूल से उसके सामने आ गया। रंगनाथ उस समय वंशी के भाई के साथ शिवली जाने को तैयार होकर बरामदे में दो-एक आदमियों से गप-शप कर रहा था। माणिक को देखते ही चिल्ला पड़ा—

"छोकरा माणिक, तू इदर किदर ? बच गया साला तुम। क्या करताय आजकाल। अब्बी बी चोरी करताय क्या ?"

माणिक रंगनाथ को देखकर सिट्टी भूल गया।

"रंगनाथ भाय, तुम इदर किदर आया ?"

"मग तू इदर किदर आया, ताड़ी चोर, दाम चोर ! साला तू बच गया। बड़ा टाट हे साला का !"

माणिक के मुँह से कोई शब्द न निकला। रंगनाथ कहने लगा—

"ओ साला, हम तुम कू पोलिस में नईं दियाय केवल इसीसे के तुम और चोरी नईं करेंगा। साला झूटा, चोर ! बिट्ठल, इस माणिक से खबरदार रहने का, हा।"

वंशी इसी बीच बोल उठी—

"ए हमारा दामाद हे रंगनाथ।"

"दामाद !" रंगनाथ हैरान हुआ। फिर सोचकर बोला—

"मग टीक से रत्ना कू रखना हा। जा अन्दर जा।"

इसके बाद वह कुछ सोचता चला गया। माणिक का बुरा हाल था। लाज शर्म के मारे बहुत देर तक वह कुछ न बोला। जब रंगनाथ चला गया तो बोला—

"ए रंगनाथ का बच्चा साला, आपन चोर और हमकू चोर बोलताय। हम इसकू देखेंगा।"

फिर भी वह भीतर से अप्रतिभ रहा। वह बहुत बोलने और रंगनाथ को गाली देने पर भी लोगों से कोई अपनी तारीफ न पा सका। उसे लगा जैसे सबने उसे चोर समझ लिया है।

इसी समय मौका देखकर माणिक रत्ना के कमरे में आया तो

बोला—

"हमकू बुलाकर वंशी बाय और काका ने हमारा अपमान किया। ओ रंगनाथ हमकू गाली दिया, मग कोई नई बोला।"

रत्ना ने उत्तर दिया—

"बाय काका कुच नई जानताय तेरा कइसा चरित्र था; हम बी नई जानता।"

"पन तेरे कू तो मालूम, हम कइसा हे। तेरे कू कौन कष्ट दियाय? तुम पन हमकू ओ दिवस मारा हम कुच नई बोला। अब कब चलने का?"

इसी बीच वंशी आ गई। उसने कुछ-कुछ सुना तो बोली—

"रत्ना अब नई जायेंगा, नई जायेंगा। जा हम उसका दुसरा शादी करेंगा। हमारा छोकरी खुश नई हे।"

रत्ना की तरफ देखकर माणिक ने पूछा—

"बोल रत्ना, खाना, कपड़ा, सैर सिनमा सब्बी तो चलताय। पूछो इसकू।"

"पन हम फैसला कियाय, ए नई जायेंगा," वंशी ने साधिकार कहा।

"ओ रंगनाथ टीक कहा, तू चोर पन बदमाश हे।"

माणिक ने जो मुँह में आया रंगनाथ के सम्बन्ध में कहा। फिर कहने लगा—

"हम तुमारा क्या चोरी कियाय? कौन बदमाशी किया? कौन कू मारा, कौन कू गाली दिया? कोई का बोलने से हमारा ऊपर दोष टीक नई।"

गुस्से में वंशी ने कहा—

"हम एक बार बोला, हम बार-बार बोला—ए नई जायेंगा। तू जा। जा, रत्ना हमारा छोकरी हे। हम नई बेजेंगा। नई बेजेंगा। तेरे कू बोल दिया।"

कहकर वंशी कमरे से निकल गई। रत्ना झूले पर बैठी सामने खड़े माणिक को देखती रही। माणिक की आँखों में आँसू आ गए। वह

नीची निगाह किये चुपचाप खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद कमरे से बाहर निकल गया। रत्ना का मन द्रवित हो उठा।

एकान्त में वंशी ने बताया कि वह निर्णय कर चुकी है, अब रत्ना माणिक के पास नहीं जायगी। वह उसकी और जगह शादी करेगी। उसे नहीं मालूम था वह इतना हीन आदमी है।

"ओ रोता था बाय।"

"उसकू जनम बर रोने काय रत्ना। हम तेरे कू नईं बेजेंगा।"

रत्ना ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप सोचती रही। दूसरे दिन जब माणिक आया तो वंशी मछली मार्कीट गई थी। रत्ना ने कह दिया—

"बाय अब मेरे कू नईं बेजेंगा।"

"मग तू क्या बोलताय रत्ना।"

"हमकू क्या बोलने का?"

"हम वचन देताय जो आगे कू कोई कष्ट देय रत्ना। ओ होटल का धन्धा तेरा बिगेर चलने का नईं।"

"पन हम होटल नईं जायेंगा।"

"ओ हम नईं बोलता, पन तुमकू निगा जरूर रखने का, कौन के हमकू बाहेर जाना होताय उस वास्ते हम बोला।" इसके साथ ही चतुर आदमी की तरह उसने कहा, "हम तुमारा बिना दो रात नईं सोया। हमारा हृदय में तुमारा बिना अंगार जलताय रत्ना, अंगार। कौन कू वोले रत्ना हमारा जीवन हे। रत्ना हमारा प्राण हे।" इतना कहकर वह चुप हो गया।

रत्ना ने कहा—

"बाय जाने देना नईं माँगता माणिक, मग हम क्या करेंगा?"

इस समय कहीं से जागला आ गया। उसने माणिक को देखा तो कहने लगा—

"तू काये कू आया इदर? जा, जा। बदमाश, चोर साला। जायेंगा के हम मार के निकाले। रत्ना, वंशी हमकू बोला, इसकू इदर आने देने का नईं।" इसके साथ ही जागला ने हाथ पकड़कर माणिक को मकान

के बाहर कर दिया।

वंशी आई तो उसने रत्ना को डाँटा—

"मग कब्बी माणिक से बोलेंगा तो हमारा छोकरी नईं।"

"पन ओ हमारा....।"

"तेरा ओ कोई नईं। तेरे कू इती दुख देताय, मारताय। मग तू उसकू पति मानेंगा बोल। कोली लोक में स्त्री राज हे। स्त्री कू दुख देने से ओ पति रहेंगा नईं। हम अब्बी-अब्बी सुना उस पर दो हज्जार मछली मार्कीट का करज हे। ओ उदर जाताय नईं। ओ पकड़ा जायेंगा। उसकू जेल होयेंगा। मग तुम क्या करेंगा? हमारा बदनामी होयेंगा। बरसोवा में हम कइसा रेंगा।"

वंशी ने रत्ना को हर तरह समझाया कि वह उसका खयाल छोड़ दे। लेकिन वह कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रही थी। वह सोचती माणिक निकम्मा, कमजोर, शराबी, बदमाश है, पर है तो उसका पति ही। उसीने माँ के विरुद्ध जाकर उसे अपना पति चुना है। अब छोड़ने पर माँ उसे निरन्तर ताने देगी। तो क्या वह उसे छोड़ दे? निश्चय ही माणिक के पास उसे कोई सुख नहीं मिला। उसकी सारी आकांक्षाएँ धूल में मिल गईं। अब कोई आशा नहीं है कि वह कभी मोटर रख सकेगा। उससे किसी भी सुख की आशा नहीं है। कभी-न-कभी वह पकड़ा जायगा। जेल होगी।

माँ माणिक का नाम लेने से चिढ़ उठती, उसे बीसियों गालियाँ सुनाती। यह देखकर रत्ना का मन कभी-कभी माणिक के प्रति भर आता। इसके साथ ही रत्ना ने बुद्धिहीनता से माणिक से ब्याह करके उसके घर को कितना कलंकित, कितना अपमानित किया है, इसकी चर्चा वंशी जब-तब छेड़ बैठती। रत्ना सब सुनती और भीतर-ही-भीतर घुटती। किससे अपना दुख कहे! कभी वह एकान्त में समुद्र के किनारे जा बैठती और सोचती रहती।

माँ ने चाहा वह घर का काम देखे, अन्य कोलियों के साथ मछली-मार्कीट जाय, पर रत्ना का मन उड़ा-उड़ा और दुखी रहता। एक दिन वंशी ने कहा—

"घर का धन्धा देख रत्ना, मन रमेंगा। जा, मार्कीट जा।"

उसने मना कर दिया। वह घर में पड़ी रही। सारे बरसोवा में माणिक को छोड़ देने की बात फैल गई। हर स्त्री जो रत्ना को देखती पूछ बैठती। इससे उसका मन और भी खिन्न होता। इसी पीड़ा में डूबी वह एक दिन बम्बई जा रही थी कि अंधेरी स्टेशन पर माणिक मिल गया। वह बरसोवा जा रहा था—बदहवास-सा, बिखरे बाल, पीला रंग। रत्ना को देखते ही पास आकर खड़ा हो गया।

"किदर जाताय रत्ना ?"

"बम्बई।"

"मार्कीट ?"

"नईं।"

"तू ? हम बरसोवा जाता था तेरे कू देखने। रत्ना, हमारे कू जीने का नईं, हमारे कू रेने का नईं। हम किदर ई जाकर प्राण दे देंगा। ए खातिर हम अन्तिम बार तुमकू देखने बरसोवा जाता था।"

रत्ना ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह आने वाली गाड़ी में जा बैठी। माणिक भी उसके साथ गाड़ी में जा बैठा। महालक्ष्मी स्टेशन पर माणिक ने आग्रह किया तो वह बीच ही में उतर पड़ी।

वंशी ने सुना तो आग-बबूला हो गई। कहलाया—

"अब मैं रत्ना का मुँह बी नईं देखूँगी।"

× × ×

इन्हीं दिनों बरसोवा में मछलीमार 'सहकार समिति' की स्थापना हुई। लोग सदस्य चुने गए। चन्दा करके एक ट्रक खरीदने का प्रश्न आया। हिसाब रखने के लिए एक कोली को मन्त्री बनाया गया। पर लोगों को उस पर विश्वास नहीं था। इससे पहले वह एक बार चोरी में पकड़ा जा चुका था। पर पढ़ा-लिखा केवल वही था। लोगों ने कहा—

"हमारा रामचन्द पर विश्वास नईं हे। ए सब खा जायेंगा।"

रामचन्द्र जानता था पढ़ा-लिखा केवल वही है, इसलिए सब लोग उसे चुनेंगे। एक-दो और ईसाई कोली पढ़े-लिखे थे, पर वे बाहर नौकरी करते थे। फिर हिन्दू कोलियों की संख्या अधिक थी, इसीलिए लोग अपने

विश्वास का आदमी चाहते थे ।

बाउला ने कहा—

"यशवन्त को बना दे ।"

दूसरा बोला, "हिसाब का काम हे, यशवन्त नईं कर सकेंगा ?"

तीसरे ने वल दिया—

"यशवन्त पड़ेला-लिखेला हे । क्यों यशवन्त तू तैयार हे ?"

रामचन्द्र ने बीच ही में बात काटकर कहा—

"तैयार होने से क्या होता हे । आदमी पड़ेला-लिखेला, हिसाब वाला चाहिए ।" इतना कहकर वह अपने साथियों की तरफ आँखें मटकाकर इशारा करने लगा । इसी बीच दूर बैठे एक कोली ने कह दिया—

"रामचन्द्र अब्बी सजा काट के आया हे ।"

दूसरे ने कह दिया, "चोरी में ।"

रामचन्द्र बलबला उठा । सफाई देते हुए उसने कहा—

"जूटा बात हे । गलती से मजिस्ट्रेट ने सजा दे दिया ।"

अन्त में सहकार समिति ने यशवन्त को मन्त्री चुना । उसे पहले दिन ही मालूम हुआ, हिसाब का काम सचमुच मुश्किल है । फिर भी वह हारा नहीं । खोजकर उसने एक आदमी निकाल लिया जिसकी सहायता से वह हिसाब रखने लगा । दो-एक मजदूर, एक ड्राइवर रखा गया । सब अपनी-अपनी मछलियाँ देते, उन्हें तौलकर ट्रकों में भरकर मार्कीट ले जाया जाता । सरकार और ठेकेदार मार्कीट में मछलियाँ खरीदने लगे । इससे कोलियों को लाभ हुआ । उनकी मछलियों के भाव बढ़ गए । यशवन्त ने दिन-रात एक करके जहाँ समिति का काम चलाया वहाँ कोलियों में पहले से अधिक रुपया बाँटने पर खुशहाली आई । उन्हें अपने माल के दाम घर बैठे मिलने लगे । सब मछलियाँ एक जगह इकट्ठी की जातीं और ट्रक में भरकर समिति के आदमी मार्कीट में बेच आते । यशवन्त भी साथ जाता।

यशवन्त से लोग खुश हुए और उसे अपने पर विश्वास जमा । खाली समय वह पढ़ने में लगाता । कमीशन में जो कुछ बचता उसमें मजदूरों और ड्राइवर की तनख्वा दी जाती । यशवन्त ने कुछ भी नहीं लिया । वह समय मिलने पर रात को समुद्र चला जाता । खर्च-भर की मछलियाँ ले

आता। खाली बैठे नाना ने भी समुद्र जाना शुरू कर दिया। इन्हीं दिनों कुछ लोगों के चन्दे से यशवन्त ने कोलियों के बच्चों के लिए प्राइमरी स्कूल खुलवा दिया। वैसे एक स्कूल पहले भी था, पर लड़के जाते ही नहीं थे। अब वह घर-घर घूमकर बच्चों के माँ-बाप से उन्हें स्कूल भेजने का अनुरोध करता। उन्हें पढ़ने-लिखने के साथ अपने न पढ़ने की बुराई बताता।

यशवन्त ने प्रयत्न करके जो स्कूल खुलवाया उसमें समय मिलने पर वह खुद भी पढ़ने और हिसाब सीखने लगा। उसी स्कूल की एक अलमारी में कुछ किताबें भी इकट्ठी की गईं। कभी-कभी लोगों के सामने वह कोई किताब सुनाता।

एक दिन वह एक मांगला वकील को पकड़ लाया और सबको इकट्ठा करके एक व्याख्यान दिलवाया।

वकील ने अपने व्याख्यान में कहा कि सब लोग उन्नति कर रहे हैं। बड़े बन रहे हैं। तुम्हें भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहिए। तुममें भी वकील, डाक्टर, इंजीनियर, व्यापारी हों, तो तुम बड़े आदमी बन सकते हो। तुम्हारे पास भी बंगले हों, मोटर हों तभी तुम्हारा नाम होगा। तुम्हें किसी से पीछे नहीं रहना चाहिए। तुम भी काउन्सिल के सदस्य बनो, तभी उन्नति कर सकते हो।

उसका व्याख्यान कुछ लोगों की समझ में आया, कुछ की नहीं। इसके बाद हिचकता-डरता यशवन्त कहने लगा—

"हमें अपने व्यापार को बढ़ाना चाहिए। हमारा व्यापार सोने का व्यापार है। जब अर्जुन ने राजा द्रुपद की सभा में मछली को बींधा, उसे द्रौपदी-जैसी सुन्दर कन्या मिली, लक्ष्मी मिली, यश मिला। इस तरह हम भी समुद्र के भीतर बसने वाली मछली को ठीक-ठीक ढंग से पकड़कर, बेध सकें तो लक्ष्मी हमारे पास होगी। मछली बहुत शुभ शकुन माना गया है। हमें सभी उपाय करना चाहिए कि हम दो सौ-चार सौ मील तक समुद्र में जा सकें और ढेर-की-ढेर मछलियों से देश की और अपनी गरीबी को दूर कर सकें। हम कितने गरीब हैं! हमारे बच्चों के पास कपड़े नहीं हैं। शिक्षा नहीं है। हमारे मकान गन्दे हैं, छोटे हैं। हमारे वरसोवा की हालत देखकर क्या कोई कह सकता है कि यह बम्बई का

एक टुकड़ा है जहाँ सड़कें चाँदी-सी चमकती हैं। एक तरफ बम्बई है और एक तरफ़ यह बरसोवा !"

यशवन्त बोलते-बोलते चुप हो गया। उसे बोलते देखकर सभा में से एक बोल उठा—

"बम्बई में बड़ा आदमी रहताय।"

"तुम भी बड़े बन सकते हो। हमारा मछली का धन्धा ठीक ढंग से चले तो हमारी भी कोठियाँ हो सकती हैं। मोटर हो सकती हैं। सड़कें बन सकती हैं।"

"तो क्या करें ?"

लोगों ने बोलने वाले को रोक दिया। यशवन्त बैठ गया। सभा समाप्त हो गई। लोगों को खुशी हुई। यशवन्त भी इतने आदमियों में बोला। कुछ लोगों ने वकील से ज्यादा यशवन्त की बातें पसन्द कीं।

यशवन्त का महत्त्व बढ़ गया। वह जहाँ कहीं कोई व्याख्यान होता जाकर सुनता। अपने गाँव में भी उसने कोलियों की सभा स्थापित की। कुछ लोग जब-तब इकट्ठे होते तो नई-नई बातें बताई जातीं। सबके ज्ञान के लिए अखबार भी सुनाए जाते।

उन्हीं दिनों नाली पूर्णिमा का दिन आ गया। यशवन्त ने पहले से बड़ी तैयारी की। नारियलों को कागज के फूलों की बजाय असली फूलों के हारों से सजाया। लोगों के विरोध करने पर उसने कहा—

"कागज के फूल तो हम इसलिए लगाते थे कि असली फूल नहीं मिलते थे। जब सारी बम्बई फूलों से भरी है तो असली फूलों से नारियलों को क्यों न सजाया जाय ?"

बड़े उत्साह से उसने बालकों, स्त्रियों और पुरुषों की अलग-अलग मण्डलियाँ बनाईं, एक पण्डित को पूजा करने के लिए बुलाया, आगे चलने के लिए एक कीर्तन-मण्डली का आयोजन किया। आगे-आगे मण्डली कीर्तन करती चल रही थी, उसके पीछे स्त्रियाँ, बच्चे-पुरुष गाते चल रहे थे।

सारे बरसोवा में चक्कर लगाने के बाद जलूस समुद्र के किनारे पहुँचा। पण्डित ने वरुणदेव का पूजन कराया और नावों पर बैठकर गीत गाते हुए स्त्रियों ने अपने-अपने नारियल जयोल्लास के साथ समुद्र

में चढ़ाए। फिर सब लोग आकर बैठ गए। नावों पर सत्यनारायण की सम्मिलित कथा हुई और सब लोग एक-दूसरे से गले मिले। स्वयं यशवन्त ने अपने से बड़ों के पैर छुए। हीरा सबसे गले मिली। देखा-देखी और लड़कों ने भी वैसा ही किया। हीरा को मिलते देखकर स्त्रियाँ हर-एक से गले मिलीं। प्रेम और नव-मिलन से लोगों में आनन्द की लहर दौड़ गई। लोगों के पुराने वैर-भाव घुल गए। फिर प्रसाद लेकर सब लोग प्रसन्न-मन अपने-अपने घर लौटे।

पीठ थपथपाती हुई वंशी यशवन्त से बोली—

"बेटा यशवन्त! आज जइसा पूजन कब्बी नई हुआ।"

"काकी, आपका कृपा हे। हम चाहताय के कोई हमारा साथ दे तो हमकू बरसोवा में बहुत काम करने का।"

"हा, करने का यशवन्त। तेरे उप्पर लोक खुश हे।"

यशवन्त का मुँह उल्लास से चमक रहा था। उसे लगा कि अच्छे काम करने को बहुत हैं। घर पर आकर उसने माँ के पैर छुए तो हीरा की आँखों में आँसू भर आए। नाना ने सबके मुँह से यशवन्त की तारीफ सुनी तो उसकी छाती फूल उठी। घर में आते ही यशवन्त ने नाना के पैरों पर अपना सिर रख दिया तो गद्‌गद होकर आँखों में आँसू भर के नाना ने पुत्र को छाती से लगा लिया।

एक दिन सवेरे लोगों ने देखा यशवन्त कुछ लड़कों के साथ मिट्टी से गली के गड्ढे भर रहा है। औरतें, बालक आश्चर्य से देखने के लिए अपने घर के दरवाजे पर आ खड़े हुए। एक ने पूछा—

"यशवन्त क्या होताय?"

"काका, पानी से मच्छर होताय। मग बीमारी होयेंगा। इस वास्ते हम मिट्टी गिराताय।" सब लड़कों ने मिट्टी डालकर गली के पानी को दबा दिया। दूसरे दिन आकर देखा तो फिर उतना ही पानी वहाँ जमा हो गया है। लक्ष्मण ने कहा—

"यशवन्त, बिना नाली पानी अइसा ई रहेंगा।"

"क्या कच्चा नाली से काम नईं हो सकेंगा?"

"तो नाली में पानी रुकेंगा। पक्का का वास्ते उतना पइसा पाहिजे।"

पैसे का नाम सुनकर यशवन्त चुप हो गया। सचमुच पैसे की समस्या तो पैसे से ही हल होगी। उसे एक उपाय सूझा तो बोला—

"हर मकान के सामने गढ़ा खोदें, तो लक्ष्मण ?" लक्ष्मण चुप हो गया। फिर कहा—

"गढ़ा कू साफ कौन करेंगा ? हर रोज तो साफ होना पाहिजे।"

"तो हम ए काम करेंगा, तुम और हम।"

"ना बाबा हमसे ए काम नईं होयेंगा, तुम करो।" और साथी भी घबरा गए। यशवन्त ने गढ़ा खोदकर तैयार किया और मकान-मालिक से कहा—

"गढ़ बन गया, अब तुम रोज पानी निकाल दिया करो।"

वह दिन-भर गढ़े खोदता रहा और चार-पाँच मकानों के सामने गढ़े बना लिए। दूसरे दिन आकर देखा तो पाया कि लोग गढ़े में से पानी निकालकर गली में फेंक रहे हैं। गली पहले से भी अधिक पानी और कीचड़ से भर गई। लोगों से यह कहने पर कि पानी वे दूर जाकर फेंकें सबने मना कर दिया। फिर गढ़े चौकोर और पक्के तो थे नहीं। किसी के किनारे टूट गए और उनसे पानी बाहर बहने लगा। किसी में पानी ज्यादा हो जाने से गढ़ों से ऊपर पानी आ गया।

यशवन्त का गलियों में सफाई रखने का विचार वहीं समाप्त हो गया। शाम को एक-दो कोलियों को साथ लेकर यशवन्त कारपोरेशन के सदस्य के घर गया तो एक-दो बार जाने पर वह मिला ही नहीं। जब मिला तो उसने कहा—

"कारपोरेशन के सामने अकेले बरसोवा का ही सवाल नहीं है। पचासों ऐसी जगह हैं जहाँ की सुधार की जरूरत है।"

"पर हमने आपको वोट दिया है तो आपका काम है हमारे गाँव की सड़कें पक्की हों, वहाँ नालियाँ बनें।"

सदस्य थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोला—

"यह तो प्रस्ताव रखना पड़ेगा। मैं बात करूँगा, देखूँगा क्या हो सकता है।"

यशवन्त बरसोवा के प्रश्न को लेकर बराबर चक्कर काटता रहा

तो एक दिन झुंझलाकर बरसोवा की तरफ से चुने गए सदस्य ने उससे कहा—

"यशवन्त, यह काम एक दिन का नहीं है। सरकारी काम है। समय आने पर हम प्रस्ताव रखेंगे। वह पास होगा। उसमें भी बहुत दिक्कतें हैं। सभी सदस्य जब तक साथ न दें तब तक प्रस्ताव पास नहीं हो सकता। फिर कारपोरेशन को अपने पास के रुपये को भी देखना होगा। बजट में गुंजाइश होगी तो वह करेगा। फिर बम्बई के किनारे के सभी 'सबर्ब' ऐसे हैं जहाँ पक्की सड़कें, गलियाँ, नालियाँ बनाने की जरूरत है। शायद इस काम में तुम्हारे गाँव के बहुत-से बेढंगे बने मकान गिराने की भी जरूरत पड़ेगी। क्या तुम लोग तैयार हो?"

वकील पटवर्धन ने इस ढंग से बात की कि वह चुप हो गया। फिर भी वह हारा नहीं, कहने लगा—

"पर यह काम तो बहुत दिन पहले होना चाहिए था। क्या हम लोग आदमी नहीं हैं? आप चलकर देखिए तो सारा बरसोवा, सड़क के किनारे के बंगलों को छोड़कर, कितना गन्दा है।"

"मैं जानता हूँ। मेरी तुम्हारे साथ पूरी सहानुभूति है। पर बात केवल मेरे हाथ की ही तो है नहीं। सब लोग जब तक साथ न दें तब-तक कैसे होगा। सभी सदस्य चाहते हैं कि उनकी अपनी चुनाव की जगहें साफ रहें, पर होती नहीं हैं।"

"हम लोग एक डेपुटेशन लेकर चलें।"

"कोई बुराई नहीं है, पर होगा कुछ नहीं, मैं जानता हूँ।"

"फिर क्या करें?"

"मैं क्या बताऊँ। एक बात पूछता हूँ।"

"कहिए।"

"आज ही आप लोगों को सफाई की जरूरत हुई, अब तक क्यों न हुई?"

"यह तो कोई बात नहीं है। कारपोरेशन पहले भी था, सदस्य पहले भी चुने जाते थे; आप क्या पहले भी मेम्बर थे?"

पटवर्धन ने देखा, कोली जाति के लोग अब जवाब भी देने लगे हैं।

यह युग का प्रभाव है। उसने भीतर-ही-भीतर कुढ़कर ऊपर से मिठास से बातें कीं। फिर कहने लगा—

"मुझे कोई एतराज़ नहीं है। यदि आप सब लोग अपने घर तुड़वाने को तैयार हों तो मैं सड़कें-नालियाँ बनवा दूँगा।"

यशवन्त के साथियों ने पूछा—

"मकान कौन बनवाएगा ?

पटवर्धन के पास जवाब हाजिर था—

"आप लोग, कारपोरेशन नहीं बनवाएगा, सोच लीजिए।"

लोगों ने इसका विरोध किया और आपस में ही फूट के कारण यशवन्त उदास लौट आया। साथियों ने कहा—

"हम कोई मालदार तो हैं नहीं जो सड़क सरकार बनवाए और हम मकान बनावें। ऐसे ही ठीक है यशवन्त।"

यशवन्त के प्रयत्न से जो चेतना की लहर बरसोवा के लोगों में उठी वह और कहीं से बल न पाकर वहीं समाप्त हो गई।

यशवन्त उदास मन पड़ा-पड़ा सोचता रहता। उसके मन में जो अपने लोगों के लिए कुछ करने की प्रेरणा थी, वह भी समाप्त हो गई। सहकार समिति का काम चल रहा था। उससे लोगों को कुछ लाभ हो रहा था। इतना ही बस मानकर लोग चुप हो गए।

एक बार यशवन्त के जी में आया कि वह सत्याग्रह करे, पर साथ देने को कोई तैयार न था। लोगों में यशवन्त के प्रति धारणा बनी कि वह व्यर्थ ही आसमान के तारे तोड़ना चाहता है। ऐसे काम करना चाहता है जो हो ही नहीं सकते। पर यशवन्त के मन का प्रवाह निरन्तर कुछ-न-कुछ करने के लिए आतुर था। वह किताबें पढ़ता। कुछ-न-कुछ सोचता। जितना ही कुछ करने को उसका जी करता उतना ही जोर से धक्का लगता। कोई कहता—

"घर का काम छोड़कर नेता बनने की सूझी है—पढ़ा न लिखा।"

दूसरे ने जोड़ा—

"अक्कल चाहिए। सभी नेता बन सकें तो फिर बड़ों-बड़ों को कौन पूछे ?"

तीसरे ने बातों-ही-बातों में कहा—

"यह रत्ना को रिझाना चाहता है कि फिर वह इसकी हो जाय, पर वह भी खूब लात मारकर भाग गई।"

जितने लोग यशवन्त के साथ हुए थे गली-नाली न बन सकने के कारण यशवन्त के विरुद्ध हो गए, उसे देखकर व्यंग करते—

"नेता जा रहा है—बरसोवा का नेता।"

हीरा कहती—

"अपना काम देख यशवन्त। घर उजड़ा जा रहा है। तुझे ही अकेले को सुधारने की क्या पड़ी है?"

यशवन्त चुपचाप सुनता और चला जाता। लोग चाहते थे कि पाठ-शाला भी टूट जाय, पर वह चलती रही। उसके लिए यशवन्त को जी तोड़कर परिश्रम करना पड़ा।

नाना ने कहा—

"मेरे से अब्बी और समुद्र का काम नई होयेंगा। हम बूड़ा हुआ।"

यशवन्त ने उत्तर दिया—

"हम अब समुद्र जायेंगा बापू!"

धीरे-धीरे यशवन्त फिर समुद्र जाने लगा। एक दिन सुबह जो मछली मारकर लौटा तो घर आते-आते सुना, "बाउला बहुत बीमार है।"

"क्या हो गयाय?"

"न जाने सोमा रोती मचान पर मछली सुखाने आई तो उसने कहा। कोई आदमी भी उसके पास नहीं है।"

यशवन्त घर पर सामान रखकर चाय पीकर सीधा बाउला के घर गया। वह दरवाजे के पास अकेला खाट पर पड़ा पेट-दर्द से चिल्ला रहा था। सारी देह पसीने से तर थी। दर्द के मारे हाथ-पाँव पीटते देखकर यशवन्त उसकी खाट के पास जा खड़ा हुआ।

"क्या बात हे काका?"

"मरताय यशवन्त और क्या?"

"किसी डाक्टर को दिखाने का न।"

"क्या इलाज करेंगा? सोमा कू मच्छी से अवकाश नई हे," कह-

कर फिर चिल्लाने लगा।

यशवन्त उठा और डाक्टर को बुला लाया। डाक्टर ने आकर देखा तो बोला—

"वाय गोले का दर्द है। दवा लिखे देता हूँ, डिस्पेंसरी से ले आओ। मेरी फीस ?"

फीस के लिए डाक्टर खड़ा रहा। बाउला फिर छटपटाने लगा। फीस का कोई इन्तजाम न देखकर यशवन्त ने कहा—

"मैं दवा लेने आता हूँ, फीस दे दूँगा।"

यशवन्त ने घर से लाकर दवा के दाम और डाक्टर की फीस चुका दी और बाउला को दवा देता रहा, गरम पानी एक बोतल में भरकर उसका पेट सेंकता रहा। सोमा ने दवा की शीशी देखी तो बोली—

"क्या यशवन्त, डाक्टर कू क्यों दिखाया ? हम ओझा जान का पास से दवा ले आता। ओ हमकू बोलाता।"

"तो क्या हुआ काकी, डाक्टर का औषध से आराम होयेंगा।"

सोमा दरवाजे पर खड़ी चिल्लाने लगी। "डाक्टर कू दिखाया, कौन देयेंगा उसका पीस ? कौन देयेंगा दवा का दाम ? हम नई देयेंगा। हमारा पास नई हे। दूसरे का माल फोकट का लगताय।"

तो यशवन्त ने चुपके आकर कहा—

"कौन माँगताय दवा का दाम काकी ? कौन पीस माँगताय ? तुम मत देना। चिल्लाओ मत। देखो, काका कू नींद आताय। अब्बी टीक होयेंगा।"

नींद आने से बाउला का दर्द कम हो गया। वह काफी देर तक सोता रहा। यशवन्त बीच-बीच में आकर उसे देख जाता। दूसरी बार दवा के समय बाउला जाग गया। यशवन्त ने आकर दवा दी तो बाउला ने दवा पीते हुए यशवन्त की ओर ऐसे देखा जैसे वह उसका बेटा हो। सोमा भीतर से आ गई।

"कइसा तब्बेत हे ?"

"अब्बी टीक हे। यशवन्त ने बचा दिया।"

"एक खुराक और पी लेने का काका। टीक होयेंगा। हम शाम

आयेंगा," कहकर यशवन्त चला गया ।

बाउला दवा पीकर लेट गया और सोमा से बोला—

"यशवन्त का नई आने से हम मरई गया ता !"

सोमा भुनभुनाती बोली—

"कोई पेट का दरद से बी मराय ? थोड़ा देर होता हे और टीक हो जाताय बाउला ।"

"तुजकू क्या मालूम कितना दरद ता ।"

"हम क्या जानता नई ? अब पीस का दाम कौन देयगा ?"

"तुम नई दियाय ?"

"हम क्यों देयेंगा ? जो लाया ओ ई देयेंगा । हम ईसाई जाब से फोकट में लाता । उसका पानी से बीमारी टीक होताय ।"

बाउला चुप हो गया । उसे लगा यशवन्त को क्या पड़ी थी जो दवा लाता, मेरी सेवा करता !

शाम को वह डाक्टर के पास गया तो मालूम हुआ सात रुपये यशवन्त दे गया है—पाँच फीस के और दो दवा के ।

उसने जाकर सोमा से रुपये माँगे तो वह बिगड़ उठी । उसने कहा—

"हम एक पइसा नई देयेंगा । हमारा पास नई हे, जा । उसकू देने का न ।"

"ओ हमारा वास्ते दियाय ।"

"हम नई देयेंगा ।"

"हम दरद से मरता था तो ओ क्यों देयेंगा ?"

"मरता तो नई," सोमा ने दाँत पीसते हुए कहा ।

बाउला क्या कहता ? इसी समय यशवन्त ने आकर कुशल पूछी और बाउला को स्वस्थ देखकर प्रसन्न हुआ । न उसने फीस का जिक्र किया, न बाउला ने ही उस सम्बन्ध में कुछ कहा । उसे भीतर-ही-भीतर एक प्रकार का सन्तोष हुआ । उसकी आत्मा परोपकार की भावना से जाग उठी ।

एक दिन लोगों ने देखा यशवन्त एक बीमार कुत्ते को कन्धे पर उठाये जा रहा है । एक ने पूछा—

"ए क्या यशवन्त, ए क्या होताय ?"

यशवन्त ने बड़ी दीनता तथा दुख से बताया, "यह कुत्ता मेरे घर पड़ा रहता था। कई दिन से इसने खाना नहीं खाया। मुझसे यह देखा नहीं गया। अस्पताल ले जा रहा हूँ।"

लोगों के देखते-देखते वह ओझल हो गया। दो दिन बाद लोगों ने देखा कि कुत्ता उसके पीछे-पीछे फिरता है।

यशवन्त जिस किसी को बीमार देखता उसके घर जाकर यथाशक्ति सेवा करता। उसके पास पैसा न था, पर बल था, दौड़-धूप करने की शक्ति थी। डाक्टर भी उस पर दया दिखाने लगा; मामूली दवा मुफ्त दे देता।

डाक्टर पटवर्धन ने एक दिन कहा—

"यशवन्त, बायकेमिक दवा से मामूली बीमारी ठीक हो जाती है। वह बाक्स ले ले।"

यशवन्त का चेहरा खिल उठा—

"ऐसा क्या डाक्टर साहब, मैं इलाज करना क्या जानूँ ?"

"उसके साथ किताब भी मिलती है। मराठी तू पढ़ लेता है।"

कुछ दिन बाद यशवन्त दवा का बाक्स ले आया और किताब के अनुसार दवा देने लगा।

एक दिन बैठा वह किताब पढ़ रहा था कि बाउला आकर पास ही बैठ गया।

"यशवन्त !"

यशवन्त ने देखा तो बोला—

"काका, कैसा तकलीफ किया ?"

"रुपया देने आयाय यशवन्त ! हमकू अपसोस हे इतना दिवस हो गया।"

"कइसा रुपया ?"

"अरे ओ पीस का।"

'अइसा क्या, क्या जरूरत था ?"

बाउला रुपया देने लगा तो यशवन्त ने कहा—

"काका, रुपये रखो, मैं किसी और दिन ले लूँगा। अभी मुझे जरू-

रत नई हे ।" बाउला के कई बार कहने पर भी यशवन्त ने रुपये नहीं लिये ।

बाउला लौट गया ।

यशवन्त मामूली बीमारी पर डरते-डरते दवा देने लगा । न पैसा लेता न कुछ । किसी को बीमार सुनता तो खुद उसके घर जा पहुँचता और अपनी दवाई दे आता ।

एक दिन एक गरीब बुढ़िया मछली उठाए चली आ रही थी । रात का समय था । कुछ लड़कों ने उसके गली में घुसते ही एक कुत्ते को उकसा दिया । उसने बुढ़िया का पैर पकड़ लिया । मछली सब वहीं गिर पड़ीं । बुढ़िया डर से भागी तो दीवार से जा टकराई । सिर फट गया । यह सब देखकर लोग घरों से निकल आए । लालटेन जलाकर देखा तो बुढ़िया बेहोश पड़ी है । लोगों ने उठाकर उसे चटाई पर लिटा दिया । कहीं से यशवन्त को खबर लगी तो वह दौड़कर आया और एक-दो आदमियों की सहायता से उसे उठाकर अपने घर ले गया । डाक्टर पटवर्धन को, जो उस पर काफी प्रसन्न था, बुलाकर दिखाया । उन्होंने उसका सिर साफ किया, दवा दी और बोला—

"कुत्ते के दाँत नहीं लगे हैं । केवल सिर का इलाज करना ठीक होगा ।"

यशवन्त रात-भर जागता रहा । हीरा को भी जागना पड़ा । आखिर लड़के को जागते देखकर वह सो भी कैसे सकती थी ! दोनों माँ-बेटों ने मिलकर सात-आठ दिन में बुढ़िया को ठीक कर दिया । अब सारे बरसोवा में यशवन्त चर्चा का विषय बन गया । वंशी, विट्ठल, बाउला, सोमा, गजानन, लक्ष्मण, सभी उस पर प्रसन्नता से भर गए । जैसे उनके घर का कोई बीमार हो ।

वंशी ने हीरा से पूछा—

"छोकरा का ब्याह नई करेंगा हीरा ?"

हीरा ने बुढ़िया की पट्टी कसते हुए कहा—

"क्या जाने वंशी इसकू क्या हो गयाय । तू ई समजा ।"

दूर से यशवन्त ने जवाब दिया—

"हमारा शादी हो गयाय काकी।"

"शादी हो गयाय ?"

"हां।"

"पन किससे, हमने तो नईं सुना।"

"लोक की सेवा से।"

"बस, इस सेवा से ?" कहकर वंशी ने बुढ़िया की ओर इशारा कर दिया। वंशी थोड़ी देर हैरान-सी रही फिर हीरा से धीरे-धीरे बोली—

"हीरा, छोकरा तेरा हाथ से जाताय।"

"मग क्या करेंगा, इसकू तो सिवा लोक का काम के और कुच नईं दिखताय बेन। बोलताय मेरे कू जीने का मूल मिल गयाय माँ।"

वंशी के लिए अप्रत्याशित बात थी। उसके हृदय में यशवन्त के प्रति एक आदर-स्नेह का भाव उभर आया। वह यशवन्त के पास जाकर कहने लगी—

"लोक का दवा-दारू के वास्ते जो खरच होयेंगा हमकू देने का यशवन्त।" यशवन्त खड़ा होकर मुसकराता पूछने लगा—

"कइसा खरच काकी ?"

"बेटा तू बरसोवा का राजकुमार हे।" वंशी की आँखों में प्रसन्नता के आँसू छलक आए। साड़ी से पोंछती वह एकटक यशवन्त को देखती रही। एक बार फिर उसके मन में रत्ना झाँक गई। वह उदास हो गई।

× × ×

रत्ना जो माणिक के पास से वापस लौटी तो उसे भीतर से कोई खुशी नहीं थी। वह जानती थी कि माणिक में परिवर्तन होना असम्भव है। वह केवल माणिक को अवसर देना चाहती थी ताकि स्वयं उसके मन में माणिक के प्रति माता-पिता द्वारा किये गए तिरस्कार का हल्का प्रतिवाद हो सके। स्वयं उसका मन न बरसोवा में प्रसन्न था न माणिक के पास। भीतर-ही-भीतर एक छटपटाहट होती रहती। एक बेचैनी उसके अन्तरंग में जाकर निरन्तर कचोटती रहती। इसलिए यथासाध्य माणिक की सेवा के बाद वह कभी समुद्र के किनारे जा बैठती तो बैठी ही रहती, लहरों का उत्थान-पतन देखती, दूर तक फैले अथाह समुद्र की छाती पर

लहरों के खेलों में खो जाती। वैसे भी समुद्र उसे बचपन से प्रिय था। जैसे वही सगा-सम्बन्धी हो, उसकी आशा का एक मात्र सहारा। यहीं उसे सुख मिलता, यहीं शान्ति। बहुत सोचने पर भी कुछ उसकी समझ में न आता तो वह एकदम समुद्र के किनारे लेटकर आकाश में उगे तारों और लहरों में अपने को भूल जाती। कभी-कभी देर तक पड़े रहने के बाद उसे याद आता कि माणिक के आने का समय हो गया है।

पहले की अपेक्षा अब माणिक और उसके सम्बन्ध ठीक थे। उसने रत्ना को प्रसन्न करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। वह उसको सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करता। रत्ना को लगा—माणिक अब ठीक हो रहा है। फिर भी उसका संशयालु मन पूरी तरह आश्वस्त नहीं था। उसे लगा जैसे माणिक को अच्छे-बुरे पन के 'फिट्स' आते हैं। न जाने कब क्या कर बैठे। वह नित्य नियम से होटल जाता और रात को ठीक समय पर लौट आता। उसने कोशिश की रत्ना होटल के काउन्टर पर बैठे। इसके लिए उसने आग्रह भी किया, खुशामद भी की, पर रत्ना ने नहीं माना।

एक दिन वह बोला—

"रत्ना, जर हम रुपया कमायेंगा तो तेरे कू पन सुख मिलेगा। रुपया ई तो मुख्य हे आजकल।"

"सो ?" रत्ना ने प्रश्न-भरी दृष्टि से माणिक की ओर देखते हुए पूछा।

"हमारा मतलब तेरे कू होटल में बैठने पर कस्टमर जास्ती आयेंगा, जास्ती पैसा मिलेंगा।"

"मेरे कू होटल में बैठने का नईं। हम नईं जायेंगा। लोक भोत खराब आताय। हमकू घूरताय, माणिक! ए हमकू अच्चा नईं दिखता। हम तो तेरा अकेला का औरत हे, दुनिया-भर का तो नईं।"

"पन अपना मन साप होयेंगा तो कोई साला का हिम्मत नईं होयेंगा।"

"नईं, हम नईं जायेंगा। हम देख लिया।"

माणिक चुप हो गया। उसने आगे कुछ नहीं कहा। वैसे वह चाहता था रत्ना बैठे तो होटल खूब चले। वह इसे भी बुरा नहीं मानता था

कि लोग उसकी औरत को घूरकर देखें। माणिक को रुपये के सिवा और किसी बात की चिन्ता नहीं थी। रुपये पाने की उग्र चाह में वह रत्ना के स्त्री होने का भी फायदा उठाना चाहता था। इसी बीच कभी-कभी माणिक फिर गड़बड़ाने लगा। वह रत्ना को गाली दे बैठता। जब रत्ना कहती कि यदि अब वह गई तो फिर कभी नहीं आएगी तब वह चुप हो जाता।

इससे रत्ना माणिक के प्रति और भी उदास हो गई। वह मेहमान की तरह रहने लगी, जैसे उसे किसी तरह कुछ दिन काटने हैं, किसी तरह कुछ दिन उसके साथ निबाहना है। आगे का मार्ग फिर भी कुछ स्पष्ट नहीं था। उसे लगता अब वह अकेली है, वह सोचती जो कुछ करना है उसे ही करना है। वह करेगी, अपना रस्ता बनायेगी। उसे अच्छी तरह जीना है, चाहे उसको पाने के लिए उसे कितनी भी दूर जाना पड़े, कुछ भी क्यों न करना पड़े। यह सब विचार दूसरे दिन और भी उग्र हो गए। जब रात को माणिक शराब पीकर रात के बारह बजे लौटा तो आते ही उसने आर्डर दिया—"खाना ला।"

"आज खाना नई हे।"

तड़ककर माणिक ने पूछा—"क्यों ?"

"चावल नई था।"

माणिक को क्रोध आ गया। उसने पास पड़ी चप्पल रत्ना के ऊपर फेंकी—

"सुसरी, हरामजादी, दिन-बर बैठा क्या करताय ? खाना बी नई बनाताय, यार के पास जाताय······"

रत्ना तो क्रोध में भरी बठी ही थी। उसने उसी चप्पल से नशे में झूमते माणिक को तड़ाक-तड़ाक पीटना शुरू कर दिया। जब माणिक उठकर धक्का देने आगे बढ़ा तो रत्ना ने कोने में रखी लकड़ी उठाकर पाँच-सात डण्डे और जमा दिये।

माणिक का नशा उतर गया। थोड़ी देर तक वह बैठा रहा। फिर बिना कुछ कहे बाहर चला गया। रात-भर नहीं लौटा।

सवेरे आकर बोला, "हम तेरे कू आज से छोड़ताय, रास्ता नाप।"

"हम खुद बी नईं रहना माँगताय ।"

"तेरे कू और खसम करने का ?"

"हा करेंगा, करेंगा ।"

"कर लेंगा तो जा हमारा घर खल्लास कर ।"

"तेरा क्या बाप का घेर हे ? हम अपना सब ले जायेंगा ।"

"ले जा बाबा, हमारा पीछा छोड़ ।" माणिक नरम पड़ गया । रत्ना ने अपना सामान बाँधा और मजदूर बुलाकर सारा सामान रखवाकर चल दी । पहले खयाल था, वह बरसोवा जायगी, पर बाहर आकर रुक गई । सारिका के घर जा पहुँची । सारिका बाहर जाने को तैयार होकर निकल रही थी कि रत्ना को देखकर बोली—

"यह क्या ?"

"मैंने माणिक को त्याग दिया है । जरा जगह दे दे, सामान रख दूँ ।"

सारिका ने स्टोर में सामान रखवा दिया और बोली—

"क्या हुआ ?"

रत्ना ने आदि से अन्त तक कथा सुनाते हुए कहा—

"बस, अब मैं अपना रास्ता बनाऊँगी ।"

"बरसोवा ?" सारिका ने पूछा ।

"नहीं । मैं चाहती थी बरसोवा जाऊँ और यशवन्त से शादी करूँ, पर अब मैं ऐसा नहीं करूँगी ।"

"फिर क्या करेगी ?"

"कुछ नहीं कह सकती । मैं तेरा मकान दो-एक दिन में छोड़ दूँगी ।"

"मकान की ऐसी क्या जल्दी है ? मैं अकेली हूँ । वे बाहर गये हैं । दो-एक दिन में ठीक हो जाय तो चली जाना," सारिका ने रत्ना के कन्धे पर हाथ रखकर कहा ।

"अच्छा ।"

"ठहर, तूने चाय भी नहीं पी होगी । खाना खाएगी ?"

"भूख नहीं है । तू जा, जहाँ जाना है ।"

सारिका ने स्टोव उसके सामने रखते हुए कहा—

"स्टोर में सामान है, बना लेना। शाम को मैं आकर बनाऊँगी।"

"हाँ, तू जा।"

सारिका चली गई। रत्ना चाय पीकर पास वाले बाग में बैठी सोचती रही; सोचती रही। उसने महसूस किया वह अकेली है। जैसे सारा संसार उसके लिए अनजान है। कहीं भी कोई सहारा नहीं है। तो क्या वह बरसोवा चली जाय? माँ के सामने अपनी गलती मान ले। यशवन्त के साथ शादी कर ले। बरसोवा, बरसोवा! यशवन्त, वंशी, बिट्ठल, एक-एक करके उसके ध्यान में आते। किन्तु माँ ने उसकी शकल देखने को मना कर दिया था। उसने निश्चय किया वह बरसोवा नहीं जायगी। उसे माणिक से घृणा थी, अपने से घृणा हो गई। जी में आता, समुद्र में प्राण दे दे, डूब मरे। फिर क्या? क्या यही जीने का मतलब है? उसे एक साहसी मच्छीमार औरत की याद आ गई, जिसने पति के मर जाने पर स्वयं समुद्र जाकर मच्छी लाना शुरू किया था और जान पर खेलकर एक डूबते आदमी को बचाया था। उसकी सेवा करके उसे ठीक किया और फिर उससे शादी करके सुखी हुई; उस व्यक्ति की अतुल सम्पत्ति की मालिक बनी। यही सोचते हुए कभी रत्ना की हिम्मत बढ़ती, कभी कमजोरी से फूटकर रोने लगती।

शाम को बरामदे में चाय पीने बैठी सारिका ने पूछा—

"हाँ, अब कह रत्ना।"

रत्ना अनमनी बैठी रही।

"क्या सोच रही है?"

"सोच रही हूँ क्या करना चाहिए। कहीं मुझे नौकरी नहीं मिल सकती?"

"टाइप जानती तो शायद कहीं काम बन सकता था," सारिका ने रत्ना की ओर देखकर कहा।

"मैं टाइप सीखूँगी। मेरे पास कुछ रुपया है।"

"दो-तीन महीने तो लगेंगे ही। और घर?"

"घर मैं नहीं जाऊँगी। माँ को अपना मुँह नहीं दिखाऊँगी, जब तक

अपने पैरों पर खड़ी न हो सकूँगी।"

सारिका 'हूँ' कहकर चुप हो गई। थोड़ी देर बाद बोली—

"अकेले रहना बड़ा मुश्किल है रत्ना! लोग उँगली उठायेंगे, बदनीयती से देखेंगे, तेरी खूबसूरती को एक्सप्लायट करने की कोशिश करेंगे।"

"बिना मेरी इच्छा के भी?"

"इसमें 'इच्छा' का क्या प्रश्न है? गुड़ पर चींटे तो दौड़ते ही हैं। मेरा तो घर था, माँ-बाप थे, फिर भी लोग मुझे तंग करने से नहीं चूके। आजकल अपने को बचाकर रखना बड़ा मुश्किल है रत्ना!"

रत्ना चुप रही, फिर बोली, "टाइप सिखाने का कोई स्कूल है पास में? पर ठहर, मुझे अपने रहने का ठिकाना पहले करना है।"

"माहिम में कुछ ईसाई परिवार 'पेड गेस्ट' रखते हैं।"

दोनों उठीं और कमरे के लिए इधर-उधर पूछती रहीं। दूसरे दिन रत्ना खुद अकेले मकान ढूँढ़ती रही। शाम को सारिका आकर बोली—

"कल मेरे पति बाहर से आ रहे हैं, अभी चिट्ठी आई है।"

"मैं होटल में चली जाऊँगी।"

सारिका चुप हो गई। थोड़ी देर बाद बोली—

"मकान मिलना सचमुच मुश्किल है। आदमी हो तो कहीं भी पड़ा रहे। हजारों लोग फुटपाथ पर सोते ही हैं।"

"कहे तो एक परिवार में नौकरी कर लूँ।"

"क्या करना होगा?"

"बच्चों को खिलाना और ऊपर का काम। रहने को गैरेज देंगे।" रत्ना ने सलाह लेने की गरज से सारिका की तरफ देखते हुए कहा।

"बरसोवा चली जा रत्ना! वहाँ वंशी माँ कुछ-न-कुछ इन्तजाम कर देंगी। आखिर सारी सम्पत्ति भी तो तेरी है।"

दृढ़ता से रत्ना ने उत्तर दिया—

"मैं बरसोवा नहीं जाऊँगी। अपने पैरों पर खड़ी होऊँगी, चाहे कितना भी दुख मुझे झेलना पड़े। मैं दुःख देखना चाहती हूँ सारिका! मैं संघर्ष करूँगी। मैं देखना चाहती हूँ मैं क्या कर सकती हूँ। अभी

फिलहाल मैं बच्चों को खिलाने की नौकरी करूँगी।"

"तुझे बच्चों को खिलाना आता है ?"

"आ जायगा। क्या मैं इतना भी नहीं कर सकूगी ?"

दूसरे दिन एक परिवार में रत्ना को नौकरी मिल गई। दो छोटे बच्चे, एक पन्द्रह साल का लड़का, स्त्री-पुरुष और एक साला। एक रसोइया, एक ऊपर के काम का नौकर। यही लोग थे। आठ के बाद नवीं रत्ना थी। नीचे की मंजिल में एक कोठरी उसे दे दी गई। सुबह-शाम वह बच्चों को घुमाने ले जाती। दिन में उन्हें घर पर खिलाती। कपड़े बदलती, दूध पिलाती। उनके सो जाने पर वहीं बैठी रहती या मालकिन कोई और काम बताती तो वह कर देती।

मालकिन प्रौढ़ स्त्री, रंग गेहुआँ, शरीर इकहरा, नख-शिख साधारण, बातचीत में तेजी थी। जरा कोई काम अपने मन का न देखती तो डाँट देती। रसोइया मुँह चढ़ा, गाली बकने वाला, शायद उनके घर की तरफ का था। दूसरा नौकर घाटी था। इसलिए हुकूमत रसोइये की थी। वही हर समय सबको डाँटता। रत्ना को देखकर पूछने लगा—

"तेरा मालिक है ?"

"नहीं," रत्ना ने कहा।

"ब्याह नहीं हुआ ?"

"हो गया।"

"छोड़ दिया।"

रामू चिल्लाकर बोला—

"बीबी जी, मालिक छोड़ आई है।"

बीबी पूछ बैठी—

"क्यों री क्यों छोड़ा ?"

"पटी नहीं। मारता था। शराब पीता था।"

एकान्त पाकर रामू रत्ना से बोला—

"मजे में रह, जिस चीज की जरूरत हो, हमसे कहना भला।"

शाम को मालिक के साले ने देखा तो रामू से पूछ बैठा—

"अच्छा शिकार है ?"

"देखते जाओ बाबू, पैरों न पड़ा दिया तो कहना रामू क्या कहे था।"

सेठ के आने पर दोनों चुप हो गए। रात को रामू और साला घुट-घुटकर रत्ना के सम्बन्ध में बातें करते रहे।

रत्ना का काम कठिन नहीं था, पर हाजरी चौबीस घण्टे की थी। रात को गैरेज में सोती। दिन में उनकी देखभाल करती। दो-तीन दिन में ही उसे लगा कि यह नौकरी वह नहीं कर सकेगी। न वह कहीं बाहर जा सकती है न किसी से मिल सकती है। तीसरे दिन दोपहर को बच्चे सो रहे थे, वह मालकिन से बोली—

"मुझे दो घण्टे रोज बाहर जाने की छुट्टी चाहिए।"

मालकिन जो सोफासेट पर पैर फैलाए कहानियों की कोई किताब पढ़ रही थी, नजर हटाकर बोली—

"क्या है, क्या बात है?"

रत्ना ने अपनी बात दुहराई तो उसने उत्तर दिया—

"यह नहीं हो सकता।" फिर पूछा, "बाहर कहाँ जायगी?"

"टाइप सीखने," रत्ना बोली।

"टाइप?" सरस्वती उठकर बैठ गई। "क्या तू पढ़ी है री?"

"कुछ-कुछ।"

"टाइप क्यों सीखती है?"

रत्ना क्या जवाब देती। चुप हो गई। छोटे बच्चे के दाँत निकल रहे थे। वह दिन-भर कपड़े खराब करता। रत्ना को पहले बुरा लगा। सोचा छोड़कर चल दे। पर कहाँ? सोचकर चुप हो गई। दिन बीतने लगे।

एक रात रत्ना बच्चों के पास कमरे में फरश पर लेटी थी। कमरे में अँधेरा था। सोते-सोते अचानक उसे किसी के स्पर्श का अनुभव हुआ। जैसे कोई पास ही बैठा हो। वह साँस सुनने लगी। बोली—

"कौन?"

"चुप। ये ले," इसके साथ ही एक कागज उसके हाथ में आया। वह उठ बैठी।

"कौन है तू?" जब तक वह बिजली जलाने उठी तब तक कमरा

खाली था। वह समझ गई यह कौन हो सकता है। चुप रही।

दूसरे दिन सवेरे रत्ना को न चाय मिली न नाश्ता। वह सवेरे बड़े बच्चे को घुमाने ले गई। छोटा मालकिन के पास रहा।

बारह बज गए। सेठ और उसका साला खाकर चले गए। सेठानी खा चुकी। फिर भी उसे नहीं बुलाया गया। सबके खा चुकने के बाद रामू आकर बोला—

"आज तो खाना बचा नहीं। दो रोटी हैं, अचार से खा ले।"

रत्ना न रसोई में गई, न खाना खाया। सेठानी ने भी कुछ न पूछा। सेठानी अपने कमरे में लेटी रही और बाहर से आई औरतों के साथ बातें करने लगी।

बच्चों के सोकर उठने और रोने पर वहीं से आवाज लगाकर बोली—

"अरी रत्ना, बच्चों को चुप करा। हो तो दूध दे दे। फिर साथिनों से बोली, "मेरी आया के तो दूध नहीं है। हमने सेठ से कहा था कोई दूधवाली आया ले आओ। मेरे तो तुम जानो दूध उतरता ही नहीं है।"

"दलिया खाओ दूध के साथ। दूध उतरेगा।"

रत्ना उठी और बच्चे को दूध पिलाने लगी। दोनों रो रहे थे। तो सेठानी जी ने वहीं से आवाज लगाई—

"अरी रुआवे क्यों है? मुझे दे जा छोटे को।"

रत्ना छोटे को लाई तो उसने रास्ते में ही उसके कपड़े खराब कर दिए। इस पर सेठानी फिर चिल्लाई, तो रत्ना बोली—

"बीबी जी इसने टट्टी कर दी।"

"तो टट्टी साफ करके ले आ।"

रत्ना को वह भी करना पड़ा। उसने निश्चय किया वह आज शाम को ही नौकरी छोड़ देगी। 'पर?' 'पर' का प्रश्न फिर उसके सामने आकर खड़ा हो गया। दूध देने के बाद बड़ा बच्चा फिर सो गया। छोटा सेठानी के पास खेलता रहा।

इसी बीच कहीं से रामू रत्ना के सामने आकर खड़ा हो गया। रत्ना नीची निगाह किये बच्चे को थपथपाती रही थी। वह पास आकर रत्ना को लड्डू देता हुआ बोला—

"ले लड्डू खा ले।"

रत्ना ने अंगार उगलती आँखों से उसकी ओर देखा तो रामू कुछ सहमा फिर बोला—"कान खोलकर सुन ले, इस घर में रहेगी तो मेरी बात माननी पड़ेगी। सेठानी भी कुछ नहीं कर सकती। ले, तेरे लिए लाया हूँ। खा ले मेरी जान!"

उसने जबरदस्ती लड्डू उसके हाथ में रखे तो रत्ना ने लड्डू रामू के मुँह पर दे मारे और बोली—

"तू नहीं जानता मैं कौन हूँ? याद रखना मुझसे कुछ कहा तो खून पी लूँगी। बोटी-बोटी काटकर समुद्र में फेंक आऊँगी, पता भी नहीं चलेगा।"

रत्ना का विकराल रूप देखकर रामू के होश उड़ गए। उसे लगा, सचमुच यह औरत बड़ी खतरनाक है।

वह चुपचाप चला गया। रत्ना ने थोड़ी देर बाद मुस्कराकर गिरे हुए लड्डू का चूरा बटोरकर खा लिया। जब थोड़ी देर बाद सेठानी अकेली हुई तो जाकर बोली—

"आज मुझे खाना नहीं मिला। चाय-नाश्ता भी नहीं।"

सेठानी ने रामू को बुलाकर पूछा, "अरे आज रत्ना को खाना नहीं दिया। सवेरे चाय भी नहीं दी।"

रामू बगलें झाँकते बोला—

"खाना बचा ही नहीं। चाय के बखत यह बाहर थी। मैंने कहा दो रोटी हैं अचार से खा ले। पर यह आई ही नहीं।"

"पर यह तो सवेरे से भुक्खी है। तू बड़ा बेरहम है रे।"

"अब तो शाम को बनेगा।"

"ठहर!" सेठानी उठी और अपने कमरे से कुछ मठरी, लड्डू, सेव पापड़ी ले आई और रत्ना को देती बोली—

"ले खा ले।"

रत्ना ने पेट-भर खाकर पानी पिया और डकार लेकर निर्द्वन्द्व-सी झूले में सोते बच्चे के पास नीचे लेट गई।

दो-एक दिन ऐसे ही बीते। एक रात उसे लगा कि कोई कमरे में धीरे-

धीरे आ रहा है। वह चुपचाप सजग हो गई। धीरे-धीरे जैसे किसी ने उसके शरीर को स्पर्श किया। रत्ना ने हाथ बढ़ाकर उसके बाल जोर से पकड़कर खींचे और पीछे धक्का देकर वह उसकी छाती पर चढ़ बैठी और लगी उसे मुक्कों से मारने। पहले तो वह व्यक्ति चुपचाप जोर लगाकर बचाता रहा, किन्तु बेदम होकर चिल्लाने पर सेठ-सेठानी उठकर आ गए। बिजली जलाकर देखा तो उसका साला था। सेठ बिना कुछ कहे साले को लेकर चला गया।

छंगामल के मुँह-पीठ पर नीले दाग थे। उसका मुँह सूजा हुआ था। एक आँख में खून निकल रहा था। रात-भर मरहम पट्टी के बाद सवेरे डाक्टर आया। आँख में बहुत चोट आई थी। उसे अस्पताल ले जाया गया।

काम पर जाने से पहले सेठ ने रत्ना को बुलाकर पचास रुपये देते हुए कहा—

"तेरी नौकरी खतम है। अपना असबाब उठा ले जा।"

रत्ना ने पूछा—

"क्यों, मेरा क्या कुसूर है?"

"किसी का भी कुसूर हो। मैं ऐसी आया नहीं रख सकता।"

सेठानी बोली—

"डायन है डायन। मेरे भाई को मार ही डाला था।"

"मैं अपनी इज्जत न बचाती सेठानी जी?"

"ले बोलो, इसकी भी कोई इज्जत है। खसम छोड़ के इज्जत लिये फिरे है। जा मेरे घर तेरी जगा नहीं है बाबा। तेरा क्या ठीक ठिकाना, कोई को मार दे।"

सेठ बोला—

"गलती तो हमारी है। वो साड़ा गया क्यों इसके पास रात को? और कहीं जा के क्यों नहीं मरा? हमने धाय रखी है, रंडी तो नहीं रखी है।"

"दोनों मिलकर मेरे भाई को मार डालो न।"

सेठानी की आँखों में आँसू आ गए और जोर-जोर से चिल्लाती हुई

गाली देने लगी। सेठ चुप सुनता रहा। अन्त में उठता हुआ बोला—

"जा बाई, तू जा।"

रत्ना अगले दिन फिर सामान लिये सड़क के किनारे एक कोने में खड़ी थी। सारिका ने सुना तो हँसते-हँसते बोली—

"और रामू।"

"मुझे खयाल आया यह रामू है, नहीं तो मैं इतना न पीटती। सेठानी का भाई बुरा नहीं था। रामू ने उसे बहकाकर भेज दिया। मुझे पीछे बहुत दुख भी हुआ।"

"मरम्मत रामू की होनी चाहिए थी। अरी हाँ, हमारे मकान में ऊपर एक वकील साहब रहते हैं।"

"फिर ?"

"कहते हैं उन्होंने अपनी पत्नी को छोड़ दिया है। अकेले हैं।"

"तो क्या उससे ब्याह कर लूँ ?"

"बुरा नहीं है।"

"पर मैं तो बुरी हूँ।"

"इसी गली के मोड़ पर भीखा भाई चाल में एक कमरा खाली हुआ है। मुझे मालूम था तुझसे नौकरी नहीं होगी, इसीलिए मैंने ले लिया।"

"तुझे कैसे मालूम मैं नौकरी नहीं कर सकूँगी ?"

"क्योंकि तूने कभी नौकरी नहीं की।"

रत्ना उस कमरे में शिफ्ट कर गई। सुबह-शाम वह टाइप सीखती। दिन में काम ढूँढ़ती। पर काम कोई ठीक ढंग का नहीं मिल रहा था। रत्ना जहाँ जाती वहीं अयोग्ता देखकर उसे जवाब मिल जाता। हाँ ऐसे बहुत मिलते जो आनन्द लूटना चाहते थे। उस दिन इतवार था। रत्ना दोपहर-भर कमरे में पड़ी रहने के बाद सारिका के यहाँ गई। सारिका के पति ने देखा तो बोला—

"ऊपर की मंजिल के वकील आपसे मिलना चाहते हैं।"

"क्यों, मैं तो उन्हें नहीं जानती।"

"शायद सारिका ने कोई बात की होगी। ठहरिए, मैं सारिका को

बुलाता हूँ।"

"आप बैठिए मैं उससे खुद मिल लूँगी।" रत्ना भीतर कमरे में चली गई। भाटकेकर बैठा अखबार पढ़ता रहा।

थोड़ी देर बाद सारिका रत्ना का हाथ पकड़े आई।

"क्योंजी क्या कह रहे थे आप ?"

भाटकेकर सकपका उठा। अखबार मेज पर रखकर बोला—

"कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं।"

"उस वकील के सम्बन्ध में।"

"हाँ तुम्हीं तो कहती थीं वह मिलना चाहता है।"

"यह मैंने कब कहा ?"

"तो और कुछ कहा होगा। मुझे यही याद रहा।"

भाटकेकर ने जगह दे दी। सारिका उसके साथ काउच पर बैठ गई। चाय उसने मेज पर रख दी। सामने रत्ना बैठी।

"अरे मैं भी कैसी हूँ। ठहरो।" सारिका फिर अन्दर जाकर कुछ खाने का सामान भी ले आई। तीनों मिलकर चाय पीने लगे।

सारिका ने कहा—

"आप तो बहुत डेंजरस आदमी हैं। जो मैंने नहीं कहा वह भी आपने मेरे नाम से जड़ दिया।"

"तो शायद उस वकील ने ही कहा होगा।"

"क्यों, उसे रत्ना की बाबत क्या मालूम ?" सारिका ने चाय का प्याला हाथ में ही लिये पूछा।

इसी समय ऊपर से खट-खट उतरता वकील आ गया। उसने इन सब को देखा तो बोला—

"मैं अन्दर आऊँ क्या ?"

"आइये, आइए।" सब उठकर खड़े हो गए। तो उसने दोनों ओर सिर झुकाकर नमस्कार किया। एक खाली कुर्सी पर वह बैठ गया। जेब से घड़ी निकालकर बोला—

"हमकू याद नहीं रहा तो हम दस मिनट पहले निकल आया। बस-स्टेन्ड पहुँचने में अबी पाँच मिनट लगेगा। तीन मिनट आने में लग

जायगा। हमकू विचार आया तो तीन मिनट 'सेब' करके आप के साथ बात करूँ। सिरफ तीन मिनट। हमकू चाय पीना नहीं माँगता। तुम लोग पियो।"

वह बैठा घड़ी देखता रहा। बोला—

"मेरे कू एक-एक साँस किम्मती है। हमकू ख्याल आया कि घड़ी से साँस बाँधूँ। उसकी ऐसी क्या हिम्मत के ओ बँध नहीं सकेंगा।"

सारिका ने पूछा—

"मैं नहीं समझी।"

"देखिए एक मिनट खल्लास हो गया। दो मिनट बाकी हैं। अब मिनट का उपयोग हम ऐसा करूँगा कि आपसे (भाटकेकर से) आज के छापा की खबर सुनूँगा। हाँ साहब, क्या खबर है आज का ? मैंने आज छापा नहीं देखा। एक केस बीच में आ पड़ा।"

भाटकेकर ने दो-एक खबरें बताई तो बोला—

"ठीक। अब इस पर कमेन्ट का बखत नहीं है। दो-एक खबर और बोल दीजिए।"

ठीक तीन मिनट समाप्त होते ही वह चल पड़ा। बाहर से याद आने पर थोड़ा लौटकर नमस्कार किया और तेजी से चला गया।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद सारिका ने कहा—

"देखा इस वकील को रत्ना, एक-एक मिनट का हिसाब रखता है।"

भाटकेकर ने कहा, "मजेदार आदमी है। बेहद रुपया है। अकेला है। एक नौकर बस।"

"दान भी करता है। अभी पिछले दिनों पारसी समाज को दस हजार रुपया दिया है।"

"शादी नहीं की ?" रत्ना ने पूछा।

"यदि तू इसका उद्धार कर सके तो बात करूँ," सारिका बोली।

"उद्धार माने शादी। शादी माने प्रेम। तो पहले प्रेम तो हो ?"

याद आने पर भाटकेकर ने कहा, "वकील के नौकर ने ही मुझसे कहा था। अब याद आया।"

"वह कैसे जानता है ?"

"न मालूम। हमारे यहीं रत्ना को देखा होगा," भाटकेकर ने उत्तर दिया।

"तुम भी बेसिर-पैर की हाँकते हो।"

"ठहरो, मैं उसको बुलाता हूँ।" नीचे मैदान में खड़े होकर भाटकेकर ने पुकारा तो नौकर नीचे आ गया। उसने स्वीकार किया कि साहब ने खुद मुझसे कहा तभी मैंने इनसे कहा था।"

पर रत्ना तो यहीं थी। उसने तो कुछ भी नहीं कहा। सारिका ने पूछा तो नौकर बोला—

"जाने की जल्दी में उन्हें यह भी याद न रहा होगा कि और कोई भी बैठा है।"

रत्ना रात-भर उस वकील की बाबत सोचती रही। उसे वकील का व्यवहार अजीब-सा लगा। वह बहुत देर तक मन-ही-मन हँसती रही। क्या ऐसे भी आदमी होते हैं। फिर उसे याद आया यह मालदार है। देखने में बुरा भी नहीं है। वकील है। एक नौकर भी है। अभी उसने दस हजार दान दिया है, जब कि सारिका के घर एक घाटी औरत काम करती है। वह उठी और चाय बनाती अपने भविष्य के बारे में सोचने लगी। क्या जिस वातावरण में से एक बार निकल आई है उसमें चली जाय? सेठ के यहाँ उसे जो अनुभव हुआ उससे हिम्मत बढ़ी। यह पहला ही अवसर था कि उसे आत्मरक्षा के लिए अकेले संघर्ष करना पड़ा। उसे लगा स्त्री यदि हिम्मत करे तो क्या नहीं कर सकती। उसे अभी ऐसे ही रहना चाहिए। जब नहीं चलेगा तो माँ है। वरसोवा तो है ही।

हाँ, तो वह कहीं नहीं जायगी। एक बार जिन्दगी को अपने प्रवाह में बहने देगी। वह नहीं जायगी। देखेगी नाव कहाँ किनारे जाकर लगती है। उसने आराम से चाय उंड़ेली और विचारों की दौड़ के साथ एक-एक घूँट भरने लगी, जैसे चाय का एक घूँट जीवन में उसे एक नया उत्साह दे रहा हो। धीरे-धीरे काम से निवटकर सन्दूक से रेशमी साड़ी निकाली, रेशमी ब्लाउज पहना, बिन्दी लगाकर तैयार हुई। उसे ड्रेसिंग टेबल का अभाव अनुभव हुआ। एक छोटे से शीशे से काम चला-

कर बाहर निकल पड़ी। चलते समय उसे लगा एक रिस्ट-वाच भी उसके पास नहीं है। माणिक के पास रहकर वह कलाई की उम्दा घड़ी भी नहीं खरीद सकी। उसे माणिक का ध्यान आया तो अपने मन से सब पुरानी स्मृतियों को निकालकर घृणा के साथ सड़क पर चल दी। टाइप की दुकान पर पहुँचते ही देखा कि अभी दुकान बन्द है। आध घन्टे की देर है। एक बार जी में आया सारिका के घर का चक्कर लगा आये, पर वैसा न करके समुद्र के किनारे जा बैठी।

उसने देखा टाइप-मास्टर उसमें ज्यादा दिलचस्पी ले रहा है। वह सटकर उसे टाइप सिखाता। उसकी अँगुली पकड़कर बोर्ड के अक्षरों पर रख देता। कभी-कभी उसे लगता जैसे उसके मुँह की हवा उसे छू रही है।

एक बार सिखाने के उपक्रम में उसने कहा—

"मैं तुम्हें जल्दी नौकरी भी दिला दूँगा।"

"कैसे ?" रत्ना ने उसकी तरफ मुखातिब होकर पूछा।

"अरे रोज मेरे पास माँग आती है।" इसके साथ ही वह निकट बैठी एक और लड़की के पास जा बैठा।

रत्ना टाइप करती रही। घण्टा बीतने के बाद मास्टर के पास जाकर बोली—

"क्या मैं दो घण्टा सुबह और दो घण्टा शाम टाइप नहीं सीख सकती ?"

"क्यों नहीं। क्यों नहीं। तुम्हें डबल फीस देनी दोगी। पर मैं तुमसे ड्योढ़ी फीस लूँगा," मास्टर ने मुस्कराकर जवाब दिया। "मैं जानता हूँ तुम जल्दी काम सीखना माँगता है, जल्दी नौकरी करना। मैं तुम्हें जल्दी कहीं भी नौकरी दिला दूँगा। क्या तुम्हारी शादी नहीं हुआ ?"

"हुआ है।"

"अच्छा, मालिक गरीब होगा। कोई बात नहीं। औरतों को भी धन्धा करने का है न।"

रत्ना ने कोई जवाब नहीं दिया। मास्टर दूसरे लड़कों के पास चला गया। रत्ना लौट पड़ी।

एक दिन सारिका सुबह ही आकर बोली—

"बंशी माँ कल शाम ढूँढती आई थी। मैंने कह दिया मुझे नहीं मालूम। बता देती क्या ?"

"नहीं, उसे मालूम हो जायगा तो वह पकड़कर ले जायगी।"

"लेकिन ऐसे तू कब तक रहेगी ?"

"जब तक रहा जायगा। मैं अपना रास्ता आप बनाऊँगी सारिका।"

"यानी ?"

"यानी यह कि मैं नौकरी करूँगी। कोई अच्छा आदमी मिल जायगा तो उससे शादी कर लूँगी। मैं अब मछलीमार नहीं बनी रहना चाहती।"

सारिका तालों का गुच्छा हाथों में लिये घुमाती रही। थोड़ी देर चुप रहकर कहा—

"सोच ले रत्ना जात से निकाल दी जायगी।"

रत्ना कपड़े तह करके सन्दूक में रख रही थी। रुककर कहने लगी—

"हाँ सोच लिया। मुझे किसी की परवाह नहीं है। मुझे एक ही तरह का घिसा-पिटा जीवन पसन्द नहीं है। मैं जीवन के रंग, उसके उतार-चढ़ाव देखना चाहती हूँ सारिका। दुख देखना चाहती हूँ तो सुख भी।"

"तो नौकरी न मिलने पर भूखी भी रह सकेगी ? मकान न मिलने पर बाहर फुटपाथ पर पड़े रहना तुझे पसन्द है ? अच्छा मैं चलूँ।"

"नाराज हो गई," हाथ पकड़कर रत्ना ने पूछा।

"स्कूल जाना है।"

"कब तक नौकरी करेगी ? अब तो····" मूक भाषा में आँखें मटकाकर रत्ना ने पूछा।

"तब छुट्टी ले लूँगी।" रत्ना ने आँखों में झाँककर देखा तो सारिका जरा मुस्करा दी।

"कब तक ?"

"शुरू हो गया है।"

सारिका ने रत्ना के गाल पर एक हल्की चपत जमा दी और बोली—

"तुझसे तो इतना भी नहीं हुआ। वह वकील आज सवेरे फिर आया था।"

"क्या कह रहा था ?"

"कुछ सनकी है। मालदार तो है ही। शाम को आना।"

"अच्छा।"

सारिका चली गई। रत्ना काम करके नहाने चली गई।

शाम को रत्ना पहुँची तो भाटकेकर घर नहीं था। सारिका ने बरामदे में बैठाया। इसी समय वकील धीरूवाला बगल में बस्ता दबाए टैक्सी से उतरा। सारिका ने बुलाया तो घड़ी देखकर बोला—

"अब हम सीधा घर जायेंगा। पन्द्रह मिनट चाय पीकर काम करेंगा। माफ करना। यह·······?" रत्ना की तरफ इशारा करके पूछा।

"रत्ना।"

"अच्छा, अच्छा। हम सुना, हम देखा, ऊस दीन आपकू। और दिन बी देखा। हम आपसे बोलना माँगता था। बात करना माँगता था। वाह वाह।"

नीचे से ऊपर तक कई बार सिर हिलाकर उसने दाँत फाड़े और जेब से सूँघनी की डिबिया निकालकर सूँघने लगा। इस काम में बस्ते के कुछ कागज नीचे खिसक गए तो उन्हें सँभालता बोला—

"आपसे मिलकर खुशी हुआ। क्या करता हे आप ?"

"मेरी सखी है, साथ की पढ़ी।" सारिका ने जवाब दिया।

"हमारा बात का जवाब नहीं है। मामूली तौर पर हर सवाल का जवाब 'हाँ' या 'ना' में होता है। समझने के लिए कमेंट होता है। ओः आई एम सॉरी, मि० भाटकेकर कहाँ गया है ? अभी नहीं लौटा। लौटेगा, रुपया के लिए यह सब है। क्यों मिसेज इफ यू डॉन्ट माइंड।" माथे पर उंगलियाँ फेरता हुआ वह पूछने लगा। 'आई थिंक मिसेज भाटकेकर ? मे आई नो योर नेम प्लीज़ !"

"रत्ना।"

"'गुड, गुड नेम !"

"चाय यहीं पीजिये।"

"चाय ?" पारसी ढंग की काली मखमली टोपी उतारकर वह सिर पर हाथ फेरकर कहने लगा—

"अ ऽऽ, अच्छा ऽऽऽ। आल राइट, हमकू क्या आब्जेक्शन होने का।"

सारिका 'अभी आई' कहकर भीतर चली गई। धीरूवाला ने टोपी और बस्ता मेज पर रखा और जैसे कोर्ट में केस लड़ने को तैयार होकर कहने लगा—

"आज का लोग शाला आँख का काम कान से करता है और कान का आँख से। अक्कल का काम पैर से करता है। हम कहता हूँ भाई, जिसका काम उसे करो। घोरा का काम गारी तो नहीं करेंगा। गारी का काम शाला गारी से होगा घोरा से नहीं होगा। धन्धा करना है तो धन्धा करो। झूठ काहे कू शाला बोलता है। हम झूठ कू नफरत करता है। पन हम कू भी तो शाला झूठ बोलना परता है। कोई में झूठा केस न करे तो कौन टका दे। हम बोलता बाबा पैसा दो पैसा, हमकू पैसा चाहिए। हम झूठ बोलेंगा, तुम्हारा काम करेंगा शाला पर पैसा तो फीस तो पूरा करो। कोई-कोई केस जीतकर फोकट में पैसा मार भाग जाता शाला। क्या करे। पेट तो भरना ही होगा।"

धीरूवाला ने जैसे अपने भीतर की व्यथा को, मजबूरी को, व्यक्त किया।

वह आगे बोलना चाहता था कि रत्ना पूछ बैठी—

"सुना, आपने अभी दस हजार दान दिया है।"

धीरूवाला सिर खुजलाते बोला—

"हाँ दिया है तो शाला कौन मानता है। हम पारसी लोक में पैसा वाला शाला बहूत है। दान माँगता था सो दान दिया, क्या करता, पर खाने कू तो चाहिए। पैसा बहूत है। पैसा बद्धा है ऐसा कहने से तो काम नहीं चलेगा। दस मिनट हो गया। तीन मिनट और, पन्द्रह पर तो एक फूल कप चाहिए ही चाहिए।"

"आपने शादी नहीं किया ?"

"आई सी !" दाँतों की बतीसी निकालकर रत्ना की ओर गौर से

देखकर कहने लगा, "हमारा कम्यूनिटी में औरत लोग बहुत खर्चीला है शाला। पैसा का कदर नहीं जानता। तो क्या करेगा, घर लुटा दे? पैसा तो पैसा बचाने से होता है। खर्च करेगा तो आगे क्यूं क्या ऽऽऽ। मेरे पास पचास हज्जार है, पर बचाया तो हुआ। दस हज्जार कम्यूनिटी के काम में दिया। विलेपार्ला में कोठी तैयार किया। अब बनेगा। एक मकान बेचेगा और एक बनेगा।"

"मकान बेच रहे हैं आप?"

"बेचना परेगा नहीं तो और क्या करेगा? तीस हज्जार देता है शाला। हम बोला चालीस हज्जार से कम नहीं लेंगा। सत्तर हज्जार का एस्टीमेट है बंगला का। सूरत में एक मकान है। बीस हज्जार देता हैं। हम बोला तीस हज्जार दो तो चलेंगा।"

"शादी कर लीजिए न," रत्ना ने कहा।

"हमकू पारसी गर्ल नहीं चाहिए। आप जैसा सीदा-सादा हो तो चलेंगा। बहुत खर्चीला होता है शाला। सिर गंजा कर देता है।"

सारिका चाय ले आई। तीनों ने मिलकर चाय पी। धीरूवाला चाय पीते-पीते भी बोलता रहा। बार-बार रत्ना को एक हसरत-भरी निगाह से देखता रहा।

सारिका ने देखा तो बोली—

"रत्ना बेन शादी कर रही है।"

"हमकू बी एक शादी करना माँगता है। चलिए न हमारा ऊपर। बिजनेस का बात करेंगा। हम शादी कू बिजनेस मानता हूँ। साप बात हो तो पीछे तकलीफ का काम नहीं होता।"

रत्ना ने कहा, "अभी तो फुरसत नहीं है फिर आऊँगी।"

"नहीं एक कप चाय हमारा घर में लीजिए न, मेहरबानी करके देखिए तो।"

सारिका ने आग्रह किया तो रत्ना के साथ सारिका को भी जाना पड़ा।

धीरूवाला के पास दो कमरे थे। एक में दफ्तर और दूसरे में सोने की व्यवस्था। गद्दे के किनारे कुछ कुरसियाँ। एक तरफ मेज़ के सामने

आल्मारी में किताबें। मेज पर कलम दावात के साथ इधर-उधर बिखरी फाइलें। दोनों वहीं जाकर गद्दे पर बैठ गईं। धीरूवाला दूसरे कमरे से कपड़े उतारकर आ गया—रात का पायजामा और एक मैली कमीज पहनकर। दो-तीन अधलिखे कागज हवा से फैल गए थे तो नौकर को डाँटता हुआ बोला—

"तुम शाला देखता नहीं कागज फैल रहा है। फोकट का माल है क्या ? पैसा लगा है शाला।" इसके साथ ही उसने कागज समेटकर रख दिए। गद्दे की चादर में एक जगह छेद होने पर बोला—

"देखो चमन, आज इसकू टाँका देना।"

चमन सुनकर चाय बनाने गया तो बोला—

"पैसा रखने से पैसा होता है। हम पैसा को सँभालकर रखेगा तो पैसा होगा। पैसा दुनिया में सबसे बड़ा है। तुम जो चाहेगा खरीदेगा।"

धीरूवाला की उम्र लगभग चालीस के होगी। मशीन से सफाचट ढलवाँ सिर जिसमें काले-भूरे बालों की गंगा-जमुनी थी। छोटा माथा। भौंहों के घने बाल। नाक मुँह के आकार से बड़ी। लगता था लम्बे खम्भे पर किसी ने मैला चूना थोप दिया हो। आँखें भीतर को घुसी हुईं, छोटी। होंठ चौड़े, जिसमें से दाँतों की पंक्ति आधे से ज्यादा बात करते चमक-चमक जाती थी। रंग पारसियों का जैसा होता है, वह तो था ही। रत्ना और सारिका के बैठे रहने पर वह बोलता हुआ कोई-न-कोई चीज सँभालकर रख रहा था। जैसे उस लम्बे पतले शरीर में फुरती-ही-फुरती भरी हो। इसके बाद उन दोनों को वह अपने कमरे में ले जाकर बोला—

"यहाँ हम सोता हूँ। यह मेरा आल्मारी है। यह बिस्तर है। ये मेरे पहनने के कपड़े हैं। ये एक जोरी चप्पल और एक बूट। दो पतलून रखता हूँ, चार कमीजें। दो कोट। एक कोट कोर्ट में जाने का। यह मेरी छतरी है। सोचता हूँ कि मेकिंटोश ले लूँ। पर दाम शाला बहुत माँगता हैं। पैंतालीस रुपिया। हम बोला—ना बाबा, इतना हम काहे कू देगा। भीग जायगा तो सूक जायँगा। पैसा कू खराब करने से पैसा नहीं रहता, आप मानेंगा।"

रत्ना और सारिका ने मुस्कराकर हामी भरी।

रत्ना ने पूछा—

"नौकर को कितना देते हैं ?"

"देता क्या हूँ, देना पड़ता है। चालीस रुपया, खाना। क्या करे ? न दे तो क्या करे ? एक बेन आया तो महिना में डेर सौ खरच कर दिया खाने में। हम बोला—न बाबा, तुम जाओ। रुपया कू हम इस तरह फेंकने नहीं दे सकेंगा।"

"कितनी उमर थी ?" सारिका ने पूछा।

"पचास से ऊपर। किसी काम का नहीं," कहकर धीरूवाला हँस पड़ा। उसके सारे दाँत बाहर निकल आये। इसके साथ ही तेज निगाह से उसने रत्ना को देखा। फिर बोला, "कोई काम का होय तो हम डेर सौ का परवा नहीं करता। हाथ का मैल है शाला। हाथ का मैल। हम बेन कू निकाल दिया। चोरी करता था। हमारा गैरहाजिरी में एक बार आमलेट बनाया। न जाने कितनी बार खाया। हमकू परोसी बोला, तो हम बोला—तुम जाओ बाबा। हम शाला अकेला रहेंगा।"

गलती से केतली में साढ़े तीन कप चाय निकली तो आधा कप के लिए नौकर को डाँटने लगा, "यह आधा कप काये कू बनाया शाला। फोकट का माल है ?"

थोड़ी देर बाद न जाने क्या सोचकर रत्ना से कहने लगा, "आधा कप आप लीजिए, खराब नहीं जाय। पैसा फोकट का नहीं है।"

रत्ना के मना करने पर भी उसने आधा कप चाय उड़ेल दी।

अब कभी-कभी रत्ना से धीरूवाला की भेंट हो जाती। एक दिन रत्ना चाय बना रही थी कि किसी ने दरवाजा खटखटाया। खुलने पर पाया कि वही महाशय धीरूवाला हैं—घबराये हुए वही रात का पायजामा और मैली कमीज पहने। रत्ना ने कुछ हैरान होकर पूछा—

"कहिए।"

धीरूवाला ने पूरे नब्बे ऐंगल का मुँह बनाकर सारे दाँत बाहर की ओर चमकाते हुए कहा—

"माफ कीजिए रत्ना बाई।" और इतना कहकर वह दूर गद्दे के कोने पर पालथी मारकर बैठ गया। सूरत से लगता था जैसे पिटकर आ

रहा है। आँखों के कोनों में ढीड़ चिपक रहे थे। चेहरे पर पहले से ज्यादा झुर्रियाँ दिखाई दे रही थीं। रत्ना कुछ भी न समझ सकी। वह चाय बनाना छोड़कर जरा हटकर खड़ी हो गई।

धीरूवाला ने वैसे ही चक्की के पाट की तरह दाँतों की गोलाई दिखाते हुए कहा—

"मेरा नौकर भाग गया शाला। तो क्या आप अकेला रहता है? ओः!" फिर अपने से ही जैसे बात कर रहा हो, नीचा मुँह किये कहने लगा, "मुझकू किसी का परवा नहीं है। हम शाला किसी कू नहीं मानता।"

फिर खयाल आने पर उसने चटाक-पटाक जेबें टटोलना शुरू कीं और चाबी का गुच्छा निकल आने पर सन्तोष की साँस ली।

रत्ना की ओर देखकर गिड़गिड़ाता हुआ, रुक-रुककर बोला, "इफ आई एम नाट कमिटिंग मिस्टेक, यानी····एक्सक्यूज मी मेडम! बात यह है····"

फिर जरा मुस्कराकर बोला—

"हम आपका क्या मदद कर सकता हूँ?"

रत्ना को उसकी चेष्टाओं में मजा आ रहा था। वह भीतर-ही-भीतर मुस्करा रही थी। खड़ी-खड़ी बोली—

"चाय पियेंगे मिस्टर धीरूवाला?"

उसी रूप में धीरूवाला ने मुस्कराकर जवाब दिया—

"नहीं-नहीं, रहने दीजिए लेकिन···हम···शाला नौकर भाग गया। कोई चीज़ नहीं ले गया। हम उसका कपरा का जाँच करके चाल से बाहर किया। कमरा बन्द है। हाँ, एक कप···मेहरबानी है आपका।"

रत्ना ने चाय बनाकर एक कप दिया तो सिप करते बोला—

"वेरी ग्रेटफुल टू यू मेडम। ओः कितना उम्दा चाय है। गुड! आई एवर टेस्टेड। थैंक यू। आई मीन····।"

"और लेंगे एक कप?"

धीरूवाला कुछ गम्भीर हो गया। माथे की लकीरें कुछ खिंच गईं। कान लाल हो उठे। चाय पीने के बाद दोनों हाथों की हथेलियाँ मसलता

हुआ वह रत्ना की ओर देखकर मुस्कराने लगा जैसे बहुत-कुछ कहना चाहता है पर कह नहीं पा रहा है। रत्ना ने एक कप चाय और दी।

"ओः टू कप। गुड। औरत आदमी का माइन्ड रीड कर सकता है। रियली। ए गुड वोमेन इज़ रीयली रेयर। देखिए, रत्ना बाई, हम प्रोपोजल लेकर आया हूँ। हम चाहता हूँ···हम···विल यू एक्सक्यूज मी, आइ वांट टू ओपन माई हार्ट।"

रत्ना को लगा यह अपनी छाती चीर डालेगा। फिर भी वह सब जान रही थी। वह चुप रही। उसने कोई संकेत नहीं किया। तो जैसे गम्भीरता से हिम्मत करके धीरूवाला ने कहना शुरू किया—

"हम जानता हूँ आप अकेला है। तुम कू एक कम्पेनियन का जरूरत है। सारिका बेन कहता था ऐसा मेरे कू सुनने में आया। सो अगर··· आपको कोई एतराज़ न हो तो···।"

"मैं आपकी बात समझी नहीं।"

"फिर जो हम कहना चाहता हूँ वह तो आपकू समझने में कोई हरकत नहीं है। हम चाहता हूँ आपको गमे तो करो। मानो। मेरा धन्धा वकील का है। रुपया पैसा है। वह सब तुम्हारे कू होना है। वह उसी वखत होना है जब तुम्हारे कू मेरे का होना है, गमे तो मानो।"

धीरूवाला खड़ा हो गया। उसकी बातों से रत्ना ने जाना—यह आदमी बड़ा विचित्र है। एकदम एक बच्चा था; अब एकदम गम्भीर हो गया जैसे इसके दो रूप हों। फिर भी वह उसे बुरा नहीं लगा।

धीरूवाला जैसे कोई केस कोर्ट में प्लीड कर रहा हो अपनी ओर से सफाई देता हुआ बोला—

"इट इज़ एक्सचेंज ऑफ गिव एण्ड टेक मैडम।"

"आप मुझे नौकरी देना चाहते हैं या शादी करना?"

"आइ वान्ट ए कम्पेनियन।"

"कम्पेनियन बिना शादी के? मैं वेश्या नहीं हूँ धीरूवाला।"

"तो आपको गमे तो शादी कर लो, लेकिन···।"

"लेकिन क्या···?"

दाँत निपोरकर बोला—

"ग्रहह कुछ नहीं, कुछ नहीं। छोटा बात 'ए रिटन एग्रीमेंट बिफोर वी मेरी।"

"सोचकर जवाब दूँगी।"

"बरोबर, बरोबर।" कहकर धीरूवाला ने हाथ मिलाने को बढ़ाया तो रत्ना ने दोनों हाथ जोड़ दिए।

"हाऊ गुड यू ग्रार !"

रत्ना मुस्करा दी। धीरूवाला चला गया।

ग्रब दूसरे-तीसरे दिन वह रत्ना के घर ग्रा धमकता ग्रौर इधर-उधर की बातें करके रत्ना को खुश करता। एक रात को जब रत्ना सोने जा रही थी कि धीरूवाला ने प्रवेश किया ग्रौर बोला—

"माफ कीजिए यह वखत किसी ग्रच्छा लेडी का पास जाने का नहीं है। लेकिन दिल नहीं माना, यह ग्रापका भेंट है।"

यह कहकर धीरूवाला ने दो गजरे एक रेशमी रूमाल से निकालकर रत्ना के सामने रख दिए ग्रौर दोनों हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। थोड़ी देर बाद बोला—

"ग्रच्छा, गुड नाइट।"

रत्ना भीतर-ही-भीतर हँसी ग्रौर बोली—

"मिस्टर धीरूवाला, यह ग्राप क्यों लाए ? ले जाइए इन्हें।"

रत्ना ने उन्हें उसकी तरफ सरका दिया।

धीरूवाला सकपका गया। एक वकील की चाल में बोला—

"एक पारशी जेन्टिलमेन ग्रपना लरकी मुझकू देना बोलता था। हम बोला—हमारा बातचीत नक्की हो गया। तुम ले जाग्रो ग्रपना लरकी कू। शाला। हम क्या करेंगा ?" इतना कहकर भेद-भरी दृष्टि से उसने रत्ना की ग्रोर देखा ग्रौर उसके मनोभाव पढ़ने लगा।

"मैंने तो नक्की नहीं किया," रत्ना ने निरपेक्ष भाव से धीरूवाला की ग्रोर देखते हुए कहा।

रत्ना ने स्थिर रहकर ग्रपनी बड़ी ग्राँखों से धीरूवाला की ग्रोर देखा तो उसकी बड़ी ग्राँखें जैसे कानों तक फैल गईं। थोड़ी देर बाद धीरूवाला ने पाया कि रत्ना की ग्राँखें उसके सारे मुख पर व्याप्त हो

गई हैं। वह और भी मुग्ध हो गया। उसका मन अस्थिर हो उठा। वह पतलून पहने, टाई लगाए मय बूट के उसके सामने घुटने टेककर बैठ गया।

"रत्ना बाई, लाइफ इज़ वेरी प्रेशस।"

धीरूवाला ने गजरे उठाकर रत्ना के आंचल में डाल दिए।

"नक्की करो रत्ना बाई।"

"रत्ना थोड़ी देर चुप रहकर जैसे दरवाजा बन्द करने को उठी और बोली—

"सारिका से बात करूँगी।"

"हम दो आदमी का बात है। तिसरे कू काए कू आना?" फिर अंग्रेजी में कहने लगा—

"प्लीज़।"

रत्ना दरवाजे के पास तक पहुँची तो धीरूवाला को बाहर निकल जाना पड़ा। वह दरवाजा बन्द करने के बाद भी बाहर खड़ा रहा। रत्ना लौट आई और नये शीशे के सामने खड़ी होकर उसके दिये गजरे पहनने लगी। उसने वेणी अपनी चोटी में खोंस ली। कड़े हाथों में पहन लिये और शीशे के सामने खड़ी होकर अपना रूप देखती रही। काफी देर तक शीशे के सामने खड़ी रहने के बाद उसने धीरूवाला की आवाज सुनी—"गुड नाइट रत्ना बाई!"

रत्ना सिहर उठी। उसे यह कल्पना भी नहीं थी कि धीरूवाला दरवाजे पर अब तक खड़ा होगा। उसने कोई जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर बाद एक और आवाज आई, "आई से गुड नाइट!"

"गुड नाइट, गुड नाइट मिस्टर धीरूवाला।" हार पहने ही हरबड़ी में रत्ना ने उत्तर दिया। उसने धीरूवाला के जाने की पदचाप सुनी। रत्ना को खयाल आया कि दरवाजों में एक सन्ध है। कहीं ऐसा न हो कि जो हार वह उसके सामने ले नहीं रही थी उसके जाते ही पहने हुए उस सन्ध में से उसने देखा हो और इसीलिए उसने व्यंग्य से 'गुड नाइट' किया हो और जवाब न मिलने पर दूसरी बार भी कहा हो। यह बुरा हुआ। मेरी सारी पोल खुल गई। हार उसने उतारकर फेंक दिया और सन्धों में से बाहर की ओर झाँकने लगी। पर भीतर रोशनी और बाहर

मद्धम अँधेरे में उसे कुछ भी नहीं दिखाई दिया। वह दरवाजे से बाहर निकलकर फिर सन्ध से देखने लगी तो उसे भीतर का सब-कुछ दिखाई दिया। उसे निश्चय हो गया कि धीरूवाला ने अवश्य ही उसे देखा होगा। उसके मन में क्रोध आया। उसके मुँह से निकल गया—"बड़ा धूर्त्त है यह!"

थोड़ी देर तक अपनी कमजोरी का क्रोध उतारती वह कमरे में टहलती रही। बीच-बीच में वह फेंके हुए गजरों और हारों पर नजर डालती और तकिये के सहारे गद्दे पर जा लेटी। बिजली अभी तक जल रही थी। उसका प्रकाश पहले से अधिक बढ़ गया था। कमरे की हर वस्तु और भी स्पष्ट हो रही थी। दूर से बैठे भी उसे अपना चेहरा शीशे में दिखाई दे रहा था। काफी देर तक बैठने के बाद उसने सन्ध में कागज चिपकाया और बिखरे हुए हार पहनकर शीशे के सामने जा खड़ी हुई। कभी वह उन्हें सूँघती। कभी कल्पना करती इन हारों के साथ कौनसी साड़ी उसे अच्छी लगेगी। इसके साथ ही उसके मन में आया धीरूवाला मालदार है। उसके साथ शादी बुरी नहीं रहेगी। बिस्तर पर पड़ी वह धीरूवाला के सम्बन्ध में सोचती रही। इसी बीच उसकी आँख लग गई। बिजली फिर भी जल रही थी।

दूसरे दिन सवेरे इतवार था। सवेरे ही उसे धीरूवाला का पत्र मिला जिसमें शाम को उसे किसी होटल में चलकर खाने का निमन्त्रण दिया गया था। साथ ही यह भी कि ६ बजे वह स्वयं उसे लेने आवेगा। रत्ना ने पढ़ा तो फेंक दिया।

लाने वाले ने कहा—

"जवाब।"

"जवाब कुछ नहीं।"

"यहीं बोल दूँ।"

"हाँ," कहते वह रुकी और दूसरी बार पत्र पढ़कर उसने केवल इतना लिखा—

"अच्छा।"

नौकर चला गया।

वह दिन-भर उस समय के लिए कपड़ों के सम्बन्ध में तथा अन्य तैयारियों में लगी रही। ६ बजे से पहले ही धीरूवाला टेक्सी लेकर आया।

"हॅलो रत्ना बाई, रैडी ?" रत्ना की ओर देखकर बोला, "ओः गुड। यू लुक वेरी ब्यूटिफुल !"

रत्ना मुस्करा दी तो वह बोला—

"रियली यू आर सरप्राइजिंग मी। चलिए।"

धीरूवाला ने चायनीज़ होटल में डिनर रिज़र्व करा लिया था। दोनों इधर-उधर घूमते ठीक साढ़े आठ बजे होटल पहुँच गए। होटल में एक ओर इंग्लिश बैंड बज रहा था। बीच में जगह-जगह तरतीब से लगी कुरसियों पर लोग बैठे थे। सबके सामने किसी-न-किसी प्रकार का पेय था। एक तरफ छोटे भागों में एकान्त में बैठने वालों के लिए रिज़र्व पार्टीशन। सफेद चमचमाती ड्रेस में बैरे घूम-घूमकर पेय सर्व कर रहे थे। बिजलियों की ढकी बत्तियों और काँच की ट्यूबस् से चारों ओर सफेदी फूटी पड़ रही थी, जिसमें काले आदमियों का रंग भी निखर उठा था। बाजे ने दूसरी तान छेड़ी कि हाल में डिनर का पहला कोर्स शुरू हुआ। चम्मच प्यालियों की आवाजें खनकने लगीं। रत्ना ने इससे पहले ऐसा होटल नहीं देखा था। इतनी तड़क-भड़क, इतनी चमक, वह मुग्ध होकर सब ओर देखती रही। पेय के साथ भोजन भी निराले ढंग का था। सूप में एक खास तरह की सुगन्ध उठ रही थी। वह मन्त्र-मुग्ध-सी होटल के वैभव के साथ खाने में व्यस्त हो गई। बाजे ने तीसरी गत छेड़ी और दूसरा कोर्स शुरू हुआ। धीरू ने एक सिगरेट निकालकर बीच में पीना शुरू किया और एक सिगरेट रत्ना को दी तो चारों ओर उसने आँख फाड़कर देखा कि कुछ स्त्रियाँ भी सिगरेट पी रही हैं। उसने भी पीना शुरू कर दिया। पर अभ्यास न होने के कारण उसने जल्दी ही सिगरेट फेंक दी। लगभग डेढ़-दो घण्टे में खाना समाप्त हुआ और लोग दूसरी तरफ जाने लगे तो रत्ना ने पूछा—

"अब किधर ?"

"अब हम लोगों कू डान्स में चलना है न।"

धीरूवाला रत्ना का हाथ पकड़ धीरे-धीरे क्यू में चला। यह एक दूसरा हाल था। यहाँ बाजों पर नृत्य का आयोजन था। कुछ लड़कियाँ गा रही थीं। बाजा बज रहा था। धीरूवाला रत्ना को लेकर एक जगह जा बैठा। नाच शुरू हुआ। वह अँग्रेजी नाच था। पहले सामूहिक फिर एक युवती ने अकेले नाचना शुरू किया। उसके शरीर में केवल कमर और छाती का भाग ढका था। शेष एकदम नंगा। अंगभंगी और मरोड़ से वह हर गत पर पानी की तरह थिरक रही थी। सब लोगों के सामने अन्य कई प्रकार के पेय रखे जा रहे थे। कुछ स्त्री-पुरुष नशे में झूम रहे थे। कुछ हा हा हू हू हँसी-मज़ाक कर रहे थे।

धीरूवाला ने रत्ना का हाथ अपने हाथ में लेकर दबाते हुए पूछा—

"हाऊ डू यू लाइक डार्लिंग ?"

रत्ना आत्म-विभोर थी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया और धीरूवाला से सटकर बैठ गई। उसका शरीर नशे में झूम रहा था। आँखें फूल गई थीं। उसने कहा—

"मैं जाना चाहती हूँ।"

"पसन्द नहीं है क्या ?"

"नशा हो रहा है मुझे।"

"तो चलो।"

धीरूवाला रत्ना का हाथ पकड़कर उठने लगा तो बैरे ने प्रार्थना के स्वर में कहा—

"कॉफी सर ?"

"नहीं।"

दोनों बाहर निकलकर एक टेक्सी में बैठ गए। दूसरे दिन शाम को सारिका ने देखा कि धीरूवाला मकान बदलकर कहीं जा रहा है। पूछने पर मालूम हुआ माटुंगा में उसने नया फ्लैट लिया है। दो-तीन दिन बाद उसने सुना कि रत्ना ने भी अपना कमरा छोड़ दिया है।

लगभग एक मास बाद सारिका और उसका पति बरामदे में बैठे चायपी रहे थे कि एक स्त्री उनके पीछे आकर खड़ी हो गई। सारिका ने पीछे फिरकर देखा तो वह रत्ना थी—उदास, उतरा हुआ चेहरा।

"कहाँ थी तू बैठ न। क्या हुआ तुझे रत्ना ?"

एक कुरसी पर रत्ना बैठ गई। बोली कुछ भी नहीं। सारिका ने एक कप चाय दी और बोली—

"क्या बात है, कह न कुछ। तू कहाँ गई थी ? मकान भी छोड़ दिया।"

"हाँ, अपनी उमंगों के साथ खेलने गई थी।"

"मैं नहीं समझी।"

"घीरूवाला के पास।"

"घीरूवाला के, तभी वह यहाँ से मकान छोड़ गया। मैंने समझा तू बरसोवा चली गई होगी। एक बार वंशी माँ के आने पर मालूम हुआ तू बरसोवा नहीं गई। सचमुच रत्ना वह तो मछली की तरह तेरे लिए तड़प रही है। यह आजादी स्त्री को कहीं का नहीं छोड़ती।"

"मुझे इस बीच काफी अनुभव हुए।"

"लेकिन सुना न घीरूवाला के साथ कैसा रहा।"

सारिका ने पति की तरफ देखा। वह भी उत्सुक था सुनने के लिए। जैसे भाटकेकर के कान खड़े हो गए। वह बोला—

"जिन्दगी में सही अनुभव बड़ी मुश्किल से मिलते हैं सारिका।"

सारिका ने मुस्कराकर जवाब दिया—

"स्त्री को बुरे या भले अनुभव पुरुषों से ही मिलते हैं। यह तुम लोगों की माया है जो सदा से स्त्रियों को छलते रहे हैं।"

"दोनों हाथ ताली बजती हैं, सारिका। तुम्हें क्यों वैसे अनुभव नहीं हुए।" स्पष्ट ही रत्ना के ऊपर यह एक व्यंग्य था।

"अच्छा, अच्छा बड़े आए तपस्वी बनकर। तुमने मुझ पर डोरे डालने में क्या कमी की है।"

"तो तुमने इतना रूप क्यों पाया है सारिका। चींटा तो गुड़ को पाकर दौड़ेगा ही।"

"इसमें भला गुड़ का क्या दोष है ?"

भाटकेकर बोला—

"गुड़ को चींटे से बचकर रहना चाहिए।"

सारिका ने मुस्कराते हुए झाटकेकर को इशारा किया तो वह उठकर जाते हुए बोला—

"मैं धीरूवाला को भला आदमी समझता था।"

सारिका ने तभी हाथ मटकाकर उत्तर दिया—

"तुम कौन अच्छे नहीं हो।"

रत्ना ने धीरूवाला की बाबत जो-कुछ बताया उसका सार इस प्रकार है—

"धीरूवाला कई बार दिन में रात को मेरे घर गया। अपने को ऐसा सिद्ध किया जैसे वह सचमुच उसका प्रेमी हो गया है। रुपये के सम्बन्ध में उसने कहा कि शादी होते ही सब रुपया वह उसके नाम कर देगा। उसे किसी चीज़ की जरूरत नहीं है। वह तो केवल रत्ना को चाहता है।"

"कितना रुपया बताया उसने ?"

"एक लाख से ऊपर। मकान अलग। आमदनी दो हजार रुपया महीना।"

रत्ना ने आगे कहना शुरू किया—

"मैं बहुत दिन तक सोचती रही। वह मुझे दूसरे-तीसरे दिन किसी बड़े होटल में खाना खिलाने ले जाता। खुद शराब पीता, मुझे पिलाता। धीरे-धीरे मैंने आत्म-समर्पण कर दिया। जब उसने मकान बदल लिया, मैं भी वहीं चली गई। मैंने अपना भाग्य सराहा कि ऐसा प्रेमी मुझे मिल गया। नौकर खाना बनाता। हम दोनों रोज़ शाम को सैर करने जाते। रात को हार-गजरे लेकर लौटते। उसने नई साड़ियाँ, नये जूते लाकर दिये। वैसी चीजें मेरे लिए बिलकुल नई थीं। रातों जागकर वह प्रेम-प्रदर्शन करता।"

"तूने शादी से पहले यह सब मान लिया ?" सारिका ने पूछा।

"पहले मैंने ज़िद की तो बोला, 'शादी तो हम करेगा ही। मैंने सिविल मैरेज के लिए दरख्वास्त दी है। बस वह मंजूर होने वाली है। जैसे ही डेट पड़ा हम लोगों का मैरेज हो जायगा। लेकिन यह तो कोर्टशिप है।' कहकर वह बार-बार मुझे अपनी बाँहों में कस लेता।"

"तू उसकी बातों में आ गई ?"

"यह समझ कि मैं दुनिया भूल गई। दिन में रात के सपने देखती और सोचती रहती मेरी जैसी औरत बरसोवा में नहीं है। माँ सुनेगी और मेरा वैभव देखेगी तो नाच उठेगी। मैं उसी रोज उसे खबर दूँगी जब शादी हो जायगी। हर रोज शाम को कचहरी से लौटते ही मेरे पूछने पर मैरिज की तिथि के सम्बन्ध में कहता—बस आठ दिन हैं, अब चार दिन हैं। फिर हम-तुम दोनों एक होंगे, मेरी जान।"

"अच्छा फिर ?"

"जब आठ दिन बीत गए तब मैंने एक शाम जोर देकर पूछा—क्या बात है मुझे सच बताओ। बोला, 'डेट बदल गई है। मजिस्ट्रेट बाहर दौरे पर गया है।' बीस दिन के बाद ही मुझे ऐसा भासने लगा जैसे यह आदमी मुझे चकमा दे रहा है। तब मैंने एक रात को जब वह शराब पीकर और मेरे सामने शराब की बोतल लेकर आया तो मैंने बोतल खिड़की से बाहर फेंकते हुए कहा—'जब तक हम दोनों की शादी नहीं होती तब तक यह कुछ नहीं होगा।' मैं अपने पलंग पर से उठकर खड़ी हो गई और खिड़की से बाहर देखने लगी। उसने चुपचाप मेरे पास आकर मेरा हाथ पकड़ा और समझाते हुए बोला, 'आज मजिस्ट्रेट आ गया है। शायद दो दिन बाद की तारीख पड़ जाय। मैं तुम्हें यकीन कराता हूँ शादी हम दोनों का होगा ही।' इतना कहकर बोतल के लिए अफसोस करने लगा। थोड़ी देर बाद एक और बोतल आलमारी से निकाल लाया। हम दोनों ने पी और हर रोज की तरह रंगरेलियाँ करने लगे।

कुछ और दिन बीतने पर भी जब कुछ नहीं हुआ तो मैं काँप उठी। मुझे निश्चय हो गया, मैं शायद भ्रम में हूँ। इसी बीच एक दिन दोपहर को एक पारसी बूढ़ी महिला आई और देर तक घूरती मेरे सामने बैठकर बोली—

"अब तुझे फाँसा है इस धीरूवाला ने लड़की ? तेरे साथ शादी करना चाहता है यह धीरूवाला ?"

"दो-तीन दिन में होने वाली है।"

"कब्बी नहीं होयेंगा, हम कहे देता हैं। कब्बी नहीं होयेंगा।"

इतना कहकर वह उठकर खड़ी हो गई। "बदमाश है, इसने तीन औरतों कू छोरा है।"

"क्या कहती हो बा ?" मैं काँपती हुई उसके पास आकर खड़ी हो गई। मेरे चेहरे का एक रंग जा रहा था, एक आ रहा था। मुझे पीला पड़ते हुए देखकर मेरे पास आकर कहने लगी—

"इस धीरूवाला के साथ कोई भी पारसी अपनी लरकी देने कू तैयार नहीं है। इसने दो कू खराब करके छोर दिया। उनके साथ मैरिज नहीं किया। मेरी लड़की कू इसने छोर दिया। वह अब्बी तलक रोता है।"

"शादी नहीं की तुम्हारी लड़की के साथ ?" मैंने सिहरते हुए पूछा।

"शादी किया लेकिन उसकू मारता था। उसके साथ 'मिसबिहेव' करता था। हमकू रोज आकर शिकायत करता था। हम बोला —बाबा तलाक दे दो। और क्या !" बुढ़िया की आँखों में आँसू भर आए। उसने रूमाल से आँसू पोंछकर मेरे कन्धे पर अपना हाथ रख दिया और बोली—

"तू कौन है, पारसी तो है नहीं। मराठी, गुजराती।"

"मराठी," मैंने कहा।

"बरोबर-बरोबर। मराठी लरकी बहादुर होता है। उसकू बोल शादी कर पइले। बात मत करना हां।" कहकर बुढ़िया ने फिर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर तसल्ली दी और थपथपाने लगी।

"हम लोगों ने इसे जात से निकाल दिया है।"

"सुना इसने पारसी समाज को दस हजार दान दिया है," मैंने पूछा।

"दिया एक पैसा नहीं है। वायदा किया है सो क्यों ? मिस बिहेवियर के लिए पारसी समाज ने इस पर जुरमाना किया था दस हजार। जब वह अदा करेगा तभी शामिल किया जायगा। तो हैं कहाँ इसके पास ?"

"क्यों रुपया तो एक लाख जमा है।"

बुढ़िया ने सुना तो दिमाग का पारा चढ़ गया। पहले हँसी फिर आँखें तरेरकर बोली, "एक लाख ? इसका बाप ने भी देखा है ? यतीम

खाने में पला। माँ-बाप मर गया बचपन में। समाज ने पाला। इसका एक भी मकान नहीं है। तेरा नाम क्या है ?"

"रत्ना," मैंने उत्तर दिया।

जैसे-जैसे बुढ़िया कहती जाती थी मेरे नीचे से जमीन सरकती जा रही थी। मुझे लग रहा था मैं गिर पड़ूँगी। फिर मैं फरश पर गिर पड़ी। बुढ़िया ने मुझे सँभाला। मैंने कहा—

"बा, मुझे धोखा हुआ।"

"आखा कू धोका हुआ बेटा। इसका ये धन्धा है। हम देखने कू आया था। हमने सुना इसने नई औरत कू फाँसा है। मैं जाती हूँ। चार बज गया। पाँच बजे वोह आता होयेंगा। तू चली जा या मैरेज करके रह।" फिर भी वह चलते-चलते बोली—

"तू यहाँ सुखी न रह सकेंगा।"

बुढ़िया चली गई। मेरे दिमाग में सारी घटनाएँ घूम गई। मैं चुपचाप पड़ी रही। नौकर को बुलाकर जो उस समय बाहर से आ गया था, मैंने चाय के लिए कहा। चाय पीकर भी मेरा मन स्थिर न हुआ। मुझे लगा यह आदमी मुझे धोखा दे रहा है। मेरा इसने सब-कुछ लूट लिया। मुझे वेश्या बना डाला। मुझे कहीं का न छोड़ा। कभी मुझे अपने पर क्रोध आता और इच्छा होती कि जहर मिल जाय तो खाकर मर जाऊँ। अब मैं माँ को क्या मुँह दिखाऊँगी ? लोग क्या कहेंगे ? मुझे लगा जैसे मैंने ही अपने को गिराया है। अब मैं क्या करूँ। मुझे रोना आ गया और तकिये में मुँह दबाए सिसकती रही। मैं क्या करूँ ? चली जाऊँ। कहाँ जाऊँ ? मेरे लिए सारा संसार अन्धेरा था। कोई भी कहीं मुझे बचाने वाला नहीं था। फिर मुझे खयाल आया शायद यह सब झूठ ही हो। बुढ़िया जलन के मारे मुझे बहका गई हो। मुझे हिम्मत करनी चाहिए। आखिर कोली हूँ। कोली औरत फिकर करना नहीं जानती। वह समय से लड़ती है। समुद्र से लड़ती है। फिर मैं क्यों घबराऊँ। देखूँ, क्या होता है, क्या करता है ? इतना निश्चित है जब तक शादी नहीं होती, मेरा-इसका कोई सम्बन्ध नहीं रह सकता। इसी समय मुझे उस सेठ लड़के की घटना याद हो आई। मेरे शरीर में शक्ति भर गई।

मैं उठ बैठी और मैंने अपने को सब प्रकार से तैयार कर लिया।

शाम को धीरूवाला आया तो चिल्लाकर बोला—

"आज हम लोक इटालियन होटल में खाना खायेंगा। रहीम, आज खाना नहीं बनेंगा और देख रात तक आयेंगा। ओः तुम क्या बात है? टुडे वी विल हेव एन एक्सीलेंट डिनर, डार्लिंग।"

मैं चुप रही। वह कुछ गुनगुनाते हुए कपड़े उतारने लगा। फिर मेरे सामने एक कुरसी सरकाकर बोला—

"ह्वाट इज़ दी मैटर डार्लिंग?"

मैंने दृढ़ता से पूछा, "डेट का फैसला हुआ?"

"कैसा डेट?"

"शादी का डेट! सुनो मिस्टर धीरूवाला, मैं चाहती हूँ शादी अभी होना चाहिए। बिना शादी के मैं कहीं भी बाहर नहीं जाऊँगी और न······।"

"क्या मतलब?"

"मुझे दिखाओ वह कागज कहाँ है और मेरा दरख्वास्त तो तुमने लिया नहीं। मुझे भी तो एप्लाई करना चाहिए।"

उसका चेहरा एकदम उतरा, पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को सँभाल लिया। बोला—

"हू सेज़?"

"मुझे मालूम है।"

"कहाँ से मालूम हुआ?"

"कहीं से भी, पर क्या यह ठीक नहीं है? मैं अभी, और इसी वक्त सब जानना चाहती हूँ।"

मेरी दृढ़ता देखकर पहले वह सिटपिटाया। फिर बोला—

"इट्स ऑल रबिश, आइ एम ए लॉयर। आइ नो हाऊ टू प्रोसीड। मैं जानता हूँ क्या करना होगा।"

नौकर चाय बनाकर रख गया। मैंने चाय बनाकर एक प्याला उसके लिए रखा और एक प्याला अपने सामने रखकर कहा—

"मिस्टर धीरूवाला, मैं जानना चाहती हूँ। सब जानना चाहती हूँ।"

"तो जानो बाबा, मना कौन साला करता है !"

"मैं कल कोर्ट में तुम्हारे साथ चलकर सब देखूँगी।"

चाय पीते-पीते उसने मेरी ओर देखा।

"तुमकू कौन बतायेगा ? आखा दिन फिरकर भी तुम नहीं जान सकेगा।"

"तो क्या यह धोखा है ?" मैंने गरम होकर पूछा और कुरसी से उठकर खड़ी हो गई।

वह ठठाकर हँसा और बोला—

"तुम हमारा वाइफ तो है।"

"बिना शादी के ?" मैं चिल्लाई। क्रोध के मारे मेरा शरीर काँपने लगा।

उसने धीरे से कहा—

"कम्पोज योर सेल्फ।" फिर दृढ़ता से बोला, "यू आर गोइंग आउट आफ दी वे।"

मेरे मुँह से निकला—

"व्हाट डू यू मीन ? आई वान्ट एन एक्सप्लेनेशन फ्राम यू। आई डाउट योर सिन्सियेरिटी।"

वह फिर भी गम्भीर रहा और बोला—

"बट आइ लव यू।" वह हँसा जिससे उसके सारे दाँत निकल आए।

"डेम इट !" और भी क्रोध के आवेश में मैं बोली।

वह उठा और दूसरे कमरे में जाकर घूमता हुआ गुनगुनाने लगा। जैसे उस पर कोई असर ही नहीं हुआ। इसके बाद वह चुटकी बजाने लगा। उसकी यह हरकत देखकर मेरा शरीर जल उठा। फिर भी चुप कुरसी पर बैठी रही। मैंने कुछ भी नहीं कहा। खून का-सा घूँट पीकर मैं बैठी रही। मुझे लगा जैसे अब इसके नाराज होने की बारी है। इसी में सब साफ हो जायगा। जो कुछ इसके मन में होगा कह डालेगा। पर वैसा नहीं हुआ। उसने एक चाय नौकर से मँगाकर दफ्तर के कमरे में पी और बॉथ-रूम चला गया।"

सारिका चुपचाप कुहनी टेके सुन रही थी। बोली—

"बड़ा भयंकर आदमी था वह।"

"भयंकर से भी भयंकर, पूरा बना हुआ। ऐसा आदमी मैंने नहीं देखा।"

"यहाँ तो बड़ा सीधा लगता था।"

"कड़ए बादाम भी ऊपर से मीठे दिखाई देते हैं सारिका।"

"फिर क्या हुआ। ठहर तेरा मुँह सूख रहा है। एक प्याला चाय पी।"

कहकर सारिका उठकर चली गई और पाँच मिनट में दो कप लेकर आ गई। रत्ना ने चाय पी और बिखरे सिर के बाल ठीक किए और बोली—

"लौटकर आते ही वह बोला—

"कपड़े बदल लो। वह नई साड़ी पहनो।"

मैंने उत्तर दिया—

"मैं नहीं जाऊँगी।"

वह उठा और आलमारी से शराब की बोतल निकालकर उसने एक पग पिया और मेरी ओर एक पैग बढ़ाते हुए कहने लगा—

"तुम्हारी तबियत ठीक करने का है पहले एक पैग लो।"

मैंने उसी दृढ़ता से कहा—

"मैं नहीं पीऊँगी।"

उसने मेरा हाथ पकड़कर पैग देते हुए कहा—

"लो पियो।"

उसने पैग मेरे मुँह से लगाना चाहा तो वह बिखर गया और प्याला भी टूट गया। वह उठा और चुपचाप दूसरा प्याला आलमारी से उठा लाया। इसके साथ ही उसने दो-तीन पैग चढ़ा लिये। थोड़ी देर चुप रहने के बाद जब उसकी आँखें लाल हो गईं तो सिनेमा का एक गीत गाने लगा। मुझे मालूम हुआ यह मनुष्य नहीं राक्षस है।

धीरूबाला गाते-गाते उठा और मेरे पीछे खड़े होकर उसने अचानक मेरी ठोड़ी पकड़ ली। जैसे ही चूमने को उसने मुँह बढ़ाया वैसे ही खड़े होकर तड़ाक से एक चाँटा मैंने उसके मुँह पर जड़ दिया।"

"खूब !" सारिका बोली, "खूब किया रत्ना।"

"आगे सुनो।"

"हाँ।"

"मैंने कहा, क्या तूने मुझे वेश्या समझ रखा है। नालायक खून पी लूँगी, खून।"

इस पर उसे गुस्सा आ गया। बोला—

"वेश्या नहीं तो क्या है तू ! तू मुझसे शादी करना चाहती है ? ये मुँह। नालायक। बदमाश शाला।" कहकर उसने मेरे मुँह पर एक थप्पड़ मारा।

मैं तो इस परिणाम की प्रतीक्षा में थी। मैंने उठाकर पिर्च, प्याले, केतली एक-एक करके उसके मुँह पर दे मारे। उसका सारा मुँह खून से भर गया। इसके बाद जो मेरे हाथ में आया उठाकर लगी उसे मारने। मेरा रूप देखकर नौकर दौड़ा आया। कुछ आसपास के लोग भी आ गए। मैंने कहा—

"बोल अब बोल।"

वह पिट रहा था और मैं पीट रही थी। उसके हाथ-पैर जैसे बँध गए। "वह बुढ़िया ठीक कह रही थी कि तूने तीन औरतों को बरबाद किया है। उसकी लड़की, तेरी औरत तेरी जान को बैठी रो रही है। मैं तेरा खून पी लूँगी। तूने समझ क्या रखा है, धीरूवाला के बच्चे।"

जो लोग इस गुल-गपाड़े को देखने आए वे सब चुप खड़े थे। नौकर भी उसे बचाने की हिम्मत नहीं रखता था। मैंने उससे कहा—

"जाइये आप लोग जाइए, चले जाइए। यह मेरा-इसका मामला है।"

दूर से एक ने कहा—

"बड़ी खूँख्वार औरत है। पुलिस में रिपोर्ट करा दे धीरूवाला।"

मुझे क्रोध तो चढ़ा ही था। मैं आगे बढ़ी और कहा, "पुलिस में तो फिर जायगा, यह ले तेरी भी मरम्मत कर दूँ, आ।" जैसे ही मैं आगे बढ़ी वैसे ही सारी भीड़ हवा हो गई। सब लोग भाग गए। लौटकर देखा तो धीरूवाला खून से तर अपना माथा पोंछ रहा था। मैं चुपचाप आगे बढ़ी और हाथ पकड़कर बोली—

"ला, मैं तेरा घाव धो देती हूँ।"

वह चिल्लाकर बोला—

"माफ करो बाई। माफ करो। रहम करो, जाओ।" वह रोने लगा।

मैंने कड़े पड़कर कहा—

"शादी की एप्लीकेशन का क्या हुआ, सच बता।"

"शादी का एप्लीकेशन नहीं दिया।"

"क्यों धोखा देता रहा?"

"मुझकू नहीं मालूम था ऐसा औरत है। हम शादी नहीं करना माँगता। मैं तेरे कू, तेरा जवानी से खेलना चाहता था तू जा।"

उसने हाथ जोड़ दिए। मैं जड़ बनी खड़ी रही। सब साफ हो गया। मैं अपना सामान उठाकर चली आई।"

सारिका ने सब सुनकर लम्बी साँस खींची और बोली—

"बड़ी बहादुरी की तूने। चाहती तो कुछ रुपये भी ला सकती थी। भला कितनी बार वह तेरे शरीर से खेला।"

"केवल एक बार, जब मैं पहले होटल से शराब पीकर लौटी और अपने में नहीं थी।"

"फिर?"

"फिर मैं सँभल गई। मैंने निश्चय कर लिया, बिना शादी के इससे बात नहीं करूँगी, हालाँकि उसकी हर रात यह कोशिश रही।"

"वह बिना शादी तेरे शरीर से खेलना चाहता था?"

"लगता तो ऐसा ही था। पर मैं बच गई। फिर भी मैं अपनी कमजोरी में बह गई, इसका मुझे अफसोस है सारिका।"

सारिका चुप हो गई। रत्ना को लगा यह मुझे भीतर-ही-भीतर घृणा करती है।

"फिर अब क्या कोई और करेगी?"

यह वाक्य रत्ना का मर्म तक बेध गया। वह चुप रही। बहुत देर बाद सारिका ने उपेक्षा से पूछा—

"अब?"

रत्ना अपना सामान उठाती हुई बोली—

"बरसोवा जा रही हूँ।"

रत्ना अपना सामान उठाकर चली तो सारिका बोली—

"जा रही है रत्ना ? गिरना चाहे एक बार हो या हजार बार, दोनों में कोई फरक नहीं है।"

रत्ना ने कोई उत्तर नहीं दिया। खड़ी-खड़ी सोचती रही। सारिका पास आकर कहने लगी—

"बुरा मत मानना, रत्ना। जैसे नदी की मर्यादा उसके दोनों किनारे होते हैं इसी तरह जो औरत अपने समाज की मर्यादाओं से एक बार निकल जाती है उसका अन्त नदी की बाढ़ की तरह होता है ?"

"पर तू क्या समझती है, बाढ़ से कोई फायदा नहीं होता ? इनमें एक भी अच्छा आदमी नहीं है ? एक भी अच्छी औरत नहीं है ?"

"सौ में शायद कोई एक ! शायद वह भी नहीं। फिर प्रयोग के लिए तो रास्ता खुला है।"

सारिका ने रत्ना के भीतर झाँककर देखा। उसके अन्तर् में विद्रोह उमड़ रहा था। उसके माथे की नसें तन गई थीं। आँखें जैसे कोई नया स्वप्न देख रही थीं। वह बहुत देर तक खड़ी रही और अपना सामान उठाकर बाहर निकल गई।

कई मास तक रत्ना का कोई पता न लगा।

× × ×

डॉक्टर ने पूछा, "उस बीमार की कैसी हालत है। अब तो उसे तुम्हारी सेवा से ठीक हो जाना चाहिए।"

"वह ठीक है डॉक्टर ! कल सुबह से जब आपने उसकी आँख की पट्टी खोली है वह जाने के लिए बेचैन है।"

"तो उसे जाने दो," डॉक्टर ने कहा।

"मैंने कहा अभी प्रिकॉशन की जरूरत है। चाहो तो एक दिन और रह सकते हो। उसके घर के लोग आ गए हैं।"

डॉक्टर ने अन्तर्मुख होकर सोचते हुए उत्तर दिया—

"ठीक है। दवा से अधिक तुम्हारी सेवा ने उसे ठीक किया है। नहीं

तो केस काफी सीरियस था।"

नर्स खड़ी रही। वह डॉक्टर के गोरे मुख पर आँखें गड़ाए उसे देखती रही। डॉक्टर मेज़ पर पड़ा पेपर-वेट हिलाता हुआ बोला—

"आज सवेरे एक केस और आया है। उसकी आँखें मानसिक दुख से खराब हो गई हैं। वह अन्धी हो गई है।"

"कौन है ?"

"तुम खुद देख लोगी। बड़ी विचित्र बीमारी है। मैं तुम्हारी ड्यूटी लगा रहा हूँ।"

"जी।"

नर्स जाने लगी तो डॉक्टर ने उसे बुलाया और कहने लगा।

"तुम्हारी सेवा और तत्परता ने मेरा काम चलाया है। नहीं तो पिछले दो साल से मैं खाली बैठा रहता था। कोई काम नहीं था।"

"तो क्या मैं उस रोगी को देखूँ ?"

"चलो मैं खुद देखता हूँ। तुम भी चलो।"

"डॉक्टर आप चलिए मैं उस रोगी से कहे देती हूँ कि वह चला जाय। फीस भी ले लूँ।"

"हाँ, साढ़े चार सौ। बाकी रोज के रहने का हिसाब दो सौ रुपया।"

"बहुत अच्छा।"

नर्स उस रोगी के पास चली गई और डॉक्टर दूसरी तरफ। जैसे ही नर्स पहुँची तो रोगी के आदमियों ने कहा—

"गाड़ी तैयार है। हमें आज्ञा दीजिए।" कहकर साढ़े छः सौ रुपया नर्स के हाथ में रख दिया और बोला—

"डॉक्टर साहब, जिस ढंग से आपने मेरे पिता की सेवा की है, उनकी देखभाल की है उससे मैं बहुत खुश हूँ।"

रोगी बोला—

"मेरी तो आधी बीमारी इनकी सेवा से ठीक हुई है। ऐसी नर्सें हों तो रोगी को कोई कष्ट नहीं हो सकता। जब मैं दर्द के मारे रात-रात-भर बेचैन रहता था तब इन्होंने मेरे साथ रातों जागकर मेरी सेवा की।"

यह कहकर बूढ़े ने सौ रुपये का नोट नर्स के हाथ में रखा तो नर्स पीछे हट गई।

"यह तो आपको लेना पड़ेगा।"

"नहीं महाशय, आपने फीस दी, वह मैंने ले ली। यह रुपया मैं नहीं ले सकती। मेरा कर्त्तव्य था, मैंने पूरा किया।"

इसी समय दूसरे कमरे से डॉक्टर आ गया, तो रोगी ने प्रार्थना-भरे शब्दों में कहा—

"डॉक्टर साहब, आप बड़े भाग्यशाली हैं कि आपके यहाँ ऐसी नर्स है।"

नर्स ने बीच ही में बात काटकर कहा—

"मुझे सौ रुपया दे रहे हैं। मैं नहीं ले सकती। मेरा काम था, मैंने किया।"

डॉक्टर मुस्कराता हुआ बोला—

"मैं क्या कह सकता हूँ सेठजी। यह जानें आप जानें। लेकिन फीस के अलावा और कुछ देना अनुचित है। इससे काम करने वालों की आदतें खराब हो जाती हैं। वे लालची हो जाते हैं।"

रोगी चुप रह गया और कृतज्ञता प्रगट करते हुए चला गया। डॉक्टर ने कहा—

"यह नया केस क्या सुनयना को दे दूँ? मैं चाहता था तुम दो दिन आराम करो। तुम पिछले कई हफ्तों से काम करती रही हो।"

"मुझे ऐसी आराम की जरूरत तो नहीं मालूम होती।"

"मुझे तो मालूम होती है। जाओ तुम आराम करो। जरूरत होगी तो मैं सुनयना की मदद करूँगा या कम्पाउण्डर आ जायगा।"

नर्स चली गई। डॉक्टर खड़ा उसे जाते देखता रहा। उसके मुँह से निकला—

"क्या ऐसी औरतें भी होती हैं?"

डॉक्टर पांडुरंग यूरोप से आँखों का स्पेशलिस्ट होकर लौटा। सरकारी नौकरी न करके खुद उसने अपना काम स्वतन्त्र रूप से चलाने की सोची और कुर्ला में एक बंगला ले लिया। पिछले दो सालों तक कोई

काम न चला। बंगले का किराया भी कठिनाई से निकलता। बंगले के पीछे कमरों में वह रहता। इसी बीच दो-एक ऑपरेशन, जो डरते-डरते लोगों ने कराये, सफल हुए। काम बढ़ा। तब दो नर्सें रखी गईं। एक थोड़े दिन बाद ही छोड़कर चली गई। दूसरी प्रौढ़ा नर्स सुनयना थी। इसी बीच दुकान के सामने से जाती रत्ना रुकी और भीतर आकर डॉक्टर से बोली—

"मुझे कोई काम मिल सकता है ?"

"क्या काम जानती हो ?" डॉक्टर ने प्रश्न किया।

"मैट्रिक पास और थोड़ा टाइपिंग, बस ! आगे आप जो सिखायेंगे, सीख लूँगी।"

डॉक्टर ने पूछा, "नर्स का काम ?"

"वह भी सीख लूँगी। शायद उसका कोर्स होता है।"

"वह मुझ पर छोड़ दो।"

"तो मैं आप पर ही सब-कुछ छोड़े देती हूँ। बनाइए मुझे जो-कुछ बनाना हो।"

डॉक्टर के ऊपर प्रभाव पड़ा। वह बहुत देर तक सोचता रहा। रत्ना चुपचाप खड़ी रही, जैसे परीक्षा दे रही हो। बहुत देर बाद डॉक्टर ने पूछा—

"रहोगी कहाँ ?"

"जहाँ पैर रखने को जगह मिल जाय।"

"अनाथ हो या पति को छोड़ दिया है।"

"दोनों बातें सही हैं।"

"तब तो तुम्हारा कहीं जाकर शादी कर लेना ही ठीक है।"

"उपदेश सुनते-सुनते मेरे कान पक चुके हैं।"

"यह तो कोई नई बात नहीं हुई। सफलता की प्रतीक्षा करते-करते मेरी भी आँखें पथरा गई हैं। अच्छा, सामान कहाँ है ?"

"मैंने सब सामान फेंक दिया है।"

"किसी को दे दिया ?"

"जी।"

"मैं चाहता हूँ तुम मन का बोझ उतारकर भी फेंक दो। यह नई जिन्दगी है।"

"मैं नई जिन्दगी चाहती हूँ।"

"सेवा?"

"हाँ, सेवा करूँगी।"

अवकाश के समय तत्परता से पढ़ाकर डॉक्टर ने रत्ना को तैयार किया। डॉक्टर जितना बताता वह उससे दूना-तिगुना जानने को उत्सुक रहती। रत्ना का बुद्धि का स्रोत जैसे फूट पड़ा। डॉक्टर ने ऐसा छात्र अब तक नहीं देखा था। जो एक बार बताया वह पत्थर की रेख की तरह उसके मन पर बैठ गया। औषध और चिकित्सा-ज्ञान की उसके मन पर तहें जम रही थीं। सर्जरी के सब अस्त्रों के नाम लिस्टों से जान लिए। डॉक्टर जब कभी रात को उठता तो आउट हाउस में रत्ना के कमरे में बत्ती जलती पाता। दिन में मरीजों की देखभाल, रात को अध्ययन! डॉक्टर को लगा जैसे यह छात्र अनन्त काल से ज्ञान का भूखा है। वह स्वयं भी बड़ा तेज और अध्ययनशील विद्यार्थी रहा है। किन्तु छोटे पैमाने पर हर चीज को अच्छी तरह जानने की रत्ना की भूख ने उसे मुग्ध कर दिया। एक महीने में ही रत्ना ने अपने ज्ञान में इतनी वृद्धि कर ली जो शायद उस प्रौढ़ा नर्स को बताने के लिए भी काफी था। धीरे-धीरे डॉक्टर ने उसे काम देना शुरू किया। ऑपरेशन के समय उसे पास खड़ा कर लेता, औजार गरम करवाकर मेज पर रखवाता। सब आवश्यक औषध तथा और जरूरी सामान वही तैयार करती। ऑपरेशन के बाद का काम भी अपने सामने उसी को करते देखता।

एक दिन ऑपरेशन के बाद जब बीमार को कमरे में लिटाकर रत्ना लौटी तो डॉक्टर ने कहा—

"मुझे अफसोस है कि मैंने तनखा की बाबत कोई फैसला नहीं किया। यह भी नहीं पूछा कि तुम्हारा खर्च कहाँ से चलता है।"

रत्ना बोली—

"लेकिन मुझे तो कोई अफसोस नहीं है। अभी तो मेरे पास है। जब नहीं रहेगा तो आपसे कहूँगी। मैं जिस लायक होऊँ उतना ही दीजिए।"

डॉक्टर देखता रहा और रत्ना बीमार के पास चली गई। डॉक्टर सुबह आठ बजे से बारह बजे तक व्यस्त रहता। इसके बाद खाना खाने चला जाता। रत्ना इसके बाद का सब काम सँभालकर अपने कमरे में जाकर खाना बनाकर खाती। कभी-कभी सुनयना बनाती और दोनों मिल कर खा लेतीं। सुनयना का लड़का झाँसी में रेलवे-क्लर्क था। वह उसकी शादी के लिए रुपया जोड़कर नौकरी छोड़ देना चाहती थी। इसीलिए काम में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। डॉक्टर जितना काम बताता उतना करती। खाली समय में वह अपना सन्दूक सँभालती रहती। सुनयना और रत्ना दोनों एक ही कमरे में रहती थीं। रत्ना से न किसी ने उसका पूर्व-इतिहास पूछा, न उसने अपने-आप बताया ही।

डॉक्टर का स्वभाव विचित्र था। वह खाली समय में या तो पढ़ता रहता या अकेला ताश खेलता। शाम को फ़ुरसत मिलने पर थोड़ी देर घूम आता। एकान्तप्रिय डॉक्टर का न कोई दोस्त था न मित्र। उसके परिवार के सम्बन्ध में किसी को कुछ भी नहीं मालूम था। जे० जे० मेडिकल हॉस्पिटल का एक डॉक्टर कभी-कभी फ़ुरसत मिलने पर आता या टेलीफोन करता।

एक दिन रात को जब डॉक्टर पांडुरंग अपने मित्र के यहाँ से लौटा देखा रत्ना मरीजों के बिछाने की चादरें फैलाए सी रही है। उस दिन अस्पताल में मरीज कोई नहीं था। डॉक्टर थोड़ी देर पीछे खड़ा देखता रहा फिर बोला—

"मैं नहीं जानता था कि यह काम भी तुम अपने हाथ में लोगी नर्स।"

रत्ना ने निगाह ऊपर उठाकर डॉक्टर को देखा—

"मुझे नहीं मालूम मैं कोई बुरा काम कर रही हूँ।"

"जितना तुमने किया है बिना पैसा लिये वही क्या कम है? मुझे भी तो अपना बोझा कम करने का मौका दो।"

"वह आपका काम है मैं उसके लिए जिम्मेदार कैसे हो सकती हूँ।"

"कृपा करके दरजी को बुला लीजिए, वही अब तक करता रहा है।" इसके साथ ही उसने नौकर को आवाज देकर उसे सवेरे दरजी

बुलाने को कहकर सब चादरें हटवा दीं और चला गया। नौकर से उसने दो प्याले चाय बनाने और रत्ना को बुलाने को कहा।

रत्ना आई तो बोला, "बैठिए।"

"जी।" वह एक कोने की कुरसी पर बैठ गई।

"चाय पियेंगी ?"

"पी लूँगी।"

"आपको तो मालूम ही है, आपकी वजह से मेरा काम चमक उठा है।"

"चमकने वाली बात शायद सही हो, पर उसमें मैं कहाँ हूँ, यह नहीं जानती।"

मुस्कराकर डॉक्टर बोला—

"मुझे आशा नहीं थी कि आप इतनी जल्दी सब काम सीख जायँगी। आज मैं बहुत खुश हूँ।"

"मुझे खुशी है कि आप खुश हैं।"

डॉक्टर ने उठकर आलमारी खोली और सौ-सौ के चार नोट निकालकर देता हुआ बोला—

"इसे वेतन न समझिएगा। पत्र-पुष्प हैं।"

"अभी मेरे पास हैं, जब जरूरत होगी ले लूँगी।"

"ऐसा कितना है जो समाप्त नहीं होता ?"

नौकर चाय ले आया। दोनों ने मिलकर चाय पी। डॉक्टर के आग्रह करने पर भी रत्ना ने कुछ न लिया और नीचे कमरे में चली गई।

जब सुनयना बम्बई से लौटी तो देखा रत्ना ने उसके लिए भी खाना बनाया है। खाते-खाते सुनयना पूछ बैठी—

"जब से तुम आई हो मैंने एक बार भी तुम्हें कहीं बाहर जाते नहीं देखा।"

खाते-खाते रत्ना ने जवाब दिया—

"हाँ।"

"हाँ क्या ?"

"वैसे ही बाहर नहीं जाती। कोई खास बात नहीं है।"

सुनयना आग्रह करके कहने लगी—

"मैं आज तुम्हारी कहानी सुनना चाहती हूँ। सुनाओगी न ?"

"मेरी कोई कहानी नहीं है सुनयना। मैं पिछला सब भूल चुकी हूँ।"

"तब तो जरूर ऐसा भारी होगा जिसे तुम भूल जाना चाहती हो।"

बात आगे न बढ़ पाई। खाना खाकर दोनों सो रहीं। डॉक्टर के क्लिनिक में सुबह से शाम तक भीड़ रहती। कम्पाउण्डर एक की बजाय दो हो गए। रत्ना को अस्पताल की देखभाल करनी पड़ती। सुनयना ड्यूटी पर आती और काम समाप्त करके चली जाती। तब सारा काम रत्ना खुद ही सँभालती। इन दिनों मरीजों की संख्या बढ़ गई। इनडोर पेशेन्ट अब बराबर बने रहने लगे। डॉक्टर चाहता था रत्ना-जैसी कोई और लड़की मिल जाय तो उसे तैयार करे। नर्स ही कोई अच्छी मिल जाय। पर कोई नहीं मिली। इससे काम बढ़ गया। एकाध बार ज्यादा काम करने पर सुनयना बिगड़ उठी तो डॉक्टर बोला—

"रत्ना को देखती हो ?"

"मैं रत्ना जितना काम नहीं कर सकती। आपको मेरा काम पसन्द न हो तो जवाब दे दीजिए।"

डॉक्टर चुप हो गया।

एक दिन अस्पताल से दोपहर का काम समाप्त करके जाते हुए बीमारों के कमरे में डॉक्टर ने देखा कि रत्ना खुद फिनाइल से कमरे साफ कर रही है। उसने पूछा—

"यह क्या कर रही हो, नर्स ?"

"आज भंगी नहीं आया।"

"तो क्या यह तुम्हारा काम है ?"

"काम तो सभी अपने हैं डॉक्टर साहब। न करें तो कौन करेगा आकर ?"

डॉक्टर ने चौकीदार को बुलाकर पूछा तो बोला—

"ऊ गाँव गयाय साब।"

"तो और किसी को बुलाते।"

"बहुत ढूँढ़ा, पर कोई नहीं मिला साब।"

"और तुम देखते रहे ?"

"हम साहब का भंगी हैं ? बिरामन हैं, हमसे ई काम न होई।"

शाम को चार बजे के करीब डॉक्टर ने रत्ना को चाय पर बुलाकर कहा—

"नर्स ! मैं तुम्हें एक काम सौंपना चाहता हूँ।"

"कहिए।"

"तुम्हें अस्पताल की आमदनी खर्च का हिसाब रखना होगा। सारा कैश तुम्हारे ही पास रहेगा। तुम्हें ही हिसाब बैंक में भेजना, मँगाना होगा।"

रत्ना ने माथे का पसीना पोंछते हुए जवाब दिया—

"मैं यह काम नहीं करूँगी, डॉक्टर साहब।"

"क्यों ?"

"क्या आप मुझे जानते हैं, मैं कौन हूँ। कल रुपया लेकर भाग जाऊँ तो ?"

"लेकिन तुम भाग नहीं सकतीं, इतना मैं जानता हूँ।"

"रुपये-पैसे का मामला है, इस पर किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए, इसलिए कहती हूँ।"

पास खड़े डॉक्टर ने कहा—

"मुझे लगता है, मैं चाहे अपने पर विश्वास न कर पाऊँ, तुम पर विश्वास कर सकता हूँ।"

रत्ना को कोई जवाब न सूझा। डॉक्टर ने आलमारी से तमाम कितावें, पासबुक सौंपते हुए कहा—

"हीरा बहुत मुश्किल से मिलता है, लेकिन मुझे मिल गया।"

रत्ना का मन डॉक्टर के प्रति श्रद्धा से भर उठा। वह उसके पैरों पर गिर गई और बोली—

"आपने मुझे मनुष्य बना दिया, डॉक्टर।"

डॉक्टर ने दोनों कन्धे पकड़कर उठाते हुए जवाब दिया-

"लो चाय आ गई। चाय पियो।"

उन्हीं दिनों एक अन्धी बुढ़िया का केस आया। डॉक्टर ने मुआइना

की ड्यूटी लगा दी। रत्ना को आराम करने दिया। फिर भी वह ऊपर का सब काम करती रही। अचानक उसने अपने कमरे से अंधी के कमरे में आते-जाते परिचित स्वर सुना तो चौंकी। ध्यान से छिपकर देखने पर मालूम हुआ ये तो बरसोवा के ही लोग हैं। कौन हो सकता है ? वह कमरे में जाकर अपने को प्रगट नहीं करना चाहती थी। उसने इधर-उधर से पता लगाया कि स्वयं उसकी माँ बंशी है। वह अन्धी हो गई है। मातृ-स्नेह से उसका मन उभर उठा। उसने एप्रिन और सिर के रूमाल से अपने को ढककर रात के समय कमरे में प्रवेश किया और सुनयना से बातचीत करके पता लगाया, 'मेंटल शॉक से अन्धे होने का केस है।' अब उसके सामने सब स्पष्ट था। उसकी इच्छा हुई कि जाकर माँ के सामने प्रगट हो जाय। परन्तु इसका कोई और असर न हो यही सोचकर वह चुप हो गई। किन्तु उसका उन्मादी मन पागल हो रहा था। वह बेचैन हो रही थी। ड्यूटी पर से लौटती सुनयना से बातें जानकर भी वह चुप रही। बोली, "सुनयना मैं काफी आराम कर चुकी हूँ। अब रात को मेरी ड्यूटी है।"

"तो डॉक्टर से बोलो। मेरी रात के बारह तक ड्यूटी है। एक ही तो केस है !"

"हाँ तुम कह देना, मैं थक गई हूँ।"

"पर मैं कहाँ थकी हूँ ? शाम से ही मैं आई हूँ। दोपहर-भर तो डॉक्टर खुद रहे हैं।"

शाम के समय डॉक्टर दवाखाने में व्यस्त रहा, सुनयना रोगी के कमरे में। रत्ना सब हिसाब देख रही थी। जैसे-तैसे काम खत्म करके रत्ना रोगी के कमरे में गई। उस समय वह अकेली थी। बंशी करवट बदले लेटी हुई थी। वह पहले की अपेक्षा बहुत दुबली हो गई थी। कनपटी की हड्डियाँ पहले से बहुत ज्यादा उभर आई थीं। माथे पर झुर्रियों के साथ उसके बलिष्ट हाथ-पैर दुबला गए थे। लगता था जैसे उसका सारा शरीर कान्तिहीन और दुखों का घर बन गया हो। बंशी को देखते ही उसकी आँखों में आँसू आ गए। उसका जी कर रहा था माँ से लिपटकर जी भर कर रोवे। मन मारकर उसने चार्ट देखा और

पलंग के किनारे बैठकर माँ की देह पर हाथ फेरने लगी। वंशी ने हाथ से टटोलते हुए उसी मर्दानी आवाज में पूछा, "कौन ?"

"नर्स," गला दबाकर रत्ना ने जवाब दिया।

उसे जैसे कुछ भ्रम हुआ। उसने टटोलते हुए पूछा—

"कौन है ?"

"नर्स हूँ।"

इतना कहकर उसने थर्मामीटर वंशी के मुँह से लगा दिया और नब्ज देखने लगी। वंशी थर्मामीटर मुँह में लेकर चुपचाप पड़ी रही। इसी समय सुनयना ने आकर पूछा, "कितना है ?"

रत्ना ने थर्मामीटर उसके हाथ में दे दिया।

वंशी ने पूछा—

"कितना ताप है मिस साव ?"

"ताप कम है," सुनयना बोली।

"क्या मेरी आँखें अच्छी हो जायँगी मिस साब ?"

सुनयना बोली—

"क्यों नहीं, क्यों नहीं। घबराओ मत, ठीक हो जाओगी।"

"नहीं हमकू ठीक नईं होने का हे।" वंशी की आँखों में आँसू डब-डबा आए तो पोंछती हुई बोली—

"हमकू एक बार अपनी लड़की का मुँख देखने का और सदा के लिए हम बला अन्धी हो जाऊँ। हम और कुच नईं माँगता मिस साब।"

सुनयना बिना बोले अपने कमरे की ओर चली गई। रत्ना चुपचाप खड़ी आँसू बहाती रही। वंशी अपने-आपसे कहने लगी—

"ना जाने किदर गया छोकरी ? हाय हम क्या करेंगा ? कोई बी नईं बोलताय, कोई नईं सुनताय, कोई नईं केताय। हमकू सारिका ने धूका दिया। नईं बोला, नईं बताया। हमारा छोकरी कू मार डाला। खण्डोबा बाबा कृपा करो। बाबा ! मेरा दिल दहकताय। मेरा आत्मा जलताय। हम अन्धा हो गयाय। न जाने कौन पाप कियाय ? कौन का बिगाड़ किया जो छोकरी कू खो दिया ? खण्डोबा मेरबानी करने का अब तो। खण्डोबा ! दया कर मल्हार मार्तण्ड।"

वंशी हाथ जोड़कर रोती, प्रार्थना करती रही। रत्ना का जी फटा जा रहा था। वह अपने को न सँभाल सकी। वह एकदम चीख़ पड़ी तो वंशी ने घबराकर पूछा—

"कौन ! कौन हे ! किदर का आवाज हे ?"

उसने इधर-उधर हाथ फेरा पर कहीं कोई स्पर्श न हुआ। वह चुप होकर पड़ी रही। जैसे आँख जाने पर उसके कान आँख का काम करने लगे हों। कौन रोया ? कौन था ? न जाने रत्ना का जैसा ! रत्ना, रत्ना ! वह घबराकर रो उठी। वह अपना रोना भूलकर कानों से जैसे देखने लगी।

बिजली जल रही थी। रत्ना कमरा छोड़कर बाहर भाग गई और जी भरकर रोई। फिर एक तरफ कोने में खड़ी होकर रत्ना एकटक माँ के मन में उठने वाले भावों को पढ़ती रही। वह सो रही थी। उसके सामने तेज-तर्रार माँ का पिछला रूप घूम गया। उसके साथ की बहुत-सी घटनाएँ, फिर धीरे-धीरे उसकी यह अवस्था, निरीहता ! रत्ना सोचने लगी, "मेरे इस दुर्भाग्य में माँ का कोई दोष नहीं है। उसने माणिक के साथ शादी को मना किया था। मैं ही नहीं मानी।" रत्ना की आँखों के सामने चित्र खिच गया।

थोड़ी देर बाद वंशी जाग उठी। सोते, जागते, रोते, प्रार्थना करते रात बीती, सवेरा हुआ। रह-रहकर वंशी हाथ जोड़ती और खण्डोबा मल्हार मार्तण्ड का नाम लेती। इसी समय उसे कमरे में दो आदमी आते दिखाई दिए। वह एक तरफ कोने में हट गई। बिट्ठल और जागला आकर वंशी की खाट के पास खड़े हो गए। उनका ध्यान वंशी की तरफ था। रत्ना दूसरे कमरे के कोने में खड़ी होकर सुनने लगी।

"क्या बोलता डॉक्टर ?" जागला ने पूछा।

"बोलता 'देखेंगा'।" बिट्ठल ने जवाब दिया।

"और कोई अस्पताल ले चलने का क्या ?" जागला ने पूछा।

बिट्ठल ने जवाब दिया—

"डॉक्टर तो ए बी भोत मग्रूर हे।"

इसी समय सुनयना घूमती आ गई।

बिट्ठल ने पूछा—

"अब कब टीक होने का मैम साब, वंशी कू ?"

"मेंटल शॉक का बीमारी है। वखत लगेगा। मेंटल शॉक टीक होगा तो दिखेगा।"

बिट्ठल 'दिखेगा' के सिवा और कुछ न समझ सका। सुनयना ने बदन छुआ और चादर ओढ़ा दी। शीशी से दवा का एक डोज पिलाकर चली गई।

दोनों मौन खड़े रहे।

"क्या बोलता ?" जागला ने पूछा।

"कोई और बोली बोलता, जाने क्या बोलता जागला।"

वंशी जागी तो बिट्ठल ने पूछा।

"कैसा हे वंशी ? कब ठीक होने कू बोलता डॉक्टर ?"

"दीन में दो बार आता, पर बोलता कुच बी नई। करता कुच बी नई। दवा देता।" वंशी ने उत्तर दिया।

"हमारा छोकरी का खोज लगा, बिट्ठल ?"

"कुच बी नई। खोज किया। भोत खोजा वंशी। तेरे कू ठीक होने से खोच करेंगा।"

वंशी चुप हो गई। दोनों काफी देर तक बैठे रहे। इसी समय डॉक्टर ने आकर चार्ट देखा। साथ सुनयना थी और दवा लगी हुई आँखें देखकर बिट्ठल और जागला से पूछा—

"शॉक से आँख खराब हुई हैं। कोई दुख हुआ क्या ?"

"हा दूख ! छोकरी का दूख," बिट्ठल ने उत्तर दिया।

"मर गया क्या छोकरी ?"

"नहीं शादी किया। फिर पता नहीं लगा।"

डॉक्टर ने चौकन्ने होकर पूछा—

"भाग गया क्या ?"

"नहीं मालूम डॉक्टर साव, कहाँ गिया।"

वंशी बोली—

"डॉक्टर साब, ना जाने कहाँ गया हमारा छोकरी ! कौन ले गया !

माणिक कू छोड़ गया। माणिक उसका पति था। पति कू छोड़ गया। लड़ाई हो गया। चला गया। बरसोवा से हमारा मना करने पर बी चला गया छोकरी। हम बहुत शोध किया। बहुत खोजा। उसका एक सखी है सारिका उसकू पूछा। कुच भी मालूम नहीं हुआ। हमकू दिखना बन्द हो गया। हम रोया, बहुत रोया।"

डॉक्टर खड़ा-खड़ा सोचता रहा। दो-एक बार फिर उसने आँखें देखीं। इसके बाद सुनयना से कहा—

"डार्क रूम में ले चलो नर्स।" और दो व्यक्तियों से कहा, "हम देखेंगे क्या हो सकता है। रत्ना नर्स से कहो खाली हो तो वहाँ सब सामान रखे।"

डॉक्टर जैसे ही हटने लगा तो वंशी चिल्लाकर पूछने लगी—

"रत्ना, रत्ना कौन हे डॉक्टर साब ? वह हमारा छोकरी हे। कहाँ हे रत्ना, मेरी बेटी रत्ना ?" वह रोने लगी।

सुनयना ने कहा—

"रत्ना नर्स का नाम है बाई। वह तुम्हारा छोकरी नहीं है।"

"नईं नईं एक बार बुलाओ न उसकू, मिस साब।"

"अच्छा बुलाते हैं। पहले तुम चलो। आप लोग बैठिए। बाहर बैठिए।"

वंशी को लेकर सुनयना डार्क रूम में गई। उसे बेड पर लिटा दिया। वंशी रत्ना, रत्ना कहकर चिल्लाती रही।

"वह बीमार तुमसे मिलना चाहती है रत्ना। उसे भ्रम है कि तुम ही उसकी छोकरी हो। चलो न जरा। चिल्ला रही है। अरे यह क्या तुम रो रही हो। क्या बात है ? डॉक्टर ने कुछ कहा क्या ?"

"नहीं सुनयना। किसी ने कुछ भी नहीं कहा। तुम जाओ, मैं नहीं जा सकूँगी। उससे कहना भी मत। जाओ।"

"फिर रो क्यों रही हो ?"

"वैसे ही रोना आ गया।"

"बिना कारण ?"

"हाँ, तुम जाकर सब ठीक करो," रत्ना ने सिर्फ एक जवाब दिया।

सुनयना चली गई तो डॉक्टर ने डार्क रूम में घुसते ही पूछा—

"रत्ना नर्स नहीं आई ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"न जाने रो रही थी ।"

वंशी फिर एकदम चिल्ला पड़ी—

"रत्ना कौन हे, डॉक्टर साब ?"

"एक नर्स," डॉक्टर ने जवाब दिया।

"अच्छा तुम सीधी लेट जाओ।"

वंशी ने सीधे लेटकर कहा—

"हम नर्स कू मिलेंगा डॉक्टर साब। वह क्यों रोता था ?"

"ठहरो।"

डॉक्टर ने एक घण्टे तक उसकी आँखें अन्धेरे कमरे में यन्त्रों की रोशनी से देखीं और उन दोनों आदमियों को बुलाकर कहा जो अब तीन हो गए थे—

"आँखों में कोई खराबी नहीं है; केवल दुख आ पड़ने से रोशनी चली गई है। अगर लड़की जिन्दा हो तो उसे खोजो। ऑपरेशन से भी कोई फायदा नहीं होगा। जब तक मन का दुख दूर नहीं होता तब तक रोशनी नहीं आएगी। या फिर धीरज रखने को कहो।"

यशवन्त ने आगे बढ़कर पूछा—

"क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि इनका दुख दूर हो ? मेरा मतलब कोई दवा।"

"दवा से शरीर का दुख दूर हो सकता है। मन के लिए हमारे पास केवल नींद की दवा है जिससे शारीरिक दरद कम हो सकता है। मानसिक दुख तो विवेक से जाता है वैसे समय भी बड़ा बलवान है। समय आने पर ही दुख दूर हो जायगा। आँख ठीक हो जायगी।"

"लेकिन इसका दुख दूर नहीं होगा। वह छोकरी इसकी एकमात्र सन्तान है, डॉक्टर साहब। जब तक जियेगी तब तक रोवेगी।"

"बाहर ले जाओ, तीर्थ कराओ, कथा-वार्ता सुनाओ।"

सब लोग निराश होकर वंशी को लेकर चले गए।

रत्ना ने सुनयना से पूछा—

"क्या हुआ उस रोगी का ?"

"लौट गया। ऑपरेशन नहीं हो सकता। पर तू क्यों इतनी बेचैन है ?"

"वह मेरी माँ है सुनयना।"

"माँ ! क्या कहती है ?"

"हाँ, वह मेरी माँ है।" कहती हुई हिचकियाँ भरकर रोने लगी।

"फिर तू मिली क्यों नहीं उससे ? मुझे लगता था जैसे तुझे उस रोगी से डर लगता है। वह तो बराबर तुझे पूछती रही। तब डॉक्टर ने डाँट दिया।"

"मैं हर रात चुपचाप उसके पास बैठी रही हूँ। उसकी देह पर हाथ फेरती, उसका शरीर दबाती रही हूँ।"

"दिन में ?"

"दिन में नहीं गई। नहीं जा सकी।" इसके बाद रत्ना ने प्रारम्भ से अन्त तक सब अपनी कथा सुना दी। सुनयना ध्यान से सुनने के बाद बोली—

"तो अब ?"

"कुछ नहीं," कहकर रत्ना ने लम्बी आह भरी।

उसी दिन से रत्ना अनमनी रहने लगी। कुछ ही दिन में ऐसी हो गई जैसे कई महीनों से बीमार हो। पर काम वह करती ही रही। एक दिन डॉक्टर ने जो गौर से देखा तो पूछ बैठा—

"क्या बात है नर्स ? बीमार हो ?"

"नहीं तो," मुस्कराकर रत्ना ने जवाब दिया।

"नहीं, कोई दुख है तुमको ?"

"कुछ नहीं।"

इतने पर भी रत्ना गिरती जा रही थी। डॉक्टर ने दवा की व्यवस्था की तो कोई लाभ न हुआ। उसने सुनयना से पूछा—

"तुम जानती हो रत्ना को क्या दुख है ? कोई दवा काम नहीं कर

रही। मैंने एक और डॉक्टर को भी बुलाकर दिखाया है; बीमारी तो कुछ भी नहीं है।"

"वह अन्धी औरत इसकी माँ थी।"

"कैसे ?" डॉक्टर ने हैरान होकर पूछा।

सुनयना ने रत्ना से जो-कुछ सुना था कह डाला। डॉक्टर सुनकर चुप हो गया और सोचने लगा।

अब तक डॉक्टर का मन धीरे-धीरे रत्ना की सेवा, उसकी तत्परता, लगन के कारण उसकी ओर खिच रहा था। वह समझ रहा था कि स्त्री का जहाँ तक बाहरी रूप है वह धोखा दे सकता है, पर मन की निर्मलता, सहृदयता ही उसका असली रूप है। ऐसी स्त्री से कभी धोखा नहीं हो सकता। वह बड़ी तीव्र दृष्टि से उसकी परख कर रहा था। यूरोप की एक महिला का उसे अनुभव था जिसने उसका सब-कुछ छीन-कर उसे भिखमंगा बना दिया था। उसके पास लौटने के लिए भी पैसा न बचा। तब बड़ी कठिनाई से वह उधार माँगकर लौट सका। उस स्त्री से प्रेम के कारण ही उसे कोई बड़ी सरकारी नौकरी न मिल सकी। उसी की शिकायत के कारण उसे कोर्ट जाना पड़ा, कुछ दिनों जेल की हवा खानी पड़ी और वह सदा के लिए सरकारी नौकरी के अयोग्य हो गया।

डॉक्टर पांडुरंग खाली समय में अपने कमरे में कुरसी पर बैठा रत्ना के सम्बन्ध में सोचता रहा। उसके मन में रत्ना के लिए एक अंकुर पहले ही उग आया था। अब वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा। अस्पताल के काम से फुरसत पाकर डॉक्टर रत्ना के कमरे में गया तो कमरे में अँधेरा था। उसने जाते ही स्विच ऑन कर दिया तो देखा रत्ना तकिये के सहारे औंधा मुँह किये पड़ी है।

"नर्स, कैसी तबियत है ?"

रत्ना ने सिर उठाया और आँसू पोंछते हुए उत्तर दिया—

"ठीक हूँ डॉक्टर।"

"क्या मैं तुम्हारी कोई सहायता कर सकता हूँ ?"

"यह सब और कौन कर रहा है, डॉक्टर ?"

"यदि तुम्हें आपत्ति न हो तो अपने कमरे के साथ के कमरे में तुम्हारा बिस्तर लगवा दूँ।"

"मैं यहीं ठीक हूँ।"

पास आकर डॉक्टर ने रत्ना से कहा—

"मुझे तुम अपना ही समझना रत्ना।"

इतना कहकर वह खड़ा न रह सका और कमरे से बाहर निकल गया।

रत्ना के लिए यह वाक्य अप्रत्याशित था। उसे कभी-कभी ऐसा आभास होता कि डॉक्टर उसके प्रति दयालु है; पर और कोई स्पष्ट संकेत उसे नहीं मिला था। वह स्वयं इस प्रेम और विवाह से ऊब चुकी थी। धीरूवाला के पिछले अनुभव ने उसे शादी प्रेम के विषय में काफ़ी कटु बना दिया था, जिसे वह अभी तक भूल न सकी थी। भूलना चाहने के लिए धीरू की दी हुई साड़ियाँ और कपड़े जो वह साथ लेकर चली थी बाहर निकलते ही उसने वे सब एक भिखारिन को दे दिये और अपनी पुरानी फटी साड़ी पहने चली आई। थोड़े ही दिनों बाद उसे लगा कि सब-कुछ त्यागने पर भी धीरू और उसका पाप उसके साथ है। चौबीस घण्टे इस पाप का बोझ उसे पागल बनाए रखता। जितना ही वह डॉक्टर की नजर से बचने की कोशिश करती उतना डॉक्टर की दया को अपने पास देखती। धीरे-धीरे उसे अपने पर घृणा होने लगी। दिन-रात चिन्ता के मारे उसने खाना-पीना भी छोड़ दिया। इधर माँ की चिन्ता ने जो झटका दिया तो वह एकदम टूट गई। डॉक्टर ने प्रयत्न करके उसकी जगह एक नर्स और रख ली। रत्ना के मना करने पर भी उसके लिए एक टैक्सी का इन्तजाम कर दिया गया। उसके मना करने पर भी गाड़ी शाम को आ-कर खड़ी हो जाती और जितनी देर खड़ी रहती उसका दाम बढ़ता रहता। आखिर उसने घूमने जाना माना और जाने लगी। तीसरे दिन घूमकर लौटने के बाद वह व्यर्थ समझकर डॉक्टर के पास गई तो वह रोगियों में व्यस्त था। लौट आई। फिर भी उसने निश्चय किया कि डॉक्टर के इस उपकार को वह स्वीकार नहीं कर सकती। उसे इस स्थान को छोड़कर समुद्र में कहीं डूबकर प्राणान्त कर देना चाहिए। कोई उपाय, कोई चारा

उसके सामने नहीं रह गया था। माँ के पास जाना भी असम्भव था। क्या अपने कुकृत्य का पेट लेकर वह माँ के सामने जायगी? वह क्या कहेगी? नहीं बरसोवा वह नहीं लौट सकती। कहीं भी उसका स्थान नहीं है। डॉक्टर सुनेगा तो वह भी घृणा से निकाल देगा। सारिका तो पहले ही घृणा करती है। वह इसी चिन्ता में घुलने लगी। रोग घटने के बजाय बढ़ने लगा। उसके शरीर से अनजान सुनयना अब-तब आती और बरसोवा लौटने की सलाह देती। दूसरी नर्स काफी खूबसूरत थी। उसने रत्ना को देखा तो उपेक्षा से मुँह फेर लिया। "क्या यही नर्स है जिसकी डॉक्टर तारीफ करते हैं, छि:।" वह कभी-कभी मामूली हाल-चाल जानकर लौट जाती। अब डॉक्टर की रसोई से खाना आता। चाय आती। पर डॉक्टर कभी-कभी दिखाई देने लगा। हाँ इतना जरूर हुआ कि रत्ना का कमरा बदल गया। डॉक्टर के कमरे से दो कमरे हटकर। इससे नर्सों का आना-जाना भी कम हो गया।

रत्ना कभी-कभी बिस्तर से उठकर दरवाजे के पास खड़ी हो जाती और एकान्त पाकर घूमने लगती। फिर आहट पाते ही कमरे में जा लेटती। वह चिन्ता के मारे मरी जा रही थी। क्या करे, क्या न करे? आखिर एक दिन उसने निश्चय कर ही लिया कि वह इस घर को छोड़ देगी। चाहे कहीं भी जाय, कहीं भी रहे, पर यहाँ नहीं रह सकती। इसके साथ ही उसने प्राणान्त करने का निश्चय कर लिया। उसने उस दिन डॉक्टर के नौकर से कई बार चाय मँगवाकर पी। जो फल हर रोज उसके लिए आते थे, खाए। काफी प्रसन्न भी दीख पड़ी। सुनयना को बुलाकर उससे बातें कीं। अन्त में डॉक्टर के नाम एक पत्र लिखना चाह कर भी वह समझ नहीं पा रही थी, क्या लिखे।

उसने लिखा और ठीक न होने से फाड़ दिया। दूसरी-तीसरी बार भी वह अपनी बात कहने में सफल न हो सकी। इसी उधेड़-बुन में पत्र लिखती-फाड़ती जा रही थी कि उसे खयाल आया क्यों न वह डॉक्टर से स्वयं मिलकर बरसोवा के बहाने चली जाय। उसका हृदय अपने अत्यन्त उपकारी डॉक्टर को देखे बिना जाने के लिए बेचैन हो रहा था। लेकिन जब पत्र में वह ठीक-ठीक अपनी बात नहीं कह सकती तो क्या

डॉक्टर के सामने कह सकेगी। डॉक्टर की बैंक की चैकबुक उसके पास आलमारी में रखी थी। उसने उठकर हिसाब की किताब उठा ली, पास-बुक देखने लगी। अचानक उसे लगा जैसे पासबुक और हिसाब की कापी में पचास रुपये की गड़बड़ है। ये पचास रुपये कहाँ हैं ? उसने फिर जाँचा, दूसरी-तीसरी बार। उसे लगा क्या पचास रुपये की भूल छोड़कर उसे यहाँ से जाना चाहिए ? क्या इससे उसकी सारी नेकनीयती पर बट्टा नहीं लग जायगा। क्या कहेगा डॉक्टर कि रत्ना पचास रुपये लेकर भाग गई। क्या पचास रुपये के पीछे वह मरने से पहले अपना सारा क्रेडिट खो दे ? यह हिसाब तो ठीक करना ही होगा। यही अच्छा है, इस बहाने मैं डॉक्टर को देख सकूँगी और कह दूँगी कि पचास का हिसाब नहीं मिल रहा है।

वह इसी चिन्ता में सो गई। सवेरे उठकर डॉक्टर के कमरे में गई तो वह मसहरी में भीतर सो रहा था। नौकर ने बताया, "सो रहे हैं साहब।"

"मैं उनसे मिलना चाहती हूँ अभी।"

"तो जागने पर कह दूँगा। चाहे तो बैठिए।"

"नहीं जागने पर बुला लेना।"

वह अपने कमरे में आकर बैठ गई। नौकर ने उसी समय खबर दी—

"साहब आपके साथ ही चाय पियेंगे।"

थोड़ी देर में डॉक्टर आया तो रत्ना ने एकदम कहा—

"पचास रुपये का हिसाब नहीं मिल रहा है।"

"तो मिल जायगा," मुस्कराकर डॉक्टर बोला।

"लेकिन हिसाब तो साफ रहना ही चाहिए। मैं रात बहुत देर तक देखती रही," रत्ना ने खाट पर बैठते हुए कहा।

"सारा हिसाब साफ होने का अर्थ है मुक्ति।"

"मैं नहीं समझी," रत्ना ने गम्भीर होकर पूछा।

"आप कहीं जा रही हैं क्या ?"

"जाना ही होगा। मैं आपके यहाँ कब तक यों बीमार पड़ी रहूँगी। मैं आज्ञा चाहती हूँ।"

नौकर ने चाय लाकर रख दी तो डॉक्टर ने स्वयं चाय बनाई और बोला—

"लीजिए ! कहाँ जायँगी ।"

"कहीं भी ।"

"हूँ ।" वह चाय पीता रहा । फिर चाय का प्याला मेज पर रखते हुए पूछने लगा—

"यहाँ आपको कोई कष्ट है ?"

"अनुग्रह से दबी जा रही हूँ । यही क्या कम कष्ट है ।" रत्ना ने बड़ी-बड़ी आँखों से डॉक्टर की ओर देखा । डॉक्टर उठते-उठते बैठ गया ।

"बरसोवा खबर कर दूँ लोग आकर आपसे मिल जायँगे । मन भी बहलेगा ।"

तीखेपन से रत्ना ने जवाब दिया—

"नहीं, मैं बरसोवा नहीं जा सकूँगी ।"

"तो छुट्टी लेकर आप कहाँ जाना चाहती थीं । चाहने पर पहाड़ जाकर रहने का प्रबन्ध हो सकता है ।"

"पहाड़ ?"

"पचगनी ।"

रत्ना ने ऊपर से नीचे तक डॉक्टर की ओर देखा । वह एकदम घबरा गई जैसे अनजानी दया से दम घुट रहा हो । अचानक उसके मुँह से निकल गया—

"आप मनुष्य हैं या देवता !"

"मैं डॉक्टर पांडुरंग हूँ, आई स्पेशलिस्ट," मुस्कराकर उसने जवाब दिया ।

रत्ना को लगा उसने अपने जीवन में ऐसा आदमी नहीं देखा—इतना महान्, इतना उदार । उसके जी में आया सब कह डाले । सारे अपने पाप कहकर प्रायश्चित कर ले । मन्दिर के देवता शायद ऐसे ही होते हैं जहाँ लोग जाकर अपने पापों का प्रायश्चित करते हैं । उसके जी में आया डॉक्टर के चरणों पर गिर पड़े । इसी बीच में डॉक्टर ने कहा—

"मैं आज ही आपके पचगनी जाने का इन्तज़ाम किये देता हूँ । वहाँ आपका स्वास्थ्य ठीक होगा । चाहें तो माँ को भी बुला लें । मैं उन्हें कहलवाए देता हूँ । वह उठकर घड़ी देखने लगा—

"चलूँ ।"

जैसे ही डॉक्टर जाने लगा तो रत्ना ने कहा—

"ठहरिए ।"

"कहिए ।"

"मैं पापिन हूँ, मैंने घोर पाप किया है ।"

"जो पाप स्वीकार कर लेता है वह पापी नहीं होता, नर्स ।"

"मेरा मतलब····"

"मैं सब सुन चुका हूँ । आप इस घर से नहीं जा सकतीं । आपको यहीं रहना होगा । आप यहीं रहेंगी ।" वह जाते-जाते कुरसी पर बैठ गया । फिर बोला—

"और····"

रत्ना आँख फाड़े डॉक्टर को देखती रही । देखती ही रही । फिर और भी स्पष्ट करने के लिए उसने कहा—

"मेरा चौथा मास है । अब आप समझे ?"

"जानता हूँ ।"

"क्या यह भी आपको मालूम है ?"

"मैंने मैटर्निटी हास्पिटल में बैड का बुकिंग करा दिया है । आज शाम की गाड़ी से मैं आपको पचगनी छोड़ने चलूँगा । देर हो रही है । दोपहर को आऊँगा ।"

डॉक्टर चला गया । रत्ना हर्ष उल्लास, विचिकित्सा, आश्चर्य और अघटित घटना से पागल हो उठी । वह चिल्ला उठी—

"डॉक्टर, डॉक्टर ।" वह बैठी न रह सकी तो टहलने लगी । लम्बी-लम्बी साँस लेती घूमने लगी । उसे अपने पर भयंकर ग्लानि हुई । लगा उसका हृदय फट जायगा । वह क्या करे, क्या न करे । साँस जल्दी-जल्दी चलने लगी । शायद वह पागल हो जायगी । "पागल । कितनी शर्म की बात है । डॉक्टर ने सब-कुछ जान लिया । सब-कुछ जान लिया डॉक्टर ने !" वह तकिये पर सिर रखकर बिसूर-बिसूरकर रोने लगी । रोती ही रही । फिर उसे धीरे-धीरे ध्यान आया । 'फिर भी डाक्टर ने कुछ नहीं कहा । कोई नफरत कोई घृणा नहीं दिखाई । जैसे हुआ ही नहीं

कुछ। मामूली बात है। मेरे बैड का इन्तजाम कर दिया ? अब मुझे पचगनी भेजने को तैयार है ! मेरा कौन है यह, मैं इसकी कौन हूँ ? क्या ऐसे भी आदमी हैं इस दुनिया में ? क्या ऐसे भी हैं !'

इसी समय नौकर ने आकर खबर दी कि डॉक्टर साहब ने आपकी माँ को बुलाने के लिए एक आदमी भेज दिया है।

रत्ना ने सुना तो घबरा गई। उसका सारा उल्लास जैसे बिलीन हो गया। वह ठिठककर खड़ी हो गई। उसके मुँह से निकल गया—

"क्या ऽऽ ? क्यों भेजा माँ के पास आदमी ? रोक लो उसे, रोको। मैं नहीं चाहती माँ आवे। मैं नहीं चाहती। डॉक्टर से कह दो जाकर। कह दो।"

रत्ना का सारा उत्साह भंग हो गया। वह समझ नहीं पा रही थी क्या करे। कभी उसे डॉक्टर के ऊपर क्रोध होता, कभी अपने ऊपर।

"क्या होगा ! माँ सुनेगी तो क्या कहेगी ! वह मेरे ऊपर थूककर, गालियाँ देकर लौट जायगी।"

चिन्ता में व्याकुल रत्ना इधर-उधर टहलने लगी। एक बार उसके जी में आया कहीं भाग जाय। पर दिन में कहाँ जायगी ? कौन जाने देगा ? जिस डॉक्टर ने मेरे बिना कहे इतना जान लिया, क्या वह मुझे जाने देगा ? उसे मरणान्त पीड़ा होने लगी। माँ के सामने होने वाली लाज-शरम का खयाल करके वह बेचैन होती रही। लेटकर करवटें बदलने लगी। वह बार-बार माँ के आने पर होने वाली दुर्दशा का विचार करके रोने लगी। रोती ही रही। खाना वैसा ही मेज पर रखा रहा। न उसने उधर देखा न छुआ। इसी बीच न जाने कब उसे नींद आ गई।

स्वप्न में उसने देखा—माँ ने दुरदुराकर उसे घर से निकाल दिया है। बाजार, गली जहाँ भी वह जाती है लोग नफरत से उस पर हँसते हैं, मुँह चिढ़ाते हैं, गाली देते हैं। कोई-कोई उस पर थूक भी देता है। लड़के ताली बजाते उसके पीछे दौड़ रहे हैं। सब लोग खिड़कियों, झरोखों, दरवाजों पर खड़े उसे देख रहे हैं। बाजार में उसे जाते देखकर दुकानदार काम करना बन्द करके घृणा से गाली दे रहे हैं। उसके

कपड़े फटकर चीथड़े-चीथड़े हो गए हैं। जैसे सारा संसार उसे देखने और गाली देने को फट पड़ा है। रुकने, ठहरने के लिए उसे कहीं भी जगह नहीं है। बारिश हो रही है, बिजली कड़क रही है। वह समुद्र के किनारे पहुँच गई है। उसमें भी तूफान आ रहा है। पानी किनारे काटता आगे बढ़ा आ रहा है। उसके पीछे लौटते ही लोगों ने पत्थर फेंकना शुरू कर दिया है। हजूम-का-हजूम खड़ा उसे धिक्कार रहा है, गाली दे रहा है। सामने समुद्र जैसे उसे लील जाने को आगे बढ़ रहा है। पानी बढ़ रहा है। वर्षा और भी तेज हो रही है। बिजली और भी जोर से कड़-कने लगी है। जमीन हिलने लगी है। समुद्र गरजने लगा है। उसके हृदय की बेचैनी बढ़ रही है। उसे लग रहा है वह पागल हो गई है और एकदम समुद्र की लहरें उसके पैरों को छू रही हैं। अब पानी घुटनों तक आ गया है। उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। वह लहरों में बही जा रही है। इसी समय एक नाव का डांड उसने पकड़ लिया है। नाव पर यशवन्त खड़ा है। उसने घृणा से मुँह फेर लिया है। डांड उसके हाथों से छीन लिया है। वह डूब रही है। डूबती जा रही है। वह चिल्ला रही है। चिल्लाती हुई डूब रही है। न जाने किसने उसका एक पैर पकड़ लिया है और पानी से घसीट रहा है। उसकी साँस घुटने लगी है। उसकी घिग्घी बँध गई है। वह बही। बही, डूबी कि इसी समय घबरा-कर उसकी आँख खुल गई। बन्द आँख किये उसे महसूस हुआ कोई उसके शरीर पर हाथ फेर रहा है। उसे धीरज बँधा रहा है। उसका शरीर मन थर-थर काँप रहा है। कमरे में अन्धेरा है। वह धीरे-धीरे स्थिर हुई।

"काय रत्ना कइसा जी हे ?"

आवाज से उसने पहचाना उसकी माँ वंशी है। रत्ना की आँखों में स्वप्न प्रत्यक्ष हो गया। मानो दुख की पराकाष्टा का समय आ गया। वह चरम बिन्दु पर पहुँच गया है। निश्चय ही अब माँ उसे त्याग देगी। वह समय आ गया है। कोई उपाय नहीं है। उसने माँ को कोई जवाब नहीं दिया।

डॉक्टर बोला—

"सोते-सोते घबरा गई हैं। शायद कोई सपना देखा होगा। कोई बात नहीं अभी ठीक हो जायँगी।"

वंशी एकदम रोने लगी और उसके शरीर से चिपट गई। दोनों माँ-बेटी जी भरकर रोईं। पट्टी पर हाथ लगाकर वंशी ने कहा—

"डॉक्टर डॉक्टर, हमारा पट्टी खोलने का। हम अपना छोकरी कू देखेंगा।"

वंशी गिड़गिड़ाने लगी। डॉक्टर ने पट्टी खोल दी। वंशी को धीरे-धीरे दीखने लगा। वह रत्ना के शरीर पर हाथ फेरती रही। बोली—

"माणिक कू त्यागा नीट किया रत्ना! नीट किया। ए डॉक्टर देवता है। इसका सेवा करेंगा। इसका सेवा करने का हा। पचगनी से परतेंगा तब्बी हम तेरे कू बरसोवा ले जायेंगा।" डॉक्टर की ओर मुँह करके वंशी ने कहा—

"हमारा छोकरी भोत कष्ट पाया डॉक्टर, भोत कष्ट पाया। अब तुमारा जइसा पति पाकर धन्य हो गयाय। हम जमात का परवा नईं करेंगा। हम कोई का परवा नईं करेंगा। हमारा छोकरी कू चांगला पति मिलाय।"

रत्ना सुन रही थी, पर जैसे कानों पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ कभी माँ की ओर देखती कभी पिता को, कभी डॉक्टर को देखती, जो सब चुपचाप देख रहे थे। उसके मन का आश्चर्य फटा पड़ रहा था। यह क्या हो रहा है? माँ यह क्या कह रही है? क्या कह रही है यह माँ? वह फटी-फटी आँखों से सबको देखने लगी। अप्रत्याशित, असम्भाव्य, अननुभूत, यह क्या है!—पति, डॉक्टर मेरा पति? यह क्या सुन रही है!

डॉक्टर उसी समय हल्की पट्टी बाँधकर वंशी को दूसरे कमरे में ले गया। रत्ना ने रहस्य-भेदन में अपने को असमर्थ पाकर भी सुख की एक साँस ली। डॉक्टर के लिए अगाध श्रद्धा से उसका हृदय भर उठा। उसने अपने को सँभाला और सामने बैठे बिट्ठल, जागला से बातें करने लगी।

बिट्ठल ने वंशी की और अपनी बात बताई कि कहाँ-कहाँ हमने तुझे ढूँढ़ा। कैसे हम लोग रातों सारी बम्बई में मारे-मारे फिरते रहे। कोई

जान-पहचान का घर नहीं छोड़ा। यशवन्त पुलिस थाने में, अखबारों के दफ्तर में महीनों पता लगाता रहा।

उसने पूछने पर यशवन्त की बाबत बताया, अब वह बरसोवा के ग़रीबों की सेवा करता है। नाना मर गया। बाउला पागल हो गया। सोमा ने एक और ब्याह कर लिया। हीरा यशवन्त के पास रहती है। हम लोग यशवन्त को अपना बेटा मानकर उसका सब खर्च देते हैं। अब वह हमारे लड़के की तरह है। जागला के दो बच्चे हैं। रत्ना सब चुपचाप सुनती रही।

उसी शाम फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेंट में दोनों को जगह मिली। बिट्ठल, यशवन्त, जागला उसे बिदा करने आए। वंशी को डॉक्टर ने मना कर दिया। यशवन्त ने दाढ़ी बढ़ा ली थी, सिर पर जटाएँ थीं। पर उसकी आँखों में चमक और चेहरे पर सात्विकता टपक रही थी।

रत्ना ने हँसकर पूछा—

"साधू हो गया क्या यशवन्त ?"

"हम बोला जब तक रत्ना बेन नई मिलेंगा; हम हजामत नई करेंगा।"

"तो अब कर।"

"ओ दिन जब हमारा बेन कू छोकरा होयेंगा," कहकर यशवन्त हँसने लगा।

यशवन्त ने रत्ना को 'बहन' कहकर पुकारा तो रत्ना का हृदय खुशी से नाच उठा। उसने रत्ना को नई शादी की बधाई दी। तो उसकी आँखों में आँसू भर आए। नहीं कहा जा सकता ये किस तरह के आँसू थे।

गाड़ी चली तो एकान्त पाकर रत्ना ने डॉक्टर की ओर देखा। उसकी आँखों में डॉक्टर के प्रति कृतज्ञता के आँसू थे। फिर भी उसने पूछा—

"यह आपने क्या किया ?"

"वही, जो एक को दूसरे के लिए करना चाहिए। मैंने उस समय यही उचित समझा कि माँ के सामने तुम्हें निर्दोष सिद्ध करने के लिए कह दूँ कि हमारा ब्याह हो गया है और जल्दी ही वंशी नानी बनने जा रही है।"

रत्ना ने सुना तो विह्वल होकर डॉक्टर के पैरों में गिर पड़ी। हर्ष के आँसुओं की श्रद्धा-भरी अनवरत धार उसकी आँखों से झर रही थी। डॉक्टर ने दोनों हाथों से थपथपाते उसे सीट पर बैठा दिया और आँसू पोंछता बोला—

"वे पचास रुपये मैंने कमरे की एडवान्स बुकिंग को पचगनी भेज दिये थे। अब लौटकर एडजस्ट कर देना।"

डॉक्टर खिड़की से बाहर देख रहा था। समुद्र और आकाश उस समय भी हँस रहे थे। मोहग्रस्त रत्ना डॉक्टर के उड़ते हुए बालों से अपने सपने बुनने लगी। गाड़ी अपनी उसी रफ्तार से बम्बई पार करती चली जा रही थी।